# हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य

# हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य

( १५००-१७५० ईसवी )

डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ, एम० ए०, डी० फिल०

साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड

इलाहाबाद

नवीन संस्करण : १९६२ ईसवी

सात रुपया

मुद्रक : श्री कमल प्रेस, चाह चन्द इलाहाबाद

लंदन में मुझसे अत्यंत स्नेह भाव से मिलनेवाले

भारत के शिक्षा-सचिव

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद

को

सादर समर्पित

# दो शब्द

आकाश में अपनी राह से बहुत दूर हटे हुए सितारे के समान जब मेरा जीवन यह नहीं समझ पा रहा था कि वह क्या करे, कहाँ जाय, उन दिनों यह पुस्तक लिखी गई। मन कुछ उलझा उलझा-सा और बिखरा बिखरा-सा था। मैंने अपने को असफलताओं और निराशाओं की मूर्ति मान लिया था। एम० ए० के परीक्षाफल पर प्रयाग विश्वविद्यालय ने मुझे जो स्वर्ण-पदक प्रदान किया था वह अपनी सारी आभा मेरे लिये खो चुका था। मन में फिर भी कुछ कर गुजरने की चाह थी और वही इस पुस्तक के लिखने में प्रेरणा देती रही।

आज लगभग आठ वर्षों के बाद यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है। आज अपनी उन आठ वर्ष पुरानी परिस्थितियों को याद करके रोंगटे से खड़े हो जाते हैं, परन्तु जो बीत चुका है उसको याद करना कहाँ की बुद्धिमत्ता है। हो सकता है कि यदि वह निर्धनता और वे विपदाएं न होतीं, वे निराशाएं और असमर्थताएं न होतीं तो यह पुस्तक लिखी ही न जाती। डाक्टर अमरनाथ झा, डाक्टर ताराचन्द, डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा, डाक्टर रामकुमार वर्मा और डाक्टर श्यामसुन्दरदास ने इस पुस्तक के लिखने में मुझे अमूल्य परामर्श दिए। डाक्टर माताप्रसाद गुप्त यदि न होते तो शायद इस पुस्तक में क्या, मेरे समस्त आलोचक दृष्टिकोण में ही वह वैज्ञानिकता न आती, जो आज है। स्वर्गीय रामप्रसाद नायक इस पुस्तक के मूल में थे

उन पस्तहिम्मती के दिनों में मुझे डाक्टर धर्मेन्द्रनाथ वर्मा, गणेशप्रसाद अवस्थी, बहिन चन्द्रकला वर्मा और श्रीमती चन्द्रकुमारी वर्मा ने भरसक उत्साहित रखने की चेष्टा की। मैं इन सबका कृतज्ञ हूँ।

मैं प्रयाग विश्व-विद्यालय का भी कृतज्ञ हूँ जिसने इस पुस्तक को डाक्टर ऑफ फिलासफी इन आर्ट्स की उपाधि के योग्य समझा।

तुलसी कुटीर,
पाल बीसला, अजमेर
२८-७-१९५३

कमल कुलश्रेष्ठ

# टिप्पणी

पाद टिप्पणियों में दिए गए पाठ्य ग्रंथों के निम्न संस्करणों अथवा हस्तलिखित प्रतियों का उपयोग हुआ है। पृष्ठ संख्या निम्नलिखित संस्करणों की ही दी गई है:

१. पद्मावती — जायसी ग्रंथावली (द्वितीय संस्करण)
सम्पादक : पं० रामचंद्र शुक्ल
प्रकाशक : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

२. चित्रावली — सम्पादक : बा० जगमोहन वर्मा
प्रकाशक : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

३. हंसजवाहिर — प्रकाशक : स्टीम प्रेस, अयोध्या

४. इंद्रावती (पूर्वार्द्ध) — सम्पादक : रा० ब० डा० श्यामसुन्दरदास डी. लिट्.
प्रकाशक : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

५. इंद्रावती (उत्तरार्द्ध) — नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित प्रतिलिपि की प्रतिलिपि जो सभा के मंत्री महोदय ने अनुग्रहपूर्वक मेरे पास भेजी थी। जहां इसकी पृष्ठ संख्या दी गई है वहां इंद्रावती के आगे प्रकाशन का सन् नहीं दिया गया है।

६. नलदमन — प्रिंस आव वेल्स म्यूज़ियम बम्बई में सुरक्षित पोथी की प्रतिलिपि जो नागरी प्रचारिणी सभा काशी के मंत्री महोदय ने मेरे पास अनुग्रहपूर्वक भेजी थी।

| | |
|---|---|
| ७. पुहुपावती | नागरी प्रचारिणी सभा काशी में सुरक्षित प्रति की प्रतिलिपि जिसे मंत्री महोदय ने अनुग्रह-पूर्वक मेरे पास भेजा था। |
| ८. मधुमालती | नागरी प्रचारिणी सभा काशी में सुरक्षित दो प्रतियों तथा स्टेट लाइब्रेरी रामपुर में सुरक्षित प्रति के आधार पर अध्ययन किया गया है। तीन प्रतियों से मिला मिलाकर पूरा पाठ बन सका था, इस कारण इसकी पाद टिप्पणियों में पृष्ठ संख्या नहीं दी गई। |

— ❀ —

# विषय सूची

## भाग १

## भूमिका

भाग २

# धारा का उद्गम

भाग ३

# धारा

## भाग ४

# उपसंहार



# परिशिष्ट



---

भाग १

# भूमिका

विषय प्रवेश—

§१. अध्ययन के सुभीते के लिए हिन्दी साहित्य का इतिहास निम्न-लिखित कालों में विभक्त किया जा सकता है :—

१. अंधकार काल[1] १००० ई०—१४०० ई० तक

१. इस युग को हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों, विशेषकर पं० रामचंद्र शुक्ल ने वीर गाथा काल कहा है। सचाई यह है कि इस काल की एक भी प्रामाणिक बड़ी वीरगाथा प्राप्त नहीं होती। इस कारण इस काल को कोई ऐसा नाम नहीं दिया जाना चाहिए।

शुक्ल जी ने इस काल में सात काव्यों का उल्लेख किया है। इन में वे खुमान रासो, पृथ्वीराज रासो तथा आल्हखंड के प्राप्त संस्करणों को तो बहुत बाद का मानते हैं। बीसलदेवरासो एक शृंगारात्मक ग्रंथ है। भट्टकेदार एवं मधुकर के काव्य आज प्राप्त नहीं हैं। केवल श्रीधर कृत रणमल्ल छंद प्राप्त काव्य है। पता नहीं ऐसी दशा में इस युग को शुक्लजी ने वीररस के दृष्टिकोण से कैसे वीरगाथा काल कह दिया जब कि एक छोटी सी पुस्तक रणमल्ल छंद के अतिरिक्त कोई निश्चित वीर रस का काव्य नहीं मिलता। दूसरे दृष्टिकोण—वीरपूजा की भावना से लिखी गई एक बहुत छोटी सी रचना बीसलदेव रासो और प्राप्त है। इस प्रकार

## २. कलात्मक उत्कर्ष काल[1] १४०० ई०—१६०० ई० तक

वीर पूजा की भावना से भर कर लिखे गए दो छोटे छोटे काव्य ही प्राप्त होते हैं। दूसरी ओर विद्यापति आदि के पद प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। इस कारण इस युग का नामकरण विचारपूर्वक होना चाहिए। प्रस्तुत लेखक ने इसे अंधकार काल कहा है। वास्तव में खोज की वर्तमान स्थिति में यह हमारे साहित्य का अंधकार काल है। इस युग पर जब तक काफी खोज न हो जाए, बहुत निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहना चाहिए। हिन्दी साहित्य का प्रारंभ कब हुआ, इसके विषय में विभिन्न मत हैं। मिश्रबंधु हिन्दी के पहले कवि की सत्ता ७१३ ई० के लगभग खोज निकालते हैं और राहुल सांकृत्यायन ७६० ई० के निकट। मिश्रबंधु के खोजे हुए कवि का नाम पुंड अथवा पुष्य था। परन्तु उसकी रचनाओं के उदाहरण सर्वथा अप्राप्य हैं। इस कारण कवि सर्वथा संदिग्ध है। राहुल जी ने पहले कवि का नाम सरहपा बतलाया है और उसकी कविता के उदाहरण भी दिए हैं। राहुल सांकृत्यायन के उदाहरणों को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी भाषा अपभ्रंश एवं हिन्दी की संधिकालीन भाषा है। १००० ई० से पहले की स्थिति बड़ी संदिग्ध है। हम बीसलदेवरासो को बहुत कुछ निश्चित रूप से वास्तविक हिन्दी का पहला काव्य मान सकते हैं। परंतु उसका रचना काल निश्चित नहीं है। इसलिए मोटे रूप में हिन्दी साहित्य का प्रारंभ लगभग १००० ई० से माना जा सकता है। प्रस्तुत लेखक ने इस युग को १४०० ई० तक माना है। १४०० ई० के बाद निश्चित साहित्य प्राप्त होने लगता है। १४०० ई० के बाद का साहित्य अंधकार कालीन साहित्य नहीं कहा जा सकता। देखिए—मिश्रबंधु : मिश्रबंधु विनोद भाग १. (१९७० वि०) पृष्ठ २०२, २२१, राहुल सांकृत्यायन : हिन्दी काव्य धारा (१९४५) पृष्ठ २, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १४, पृष्ठ ९९, रामकुमार वर्मा : हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (१९३८ ई०) पृष्ठ ७-१२, विश्ववाणी, अगस्त १९४९, रामचन्द्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास (१९९१)

१. प्रस्तुत लेखक ने इसे कलात्मक उत्कर्ष काल की संज्ञा दी है। पं० रामचंद्र

३. साहित्य शास्त्रीय विकास काल[1] १६०० ई०—१८५० ई०
४. साहित्यिक काल[2] १८५० ई०—

शुक्ल ने इसे भक्तिकाल कहा है जो कि विशेष गलत नहीं है। परन्तु फिर भी वह पर्याप्त व्यापक नाम नहीं है। जैसा कि आगे के विश्लेषण से स्पष्ट हो जावेगा भक्ति की चार धाराओं में एक धारा भक्ति की नहीं है और उस धारा का पर्याप्त साहित्यिक महत्व है। और जिसे पं० रामचंद्र शुक्ल ने भक्तिकालीन अन्य साहित्य कहा है वह भी पर्याप्त है। इस काल की रचनाएं १४०० ई० से मिलनी प्रारंभ हो जाती हैं और १६०० ई० के बाद ऐसी रचनाएं नहीं मिलतीं जो उत्कर्ष कालीन रचनाएं कही जा सकें।

१. वास्तव में यह युग हिन्दी साहित्य का एक घना जंगल है जहां पर पं० रामचंद्र शुक्ल ने भी पहुंचते ही लिखा कि इस युग में उन्होंने मिश्रबंधु विनोद (हिन्दी साहित्यकारों का एक गड़बड़ सूचीपत्र) का सहारा लिया है। प्रस्तुत लेखक इसे साहित्यशास्त्रीय विकास काल की संज्ञा देकर विद्वानों का ध्यान इस ओर खींचना चाहता है कि इस युग का साहित्यशास्त्र के विकास के दृष्टिकोण से अध्ययन होना चाहिए। रीति काल भी इसे कहा जा सकता है। परंतु रीति काल की अपेक्षा साहित्यशास्त्रीय विकास काल अपेक्षाकृत सरल नाम है। १८५० ई० के निकट ही भारतीय स्वतंत्रता का पहला संग्राम हुआ। उसके बाद देश में इतनी उथल पुथल हुई कि साहित्य का नक्शा बदल गया। इस कारण १८५० ई० को हम परिवर्तन रेखा मान सकते हैं।

२. यह युग साहित्यिक काल है इस युग में हमारे अंदर पहली बार विशुद्ध साहित्यिक चेतना जागी है।

इस काल विभाजन में जो सन् दिए हैं उनके विषय में हमें एक बात ध्यान में रखनी चाहिए। सन् अधिकतर १००-५० की संख्या में हैं। १०-२० सालों

§२. अंधकार काल के विषय में हमारा ज्ञान अत्यंत सीमित है। इस काल के साहित्य और इसी कारण साहित्यिक इतिहास के पृष्ठ समय के पानी से बहुत कुछ धुल से गए हैं। फिर भी इस धुंधले युग में प्राप्त साहित्य के आधार पर हम निम्नलिखित धाराओं की कल्पना कर सकते हैं :

१. आख्यानक साहित्य—पृथ्वीराज रासो,[1] चंदाबन[2] आदि
२. शृंगारात्मक मुक्तक साहित्य—विद्यापति[3] के पद आदि

का अंतर इनमें अधिक महत्व नहीं रखता। साहित्य की प्रवृत्तियों का परिवर्तन धीरे धीरे होता है और जब परिवर्तन स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगता है तो हम उसे काल परिवर्तन कहते हैं।

१. इसके अध्ययन के लिए देखिए—

रामचंद्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, गणेशप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी के कवि और काव्य भाग १, जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, जिल्द ५५, इंडियन एन्टिक्वेरी, जिल्द १,२,१७, मोतीलाल मेनारिया : डिंगल में वीर रस, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, राजस्थान भारती जिल्द १, ओरियन्टल कालेज मैगजीन ( इसमें पृथ्वीराज रासो पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है ), मोहनलाल पंड्या : ए डिफेंस आफ पृथ्वीराज रासो आफ चंद बरदाई (१८८७), श्यामलदास : दि डिफेंस आफ प्रिथिराज रासो ( १८६७ ), चित्राव : भारतवर्षीय मध्ययुगीन चरित्र कोष ( १९३७ )। रासो का एक संस्करण काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रकाशित किया है।

२. इसकी चर्चा आगे की जायगी।

३. इसके अध्ययन के लिए देखिए—

३. उपदेश मूलक मुक्तक साहित्य—नामदेव[1] के पद आदि
४. पहेली मुक्तक साहित्य—अमीर खुसरो[2] की पहेलियां

§३. आख्यानक साहित्य निम्नलिखित धाराओं में बांटा जा सकता है :

१. डिंगल में लिखा गया साहित्य—पृथ्वीराज रासो

उमेश मिश्र : विद्यापति, जर्नल आव डिपार्टमेन्ट आफ लेटर्स· जिल्द १६, रामचंद्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, जर्नल आफ दि एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल भाग ७३, १ नई सीरीज, इंडियन एन्टिक्वेरी जिल्द १४, दिनेशचंद्र सेन : वैष्णविज्म इन मैडीवल बंगाल, सुकुमार सेन : ब्रिजबुली लिटरेचर, नरेन्द्रनाथ दास : विद्यापति काव्यालोक, जनार्दन मिश्र : विद्यापति, चित्राव : भारतवर्षीय मध्ययुगीन चरित्र कोष। विद्यापति के पदों का एक संग्रह इंडियन प्रेस से प्रकाशित हुआ है।

१. इनके अध्ययन के लिये देखिए :

रानाडे : मिस्टिसिज्म इन महाराष्ट्र, अनंतदास : नामदेव की परची, रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, बलदेवप्रसाद : नामदेव चरितावली, रामचंद्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास।

२. अमीर खुसरो के विषय में कुछ विद्वान कहते हैं कि उसने हिन्दी कविता नहीं की परंतु अमीर खुसरो स्वयं कहता है कि उसने हिन्दी में कविता की है। देखिए : वाहिद मिर्जा : लाइफ एण्ड वर्क्स आफ अमीर खुसरो (१९३५) पृष्ठ २२८। अमीर खुसरो की हिन्दी कविताओं का संग्रह काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हुआ है। अमीर खुसरो के लिए रामचंद्र शुक्ल एवं रामकुमार वर्मा के इतिहास और पढ़ने चाहिए।

२. पिंगल अथवा मध्य देश की अन्य बोलियों में लिखा गया साहित्य—चंदावन।

§४. पिंगल अथवा मध्य देश की अन्य बोलियों में लिखे गये आख्यानक साहित्य को भी हम दो उपवर्गों में विभाजित कर सकते हैं :

१. प्रेमाख्यानक काव्य[1]—चंदावन[2]

२. अन्य आख्यान—आल्ह खंड[3]

१. कहा जाता है कि रज्जन ने एक और काव्य इस युग में लिखा था। परंतु उस की कोई भी प्रामाणिक सूचना प्रस्तुत लेखक के पास नहीं है। श्यामसुंदरदास रज्जन का समय १४३२-१५२४ ई० मानते हैं। देखिए : श्यामसुंदरदास : हिन्दी साहित्य ( १९४५ ) पृष्ठ २१५

२. बीकानेर के श्री पुरुषोत्तम शर्मा के पास इस ग्रंथ की एक प्रति है। प्रस्तुत लेखक के प्रयत्न तथा श्री अगरचंद नाहटा की कृपा से शर्माजी ने यह पोथी एक सज्जन द्वारा प्रयाग भेजी थी परंतु उन्होंने पोथी की परीक्षा अच्छी तरह डा० धीरेन्द्र वर्मा को नहीं करने दी और लगभग ५० पृष्ठों की पोथी का मूल्य ५०० रुपये माँगे। इस कारण उसे खरीदा नहीं जा सका।

देखिये : हिन्दुस्तानी भाग १५, पृष्ठ १७.

३. आल्ह खंड के विषय में विशेष जानकारी के लिए देखिए :

रामचंद्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, वाटरफील्ड : दि ले आफ आल्हा, इंडियन एंटीक्वेरी भाग १४

§५. चंदाबन की कोई भी प्रामाणिक प्रति अभी तक नहीं मिल सकी[1]। एक अप्रामाणिक सी प्रति डा० धीरेन्द्र वर्मा ने अवश्य देखी है परंतु उसे वे कुछ कारणों से विशेष ध्यानपूर्वक नहीं देख सके और इस काव्य के विषय में कुछ भी निश्चयपूर्वक बतलाने में असमर्थ हैं। सुप्रसिद्ध इतिहासकार अल बदाउनी[2] ने इसके विषय में लिखा है :—

मुल्ला दाऊद ने चंदाबन नामक एक हिंदी मसनवी में नूरुक और चंदा की प्रेम कहानी बड़ी सजीव शैली में जूनाशाह के सम्मान में लिखी। मुझे इस पुस्तक की प्रशंसा में कुछ भी नहीं कहना है क्योंकि दिल्ली में यह पुस्तक स्वयं अत्यंत प्रसिद्ध है। मखदूम शेख तकीउद्दीन वायज रब्बानी मुल्ला दाऊद की कुछ कविताएं जिनमें चंदाबन भी था पुलपिट पर से पढ़ा करते थे और जनता उससे अति प्रभावित होती थी। एक बार शेख से कुछ लोगों ने पूछा कि आपने इस हिन्दी मसनवी को ही क्यों चुना है ? शेख ने उत्तर दिया कि यह समस्त आख्यान एक ईश्वरीय सत्य है, पढ़ने में मनोरंजक है, प्रेमियों को आनंद भरे चिंतन की सामग्री देनेवाला है, कुरान की कुछ आयतों का उपदेश देनेवाला है और

१. इसकी कुछ अप्राप्य प्रतियों का उल्लेख तासी ने किया है। देखिए : तासी : इस्त्वार द ला लितेरात्यूर ऐंदुई ऐ ऐंदुस्तानी भाग ३ ( १८७१ ) पृष्ठ ४३१-२

२. बदाउनी मुगल सम्राट जहांगीर के समय में हुआ था। बहुत संभव है कि उसने वह पुस्तक देखी हो और संभवतः शाहे वक्त की प्रशंसा के अंतर्साक्ष्य के आधार पर ही उसने यह उल्लेख किया है।

तासी इसका नाम हुरुक बतलाते हैं। देखिए : तासी : इस्त्वार द ला लितेरात्यूर ऐंदुई ऐ ऐंदुस्तानी भाग ३ ( १८७१ ) पृष्ठ ४३१

इस ग्रन्थ की कुछ और प्रतियां भी हैं जो कि प्रस्तुत लेखक को उपलब्ध नहीं हो सकीं।

हिन्दुस्तानी गायकों भाटों के गीत जैसा है। जनता में इसे गाने से जनता के हृदय पर इसका बड़ा ही गहरा प्रभाव पड़ता है[१]।

अल बदाउनी के इस उल्लेख से चंदाबन के विषय में हमें निम्नलिखित बातें पता चलती हैं :

१. इसका लेखक एक मुसलमान था।
२. यह एक प्रेमाख्यानक मसनवी है जिसके नायक का नाम नूरूक और नायिका का नाम चंदा है।
३. यह एक काव्य है, दो नहीं[२]।
४. इसका कथानक एवं शैली उस समय के भाटों द्वारा गाई जानेवाला कहानियों से समानता रखती हैं[३]।
५. इसमें आध्यात्मिकता विशेष है। कुरान के कुछ उपदेशों का प्रचार करने का माध्यम यह काव्य था।
६. काव्य के दृष्टिकोण से भी यह एक मार्मिक एवं ऊंची श्रेणी का हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य था।
७. अल बदाउनी के समय में मुसलमान हिंदी से परहेज करते थे।
८. इसकी भाषा दिल्ली की जनता की समझ में आ जाती थी।

१. अल बदाउनीः मुन्तखबुत तवारीख, रैंकिंग का अनुवाद (१८९८) भाग १, पृ० ३३३

२. पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने दो काव्य माने हैं, देखिये हरिऔधः हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास (प्रथम संस्करण) पृ० १४४

३. उस समय से तात्पर्य अल बदाउनी के समय से है

हिन्दी साहित्य के विविध विद्वान इसके रचना काल के विषय में प्रायः विभिन्न तिथियां देते रहे हैं। मिश्रबंधु मुल्ला दाऊद का कविता काल सं० १३८५ वि० मानते हैं[१]। डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने सं० १९९७ वि० स्वीकार किया है[२]। डा० रामकुमार वर्मा ने मुल्ला दाऊद को अलाउद्दीन खिलजी का समकालीन मानते हुए सं० १३५३ वि० से १३७३ वि० के बीच नूरक चंदा की प्रेम कहानी का रचना काल माना है[३]। अल बदाउनी के उल्लेख से यह बहुत स्पष्ट है कि चंदाबन का रचनाकाल १४२७ वि० के निकट था[४]। यह उल्लेख किसी प्रकार संदेह की गुंजायश नहीं रखता। अतः हिन्दी के इन विद्वानों के द्वारा दी गई ये तिथियां अशुद्ध हैं।

हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य की धारा का प्रारंभ इसी कथा से माना जाता है।

§६. कलात्मक उत्कर्ष काल में हिन्दी साहित्य में निम्नलिखित धाराएं सुस्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ती हैं:—

१. प्रबंधकाव्य साहित्य—रामचरित मानस, पद्मावती आदि

१. मिश्रबंधु विनोद (१९७० वि०) भाग १ पृ० २४१

२. दि निरगुन स्कूल आफ हिंदी पोइट्री—पी. डी. बड़थ्वाल (१९३६) पृ. १०

३. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—रामकुमार वर्मा (१९३८ ई०) पृ० १५४

४. In the year 772 H. ( 1370 A. D. ) Khani-Jahan the Vajir died and his son Juna Shah obtained that title and the book Chandaban...was put out in verse in his honour by Maulana Daud. Munta Khabut--Twarikha ( Ranking' translation )--1808 A. D.

२. स्फुट दोहा या पद साहित्य—कबीर के सलोक एवं साखी आदि

§७. प्रबंध काव्य साहित्य दो वर्गों में बंटता है।

१. प्रेमाख्यानक—पद्मावती आदि

२. अन्य—रामचरित मानस आदि

§८. १५०० से १७५० ई० तक के प्राप्य हिन्दी प्रेमाख्यानकों की सूची निम्नलिखित है:—

१. सत्यवती कथा—ईश्वर दास[1]

२. मृगावती—कुतुबन[2]

३. पद्मावती—मलिक मुहम्मद जायसी[3]

४. मधुमालती—मंझन[4]

५. चित्रावली—उसमान[5]

६. पुहुपावती—दुखहरनदास[6]

७. नलदमन—सूरदास लखनवी[7]

१. हिन्दुस्तानी भाग ७ (१६३६) पृ० ८१

२. नागरी प्रचारणी सभा खोज रिपोर्ट (१६००) नोटिस ४

३. यह प्रकाशित हो चुकी है। इसके संस्करणों का उल्लेख आगे किया जाएगा।

४. इसकी प्रतिलिपि का उल्लेख आगे किया गया है।

५. यह नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित हो चुकी है।

६. इसकी पोथी नागरी प्रचारिणी सभा को हाल में प्राप्त हुई है, इसका उल्लेख आगे किया गया है।

७. नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १६, पृ० १२१

८. इन्द्रावती—नूर मुहम्मद[1]

९. हंस जवाहिर—कासिम शाह[2]

१०. ज्ञानदीप—शेख नबी[3]

११. रूपावती—अज्ञात[4]

१२. माधवानल कामकंदला—आलम[5]

१३. राजा चित्रमुकुट की कथा—अज्ञात[6]

१४. उषा अनिरुद्ध—भारथ साह[7]

१५. उषा अनिरुद्ध—रामदास[8]

१६. कनक मंजरी—काशीराम[9]

१७. रस रतन—पुहुकर[10]

१. नागरी प्रचारिणी सभा खोज रिपोर्ट ( १९०२ ) नोटिस १०९

२. प्रकाशित ग्रंथ है, इसके संस्करणों की चर्चा आगे की जायगी।

३. ना० प्र० स० खोज रिपोर्ट ( १९०२ ) नो० ११२

४. इसकी सूचना श्री अगरचन्द नाहटा ने लेखक को दी थी कि यह ग्रंथ बीकानेर राज पुस्तकालय में है परन्तु वहां से सरकारी सूचना मिली कि यह वहां नहीं है।

५. हिन्दी के कवि और काव्य भाग ३ में सम्पूर्ण काव्य प्रकाशित है।

६. ना० प्र० स० खोज रिपोर्ट ( १९०४ ) नो० ७

७. वही ( १९०६ ) नो १४ ए

८. वही ( १९०६ ) नो० २१२ ए

९. वही ( १९०३ ) नो० ७

१०. वही ( १९०५ ) नो० ४८

१८. कुतुब मुश्तरी—कुली कुतुब शाह[१]

१९. गुलशने इश्क—नुसरती[२]

२०. फूलबान—इब्न निशाती[३]

२१. किस्सा सैफुलमुल्क बदीउजमा—गवासी[४]

२२. कामरूप औ कला—तहसीनुद्दीन[५]

२३. अज्ञात ( ? )—फैज[६]

२४. शाह बहराम हुस्न बानू—दौलत[७]

२५. प्रेम रतन—फाजिलशाह[८]

२६. कामरूप की कथा—हरसेवक मिश्र[९]

२७. बेलि क्रिस्न रुकमिणी री—प्रिथीराज[१०]

२८. रूपमंजरी—नंददास[११]

१. ब्रजरत्नदासः खड़ी बोली हिंदी साहित्य का इतिहास (१९९८ वि०) पृ० ९९

२. वही पृष्ठ ९९.

३. हैदराबाद से प्रकाशित

४. हैदराबाद से प्रकाशित

५. हैदराबाद से प्रकाशित

६. ब्रजरत्नदासः उर्दू साहित्य का इतिहास (१९९१) पृ० ५० इसमें रुजवाँ शाह और रुहमफज़ा की प्रेम कहानी है।

७. वही पृ० ५०

८. नागरी प्रचारिणी सभा खोज रिपोर्ट (१९०५) नोटिस ५६

९. वही (१९०५) नो० ९०

१०. प्रकाशित

११. प्रकाशित

२९. ढोला मारू रा दूहा—हरराज[१]

३०. मधुमालती—चतुर्भुजदास[२]

३१. मृगावती की कथा—मेघराज प्रधान[३]

३२. प्रेमवन जोवन निरंजन—रतन[४]

३३. कुतुब सतक—अज्ञात[५]

३४. मोरध्वज राजा की कथा—सूरदास[६]

३५. पद्मिनी चरित्र—लब्धोदय[६]

३६. पद्मिनी चौपाई—हेमरत्न सूरि[७]

३७. चंदकुंवर री बात—प्रतापसिंह[८]

३८. चंदन मलयगिरि री बात—भद्रसेन[९]

३९. बुद्धि रासौ—जल्ह[१०]

३. प्रकाशित

४. ना० प्र० स० खोज रिपोर्ट (१९०२) नं० ४४

५. वही (१९०६) नं० ७४

६. श्यामसुंदरदास: हिंदी साहित्य (१९४४) पृ० २१५

७. ए डिस्क्रिटिव कैटलाग अव बार्डिक एण्ड हिस्टारिकल मैन्युस्क्रिप्ट्स (१९१८) भाग २ पृ० ४२

८. प्रकाशित

९. राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज भाग १ (१९४२) पृ० ५२

१०. वही पृ० ५३

११. वही पृ० २८

१२. वही पृ० २९

१३. वही पृ० ७६

४०. माधवानल कामकंदला—कुशललाभ[१]

४१. मदन सतक—दाम[२]

४२. मोहमरद राजा की कथा—जगन्नाथ[३]

४३. रतनावती—जान[४]

४४. लैला मजनूं—जान[५]

४५. रतन मंजरी—जान[६]

४६. नल दमयंती—जान[७]

४७. पुहुप बरिखा—जान[८]

४८. कमलावती—जान[९]

४९. कामलता—जान[१०]

५०. छवि मोहनी—जान[११]

५१. कलावंती—जान[१२]

१. ए डिस्क्रिप्टिव कैटलाग अव हिस्टारिकल एन्ड वार्डिक मैन्युस्क्रिप्ट्स भाग २ (१९१८) पृ० ३०
२. वही पृ० ३४
३. ना० प्र० स० खोज रिपोर्ट (१९०२) नो० २१४
४. हिन्दुस्तानी १९४५। संख्या ४३ से ६२ तक के ग्रंथों की चर्चा आगे की गई है।
५. वही
६. वही
७. वही
८. वही
९. वही
१०. वही
११. वही
१२. वही

५२. छीता—जान[1]
५३. रूप मंजरी—जान[2]
५४. चंद्रसेन शील निधान—जान[3]
५५. कामरानी पीतमदास—जान[4]
५६. खिज्र खां देवल देवी—जान[5]
५७. कनकावती—जान[6]
५८. कौतूहली—जान[7]
५९. सुभटराइ—जान[8]
६०. मोहिनी—जान[9]
६१. कलंदर—जान[10]
६२. बुधि सागर—जान[11]
९३. माधवानलप्रबंध—गणपति[12]

§९. इन समस्त आख्यानों को हम दो वर्गों में बांट सकते हैं—

१. दक्खिनी

२. उत्तरी

१. वही
२. वही
३. वही
४. वही
५. वही
६. वही
७. वही
८. वही
९. वही
१०. वही
११. वही।
१२. ए डिसक्रिप्टिव कैटलाग आफ़ वार्डिक एण्ड हिस्टारिकल मन्यूस्क्रिप्ट्स (१९१८) भाग २ पृ० ३

§१०. दक्खिनी प्रेमाख्यानों की सूची इस प्रकार है :

१. क़ुतुब मुश्तरी
२. फूलबान
३. किस्सा सैफ़ुल बदीउजमा
४. कामरूप औ कला
५. किस्सा गुलराम और गुलबदन
६. गुलशने इश्क़
७. शाह बहराम हुस्न बानू
८. प्रेमवन जोवन निरंजन

§११. इन प्रेमाख्यानक काव्यों की भाषा दक्खिनी कहलाती है। वह न तो ठीक ठीक हिन्दी है और न ठीक ठीक उर्दू। वह एक संधिकाल की भाषा है। दूसरी बात यह है कि इनकी शैली भी अलग है। उस शैली में वे बीज हमें मिलते हैं जो कालांतर में पनपे और हिंदी की एक सर्वथा नई शैली बन गई जो उर्दू कहलाई।

§१२. उत्तरी हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य दो वर्गों में बंटता है:—

१. डिंगल भाषा में लिखा गया—ढोला मारू रा दूहा
२. पिंगल भाषा में लिखा गया—पद्मावती

डिंगल के आख्यानों की सूची निम्नलिखित है:—

१. बेलि क्रिसन रुक्मिनी री
२. ढोला मारू रा दूहा
३. कुतुब सतक
४. पद्मिनी चरित्र
५. माधवानल काम कंदला—कुशललाभ
६. चंद कुंवर री बात

७. चंदन मलयागिरि री बात
८. बुद्धि रासौ
९. मदन सतक
१० माधवानल प्रबंध

§१३. पिंगल में लिखे गए प्रेमाख्यानक काव्य दो वर्गों में बंटते हैं :

१. छोटे छोटे काव्य—सत्यवती कथा

२. बड़े बड़े काव्य—पद्मावती

§१४. ....छोटे छोटे काव्यों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है :

१. सत्यवती कथा (ईश्वरदास)—इसका रचनाकाल अंत-साक्ष्य के अनुसार १५०० ई० है। इसकी हस्तलिखित प्रति स्व० लाला सीताराम के पास थी। वह पूरी की पूरी ज्यों की त्यों हिन्दुस्तानी भाग ७ (१९३७) में प्रकाशित करवा दी गई है। हस्त-लिखित पोथी आधुनिक है। काव्य का विस्तार ५८ दोहे हैं। इसमें सत्यवती और ऋतुवर्ण की प्रेम कहानी है। दोहा चौपाई छंद का प्रयोग किया गया है।

२. रूपावती—अप्राप्य

३. राजा चित्रमुकुट की कथा—इसके लेखक का नाम तथा काव्य का रचनाकाल अज्ञात है। इसकी एक पोथी नागरी प्रचारिणी सभा काशी में है। उसका लिपि काल १७६३ ई० है। इससे अनुमान होता है कि रचना १७५० ई० से पहले की होना संभव है। इसका विस्तार लगभग ५० दोहे है। दोहे चौपाई छंद का प्रयोग किया गया है।

४. उषा अनिरुद्ध (भारथ साह)—इसका रचनाकाल अज्ञात है परंतु इसकी सं० १७९७ वि० की हस्तलिखित प्रति विद्यमान थी। इसमें उषा अनिरुद्ध का सुप्रसिद्ध पौराणिक आख्यान

छप्पय एवं दोहों में लिखा गया है। ग्रंथ का विस्तार कुल २८३ छंद है।

५. उषा अनिरुद्ध ( रामदास )—इसका कथानक वही है, रचना-काल के विषय में कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। इसकी हस्तलिखित प्रति स्टेट लाइब्रेरी दतिया में १८०४ ई० की है। उससे भी पुरानी पोथी अजयगढ़ में है, इस कारण अनुमानतः यह १७५० ई० से पहले रचा गया होगा। इसका विस्तार लगभग १२०० पंक्ति है।

६. कनक मंजरी ( काशी राम )—इसमें कनक मंजरी और राजकुमार की प्रेम कथा है, इसकी रचना तिथि हमें नहीं मालूम, परन्तु पोथी १७७७ ई० की है। इससे अनुमान लगाया जा सका है कि यह ग्रन्थ १७५० ई० से पहले का होगा। इसका विस्तार लगभग ४०० पंक्तियों का है। इसमें दोहा चौपाई छन्दों का प्रयोग हुआ है।

७. रस रतन ( पुहुकर )—इसकी रचना रम्भावती और सुरसेन की प्रेम-कथा को लेकर सन् १६१६ ई० में हुई थी। ग्रन्थ में अधिकतर दोहा चौपाई छन्द का प्रयोग हुआ है। ग्रन्थ का विस्तार लगभग दो हजार पंक्तियां है।

८. कामरूप की कथा ( हरसेवक मिश्र )—इसमें राजकुमार कामरूप और राजकुमारी कामलता की प्रेम कहानी वर्णित है। इसका रचना काल अज्ञात है, परन्तु इसकी रचना किन्हीं राजा पृथ्वीसिंह के लिए हुई थी जिनकी मृत्यु १७५१ ई० में हुई। इस कारण यह अनुमान किया जा सकता है कि इसका रचनाकाल १७५० ई० से पहले ही होगा। ग्रन्थ का विस्तार लगभग २००० पंक्तियाँ हैं। ग्रन्थ में दोहे छन्द का प्रयोग किया गया है।

९. रूपमंजरी ( नन्ददास )—इसका रचनाकाल ठीक ठीक नहीं मालूम परन्तु नन्ददास कृत होने के कारण यह निश्चित है कि यह १५३७ ई० के लगभग २५-३० वर्ष बाद लिखा गया, इसमें कृष्ण और रूपमंजरी की प्रेम कथा है।

१०. मधुमालती ( चतुर्भुजदास )—इसमें मधु और मालती की प्रेम-कथा गद्य-पद्य में है। ग्रन्थ का रचनाकाल निश्चित नहीं है। स्टेट लाइब्रेरी जोधपुर की पोथी का लिपि काल १७८० ई० है। इससे यह अनुमान होता है कि ग्रन्थ १७५० ई० से पहले का होगा।

११. मृगावती की कथा ( मेघराज प्रधान )—मृगावती और इन्द्रजीत की प्रेम कहानी को लेकर इस काव्य की रचना १६६६ ई० में हुई थी। ग्रन्थ में दोहा चौपाई छन्द का प्रयोग हुआ है। ग्रन्थ का विस्तार लगभग ८०० पंक्तियां है।

१२. मोरध्वज राजा की कथा ( सूरदास )—यह ग्रन्थ १९ वीं शताब्दी के तृतीय चतुर्थांश में दिल्ली से प्रकाशित हुआ था। परन्तु अब अप्राप्य है। प्रस्तुत लेखक इसे नहीं पा सका।

१३. पद्मिनी चौपाई ( हेमरत्नसूरि )—पद्मावती की कहानी को लेकर लिखे गए इस काव्य का रचना काल अज्ञात है। जिनमाणिक्य रुचि जी के पुस्तकालय में सन् १७१४ ई० की एक प्रति है। इससे अनुमान होता है कि इसका रचना काल इससे पहले का होगा। दोहा कवित्त और चौपाइयों के छन्द वाले इस ग्रन्थ का विस्तार लगभग ५०० पंक्तियाँ हैं।

१४. मोहमरद राजा की कथा ( जगन्नाथ )—यह भी प्रकाशित किन्तु अप्राप्य है। मुंशी देवीप्रसाद ने अपनी खोज रिपोर्ट में इसकी सूचना दी है परन्तु उससे इसके रचना काल के विषय में यही पता चलता है कि यह १७५० से पहले का है।

१५. रतनावली (जान)—इसका रचनाकाल १६९१ वि० है और इसमें छन्द दोहा चौपाई है। इसका विस्तार १७५ दोहे है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के पहिले ४३ दोहे हिन्दुस्तानी एकेडेमी की पोथी के प्रारम्भिक अंश के न होने से प्रस्तुत लेखक को उपलब्ध नहीं हैं। इस प्रकार लगभग तीन चौथाई भाग हमें प्राप्त हैं, प्रारम्भ का चौथाई भाग अप्राप्य होने के कारण कथा पूरी तरह से खुल नहीं पाती। कथा नायक कोई राजकुंवर है और नायिका रत्नावली, राजकुमार चित्र दर्शन के द्वारा रत्नावली के प्रेम में पागल हो उठता है। वह उसे पाने के लिए जंगल-जंगल भटकता है और अन्त में पा भी जाता है। पहिले तो दोनों फुलवारी में मिलते हैं परन्तु बाद में दोनों का विवाह हो जाता है। विवाह के पश्चात् कवि ने एक सुखकर षड्-ऋतु वर्णन किया है।

इसके उपरान्त राज कुंवर रत्नावली को अपने घर ले जाता है। मार्ग में वह सिंहल की पद्मिनी से विवाह करता है। अन्त में कवि कहता है—

> सोरह सौ इक्यानवें बरष।
> रतनावलि बाँधी मैं हरष॥
> कथा पुरातन कीन्हीं नई।
> नौ दिन में सूंपरन भई॥

१६. लैला मजनू (जान)—इसका रचना काल १६९१ वि० और छन्द दोहा चौपाई है। इसका विस्तार ६२ पृष्ठ है।

इसमें कवि ने सुप्रसिद्ध लैला मजनूं की प्रेम कहानी दी है। अन्त में लेखक कहता है—

> प्रेम नेम जान्यो नहीं ते निहचै पसु आहिं।
> सोरह सौ इक्यानवें कीन्हों ग्रन्थ वषान॥

१७. रतन मंजरी (जान)—इसका रचनाकाल १६८६ वि० और छन्द दोहा चौपाई है। इसका विस्तार १६४ दोहे है।

प्रारम्भ के ५० दोहे अनुपलब्ध हैं। इस प्रकार ग्रन्थका लगभग पाँचवाँ भाग अप्राप्य है। प्राप्त प्रति रतन मंजरी के नख शिख से प्रारम्भ होती है। इसमें एक उक्ति विशेष नवीन है।

अति छीनी कटि द्रिस्टि न आवै।
छुद्र घंटिका ठौर बतावै॥

किसी राजकुंवर मधुसूदन तथा राजकुमारी रतन मंजरी की प्रेम कथा इसमें दी गई है।

१८. नल दमयन्ती (जान)—इसका रचना काल १७१६ वि० और छन्द दोहा चौपाई है। इसका विस्तार १४६ दोहे है।

इसमें नल दमयन्ती की सुप्रसिद्ध कथा लेखक ने लिखी है, कथानक के विषय में लेखक कहता है।

बाँची मैं बहु ग्रन्थन मांहि।
एक भांति पाई पै नांहि॥
और और भांति से लही।
लगी भली सो बात मैं कहीं॥

१९. पुहुप बरिषा (जान)—इसका रचनाकाल १६७८ वि० और छंद दोहा चौपाई है। इसका विस्तार २७ पृष्ठ है।

यह सम्पूर्ण ग्रंथ प्राप्त है। राजकुंवर पुरुषोत्तम एक पंछी से गुण श्रवणकर सुकेशी से प्रेम करने लगता है और अंत में उससे विवाह कर लेता है।

२०. कमलावती (जान)—इसका रचनाकाल १६९६ वि० और छंद दोहा चौपाई है। इसका विस्तार २०४ दोहे हैं।

इसमें राजकुंवर एवं कमलावती की प्रेम कहानी है। अंत में कवि रचना के विषय में कहता है।

द्वादस दिन में जान कवि कही सुमिरि जगदीस।

२१. छवि सागर (जान)—इसका रचनाकाल १७०६ वि० और छंद दोहा चौपाई है। इसका विस्तार १६ दोहे हैं।

इस ग्रंथ में राजा जैत गुन आगर एवं राजकुमारी छवि सागर की प्रेम कहानी दी गई है।

२२. कामलता (जान)—इसका रचनाकाल १६७९ वि० और छंद दोहा चौपाई है। इसका विस्तार ३२ दोहे हैं।

इसमें हंसपुरी के राजा तथा कामलता की प्रेम कथा है।

२३. कलावती ( जान )—इसका रचनाकाल अस्पष्ट और छंद दोहा चौपाई है। इसका विस्तार ३६ दोहे है।

इसमें राजकुंवर पुरंदर एवं कलावती की प्रेम कथा है।

२४. छीता (जान)—इसका रचनाकाल १६९३ वि० और छंद दोहा चौपाई है। इसका विस्तार ३७ दोहे है।

इसमें छीता एवं राम की प्रेम कथा है। मलिक मुहम्मद जायसी की भांति इस ग्रंथ में भी अलाउद्दीन एक पात्र के रूप में है। परन्तु वह अधम पात्र के रूप में न होकर राम एवं सीता को मिलाने वाले के रूप में है।

२५. रूपमंजरी ( जान )—इसका रचनाकाल १६९४ वि० और छंद दोहा चौपाई है। इसका विस्तार १२२ दोहे है।

इसमें ज्ञान एवं रूपमंजरी की प्रेम कथा है।

२६. मोहिनी ( जान )—इसका रचनाकाल १६९४ वि० और छंद-दोहा चौपाई है। इसका विस्तार १८ दोहे है।

इसमें मोहन एवं मोहिनी की प्रेम कथा है।

२७. चन्द्रसेन शीलनिधान (जान)—इसका रचनाकाल १६९१ वि० और छंद दोहा चौपाई है। इसका विस्तार १८ दोहे है।

इसमें राजा चन्द्रसेन जिसका कि प्रण था

राजा करयौ जिय में नेमु।
नारी सेती करौं न पेमु॥

एवं शीलनिधान नामक राजकुमारी की प्रेम कथा है। अंत में कवि कहता है।

कथा करी यहु जान कवि पहर आठही मांहि।

२८. कामरानी पीतमदास (जान)—इसका रचनाकाल १६९१ वि० और छन्द दोहा चौपाई है। इसका विस्तार १२ दोहे है।

इसमें कामरानी एवं पीतमदास की प्रेम कहानी है।

२९. कलंदर (जान)—इसका रचनाकाल १७०२ वि० और छन्द दोहा चौपाई है। इसका विस्तार २ पृष्ठ है।

इसमें कलंदर एवं एक चेरी की प्रेम कहानी है।

३०. देवलदेवी खिज्रखां (जान)—इसका रचनाकाल १६९४ वि० और छंद दोहा चौपाई है। इसका विस्तार ८५ दोहे है।

इसमें सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक आख्यान को पद्यबद्ध किया गया है।

३१. कनकावती (जान)—इसका रचनाकाल १६७५ वि० और छंद दोहा चौपाई है। इसका विस्तार ८१ दोहे है।

इसमें राजा भरत एवं कनकावती की प्रेम कहानी है।

३२ कौतूहली (जान)—इसका रचनाकाल १६७५ वि० और छंद विविध हैं। इसका विस्तार ३२ पृष्ठ है।

इसमें चन्द्रसेन एवं कौतूहली की प्रेम कथा है।

३३. सुभटराह (जान)—इसका रचनाकाल १७२० वि० और छंद दोहा चौपाई है। इसका विस्तार ६० दोहे है।

इसमें सूरजमल के पुत्र सुभटराइ एवं राजकुमारी के प्रेम की कहानी है।

३४. बुद्धिसागर (जान)—इसका रचनाकाल १६९१ वि० और छन्द दोहा चौपाई है। इसका विस्तार २६ पृष्ठ है।

इसमें मधुकर एवं मालती की प्रेम कथा है।

३५. बांदीनामा (जान)—इसका रचनाकाल अज्ञात और छंद दोहा चौपाई है। इसका विस्तार ४ पृष्ठ है।

इसमें किसी मियां का एक क्रीत बांदी के साथ अनुचित प्रेम का वर्णन है। यह कथा प्रेम कथा के अन्तर्गत नहीं आती। प्रेम कथाओं के कथानकों का ढाँचा ऐसा नहीं होता।

३६. माधवानल काम कंदला (आलम)—इसका रचनाकाल सन् १५९१ है। इसमें कवि आलम ने माधव तथा कामकंदला की सुप्रसिद्ध भारतीय कहानी लिखी है। इसका विस्तार लगभग १५० दोहे है।

संक्षेप में छोटे छोटे काव्यों का यही परिचय है।

§१५. हिन्दी साहित्य के इतिहास में उत्तरी भारत में पिंगल भाषा में सर्गबद्ध शैली में लिखा हुआ और लम्बे लम्बे प्रेमाख्यानक चरित काव्यों का साहित्य हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य की संज्ञा से अभिभूत होता है। प्रस्तुत लेखक की खोज का यही विषय है।

§१६. हिन्दी साहित्य के इतिहासों में हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यों की निम्नलिखित सूची मिलती है:—

१. मृगावती
२. मधुमालती
३. स्वप्नावती

४. मुग्धावती
५. खंडगावती
६. प्रेमावती
७. पद्मावती
८. चित्रावली
९. इंद्रावती
१०. हंस जवाहिर
११. नल दमन
१२. ज्ञान दीप

§१७. इस सूची के ग्रन्थों को हम दो वर्गों म बांट सकत ह :
१. वे नाम जो कि अप्राप्त ग्रन्थों के हैं
२. वे नाम जो कि प्राप्त ग्रन्थों के हैं

§१८. पहले वर्ग के नाम हैं
१. स्वप्नावती
२. मुग्धावती
३. खंडरावती
४. प्रेमावती

§१९. डा० रामकुमार वर्मा के शब्दों में 'नूरक और चदा' की प्रेम कथा के बाद सम्भव है कुछ और प्रेम कथाएं लिखी गई हों, पर वे साहित्य के इतिहास में अभी तक नहीं दिख पड़ीं, मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने पद्मावत में इस प्रेम की परंपरा का निर्देश अवश्य किया है, पर उसके विषय में कोई विशेष परिचय नहीं दिया। उन्होंने पद्मावत में लिखा है:—

बिक्रम धंसा प्रेम के बारा, सपनापति कहं गयउ पतारा।
मूध पाछ मुगधावति लागी, गगन पूर होइगा बैरागी ॥

राजकुंवर कंचनपुर गयऊ, भिरगावति कहं जोगी भयऊ।
साधकुंवर खंडावत जोगू, मधुमालति कहं कीन्ह वियोगू ।।
प्रेमावती कहं सुरपुर साधा, उषा लगि अनिरुध वर बाधा।

इस उद्धरण के अनुसार जायसी के पूर्व कुछ प्रेम काव्य लिखे जा चुके थे। स्वप्नावती, मुग्धावती, मृगावती, खंडरावति, मधुमालती और प्रेमावती, इनमें से मृगावती और मधुमालती तो प्राप्त हैं, शेष के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है।'[1]

§२०. पं० रामचन्द्र शुक्ल एक पग और आगे बढ़कर कहते हैं, 'विक्रमादित्य और उषा अनिरुद्ध प्रसिद्ध कथाओं को छोड़ देने से चार प्रेम कहानियां जायसी के पूर्व लिखी हुई पाई जाती हैं। इनमें से मृगावती की एक खंडित प्रति का पता तो नागरी प्रचारिणी सभा को लग चुका है। मधुमालती की भी फारसी अक्षरों में लिखी हुई एक प्रति मैंने किसी सज्जन के पास देखी थी, पर किसके पास यह स्मरण नहीं। चतुर्भुजदास कृत मधुमालती की कथा नागरी प्रचारिणी सभा को मिली है जिसका निर्माण काल ज्ञात नहीं और जो अत्यंत भ्रष्ट गद्य में है। मुग्धावती और प्रेमावती का पता अभी तक नहीं लगा है।'[2]

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (१९३८ ई०) पृष्ठ ३०६

२. जायसी ग्रंथावली (१९३५ ई०) भूमिका पृष्ठ ४। चतुर्भुजदास कृत मधुमालती के विषय में शुक्ल जी का यह कथन गलत है। ग्रंथ की फोटो कापी सभा में मौजूद है, वह गद्य में नहीं अपितु पद्य में है देखिए ना० प्र० स० खोज रिपोर्ट (१९०२) नोटिस ४४

§२१. अयोध्यासिंह उपाध्याय[1] एवं सत्यजीवन वर्मा[2] का मत भी इन्हीं विद्वानों के पक्ष में है।

§२२. दूसरा वर्ग उन विद्वानों का है जिनमें ए० जी० शिरैफ[3] हैं। इन विद्वानों के विचार से जायसी ने जो नामावली उपर्युक्त उद्धरण में दी है वह प्रेमाख्यानक काव्यों की न होकर लोक प्रचलित प्रेम कहानियों की है जिसके स्वरूप के विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि वह हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य जैसा था। यह भी आवश्यक नहीं कि ये कहानियां लिखित हो हीं, संभव है कि ये एकमात्र मौखिक परंपरा में अस्तित्व रखती हों।

§२३. पहले वर्ग के विद्वानों के अनुमान के मूल में मृगावती का प्राप्त होना है। मृगावती के पता लग जाने के कारण ये विद्वान इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि अन्य काव्य भी लिखे गए होंगे परन्तु आज अप्राप्य हैं और संभव है कि कालांतर में प्राप्त हो जावें। और मधुमालती की खंडित प्रतियां जब सभा को मिलीं तो उन्हें जायसी के पहले का ही मान लिया गया।

§२४. दूसरे वर्ग के विद्वान् उत्तर देते हैं कि मृगावती की जो प्रति प्राप्त हुई थी वह तो आज फिर खो गई है और उसका उल्लेख-मात्र नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में बचा है। खोज रिपोर्ट में ग्रन्थों का रचनाकाल असावधानी के कारण कहीं कहीं पर गलती भी दिया है।

१. हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास पृष्ठ २११
२. नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग ६ पृष्ठ २९४
३. पद्मावती, शिरेफ द्वारा अनूदित (१९४४) पृष्ठ ९

इस कारण मृगावती का रचनाकाल एकमात्र सर्चे रिपोर्ट के आधार पर ही कुछ मान लेना भूल है।[1] मधुमालती की प्रतियाँ जो प्राप्त हुई हैं उनमें प्रारम्भिक पृष्ठ नहीं है और रचनाकाल के विषय में इसी कारण कुछ भी नहीं कहा जा सकता। ब्रजरत्नदास ने तो इसका रचनाकाल ईसा की सत्रहवीं शताब्दी माना है।[2]

§२५. प्रस्तुत लेखक दूसरे वर्ग के विद्वानों की विचारधारा से मत-ऐक्य रखता हुआ उनके तर्कों से मत भेद रखता है। उसके तर्क निम्नलिखित हैं:—

अ. मधुमालती (लेखक-मंझन) का रचनाकाल १५४५ ई० (९५२ हि०) है। इसकी सम्पूर्ण प्रति रामपुर स्टेट लाइब्रेरी, रामपुर में सुरक्षित है। उसमें कवि ने ग्रंथ रचनाकाल ९५२ हि० देते हुए सलीमशाह सूर की प्रशंसा सामयिक राजा के रूप में की है। इतिहास के अनुसार सलीमशाह सूर का शासनकाल १५४५ ई०—१५५४ ई० है। जायसी की पद्मावती इससे पहले की रचना है। इस प्रकार मधुमालती का कोई भी स्वरूप हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य की धारा में रखा जाने योग्य जायसी से पहले का प्राप्त नहीं होता।[3]

१. देखिये गोरा बादल की बात के गद्य ग्रंथ का रचना काल, नागरी प्रचारिणी सभा खोज रिपोर्ट (१९०१) पृ० ४५, तथा देखिए पद्मावती : शेरिफ (१९४४) पृ० ६

२. हिन्दुस्तानी भाग ८ पृ० २०७—२१२

३. जायसी ने पद्मावती की रचना १५२० ई० में की है, इसका उल्लेख आगे किया जायगा। कुछ विद्वान १५४० ई० मानते हैं, तो भी मंझन की मधुमालती बाद की रचना है।

आ. मृगावती (लेखक—कुतुबन) को हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वानों बाबू श्यामसुन्दर दासजी आदि ने देखा था। उसका रचनाकाल निश्चित रूप से ९०९ हि० अर्थात १५०१ ई० था। परन्तु इससे यह प्रमाणित नहीं हो जाता कि जिन अन्य आख्यानों का संकेत जायसी ने अपनी पद्मावती में किया है वे सभी हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य धारा के ही हों।

इ. जायसी के द्वारा संकेत किये गये प्रेमाख्यानों की एक पूर्ण सूची निम्नलिखित है :—

क. कृष्ण गोपी [१]

ख. भर्तृहरि पिंगला [२]

ग. गोपीचन्द [३]

घ. उषा अनिरुद्ध [४]

ङ. शकुंतला दुष्यंत [५]

च. माधवानल कामकंदला [६]

१. जायसी ग्रंथावली (१६३५) पृ० ५७, तासौं जूझ जात जो जीता।
जानत कृष्ण तजा गोपीता।

२. वही पृ० ६५ की जो आहि भरथरी वियोगी।
वै पिंगला गए कजरी आरन।

३. वही पृ० १८२ गोपीचंद जस मैनावती।

४. वही पृ० ६७ जस ऊषा कहं अनिरुध मिला।

५. वही पृ० ६८ जैसे दुसंतहि साकुंतला।

६. वही पृ० ६८ मधवानलाई कामकंदला।

छ. नल-दमयंती [१]

ज. विक्रम स्वप्नावती [२]

झ. मुग्धावती [३]

ञ. प्रेमावती [४]

ट. सीता रावण [५]

ठ. राम सीता [६]

ड. कृष्ण राधा [७]

ढ. कृष्ण चंद्रावली [८]

ण. मृगावती [९]

१. वही पृ० ९८ — भय वियोग जस नलहि दमावति ।

२. वही पृ० ११३ — विक्रम धंसा प्रेम के बारा । सपनावति कहं गयउ पतारा ।

३. वही पृ० ११४ — मूधपाछ मुगुधावति लागी ।

४. वही पृ० ११४ — प्रेमावति कह सुरसर साधा ।

५. वही पृ० १५८ — बिहंसी धनि सुनि के सतभाऊ । हौं रामा तू रावन राऊ ।

६. वही पृ० २०८ — जैस राम दसरथ कर बेटा ।
वही पृ० २०८ — जस असोक बीरौ तर सीता ।

७. वही पृ० २१७ — जहां राधिका गोपन्ह माहां ।

८. वही पृ० २१७ — चद्रावलि सरि पूज न छाहां ।

९. वही पृ० ११४ — राजकुंवर कंचनपुर गयऊ । मिरगावती कहं जोगी भयऊ ।

त. मधुमालती।[1]

§२६. दूसरे वर्ग की नामावली में एक नाम और जोड़ा जा सका है। वह दुःखहरनदास कृत पुहुपावती[2] का है। इस वर्ग की समस्त कृतियों की रूप रेखा इस प्रकार है:—

१. मृगावती[3]—इसके रचयिता शेख बुरहन के शिष्य मियाँ कुतुबन थे। उन्होंने सन् ९०९ हि० (१५०५ ई०) में चन्द्रनगर के राजकुंवर तथा कंचनपुर की राजकन्या मृगावती की प्रेम कहानी लिखी थी। इसकी एक हस्तलिखित प्रति हरिश्चन्द्र पुस्तकालय चौखंभा, बनारस में सन् १९०० ई० के लगभग थी। परन्तु अब वह अप्राप्य है। खोज रिपोर्ट में इसका कथानक इस प्रकार दिया गया है:—

चन्द्रगिरि के राजा गनपत देव का पुत्र कंचन नगर के राजा रूप मुरार की मृगावती नाम्नी कन्या पर मोहित हो गया। इस राजकुमारी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर चले जाने की विद्या ज्ञात थी। राजकुमार ने उसका पता लगाया और अन्त में उसका उससे विवाह हो गया। विवाह के पीछे एक दिन मृगावती राजकुमार को धोखा देकर उसकी अनुपस्थिति में उड़ भागी। राजकुमार भी उसके

१. वही पृ० ११४ साध कुंवर खंडावत जोगू।
मधुमालति कर कीन्ह वियोगू।

२. इस ग्रंथ की चर्चा आगे की गई है।

३. मृगावती (काव्य) Verse. Substance-Country made paper Leaves-350. Size 8 x 6 inches. Lines-18 on a page. Extent 6120 slokas. Appearance-old illustrated. Incomplete. Incorrect. character-Kaithi-Nagari-Place of deposit—Babu Harish Chandra's Library, Chaukhambha, Banaras.

ना० प्र० स० खोज रिपोर्ट (१९००)

विरह में योगी का भेष बदलकर घर से निकल पड़ा। पहले वह समुद्र से घिरे हुए एक पहाड़ पर पहुंचा जहाँ उसने रुकमिन नाम की एक स्त्री को एक राक्षस से बचाया। उस स्त्री के पिता ने इसके प्रत्युपकार में रुकमिन का विवाह योगी से कर दिया। यहाँ से वह उस नगर में जहाँ मृगावती अपने पिता की मृत्यु पर राज-सिंहासन पर राज कर रही थी, पहुँचा। यहाँ वह १२ वर्ष रहा। इधर राजा गनपतदेव अपने पुत्र की बाट जोहते जोहते घबड़ा उठे। अन्त में उन्होंने एक दूत लौटा लाने के लिये भेजा। वह मार्ग में रुकमिन से मिलता हुआ कंचननगर पहुँचा। उसने राजकुमार से उसके पिता का संदेशा कह सुनाया। राजकुमार मृगावती के साथ अपने देश की ओर लौटा और मार्ग में रुकमिन को भी साथ लेता आया। सकुशल घर पहुँच जाने पर बड़ा आनन्द मनाया गया और राजकुमार कई वर्षों तक अपनी रानियों के साथ आनन्द मनाता हुआ जीवन व्यतीत करता रहा। अन्त में एक दिन मृगया में हाथी से गिर कर उसकी मृत्यु हो गई और उसकी दोनों रानियाँ भी उसके साथ सती हो गईं।

इस नोटिस में मृगावती का रचना काल और कुछ उद्धरण भी हैं। वे इस प्रकार हैं।

४ पन्ने नहीं हैं

प्रारम्भ···· चौपाई—सुनुहु बषाना। अबा बकर सुध कर जाना।
उही सो दूसर ठाऊं। जिह के अदल क आहे नाऊं॥

उसमान बचन दीन के लिषे। जेरे महमद अधरहु सिखे॥
'अली सेर बिध आपुन कीन्हा। अगम गढ़ उन सो कर दीन्हा॥
असृत धात की पवर उपारे। गड सो उलटी पोहमी धर मारे॥
दोरहा—चार मीत हैं पंडित चारों हैं समतूल।
मान सरोदक अमल भरे कंवल कर फूल॥

**चौपाई**—सेष बुढन जग साया पीरू । नांव लेत सुध होय सरीरू ॥
कुतबन नाम लेइ पा धरे । सरबर दो दुह जग नीरमरे ॥
पाछले पाप धोय सब गए । झरहिं पुराने और सब नए ॥
नैकै भया आज औतारा । सब सों बड़ा सो पीर हमारा ॥
जिह को बाट दिखाई होई । पोहचे एक निमक मंह सोई ॥

**दोहरा**—गुरु पंथ दिखाए दीन है जो चल जाने कोय ।
नीमक एक मंह पहुँचे जो सत भाव सों होय ॥

**चौपाई**—साहे हुसेन आह बड़ राजा । छत्र सिंहासन उनको छाजा ॥
पंडित और बुधवंत सयाना । पढ़े पुरान अरथ सब जाना ॥
धरम दुदीस्टल युधिष्ठिर उनको छाजा । हम सिर छाह जियो जग जारा ॥
दान देइ और गनत न आवे । बलि और कस न सरबर पावे ॥
राय जहाँ लौं गंद्रय रहहीं । सेबा करहिं बार सब चहहीं ॥

**दोहरा**—चतुर सुजान भाषा सब जाने ऐस न के देखूं कोए ।
सबा सुनहु सब कान दै झुनिरे देषावहु सोए ॥

कुछ पन्ने खण्डित जान पड़ते हैं

**चौपाई**—.................................हो । नौ सौ नव जब संवत अहो ।
रे अ? मोहर्रम चाँद उजयारी । यह कवि कही पूरी संवारी ॥
गा हा दोहा अरेल अरज । सौरठा चौपाई कै सरज ॥
सास्तर आषी बहुते आए । और देसी चुनि-चुनि कछु लाए ॥
पढ़त सुहावन दीजै कानू । इह के सुनत न भावौ आनू ॥

**दोहरा**—दोए मास दस दिन महीं यह रे दौराए जाए ।
एकएक बोल मोती जस मुखा इकठा मन चित्त लाए ॥

**अन्त**—रुकमनी पुनि वैसेहि मर गई । कुलवंती सत सो सती भई ॥
बाहर वह भीतर वह होई । घर बाहर को रहे न जोई ॥
विध कर चरित न जानै आनू । जो सिरजे सो जाहि निरानू ॥

गंग तीर लैके सर रचा। पूजी अवध कहो जो बचा ॥
राजा संग जरी रानी चौरासी। ते सब के गए इंद्र कबिलासी ॥
दोहरा—मिरगावति और रुकमिनी लैके जरी कुंवर के साथ।
भसम भई जर तिल येक में तिन्ह रहा न गात ॥

२. मधुमालती[1]—इसके रचयिता मंझन शेख थे। उन्होंने सलीमशाह सूर के राज्यकाल में सन् ९५२ हि०[2] ( १५४५ ई० ) में मनोहर एवं मधुमालती की प्रेम कथा लिखी थी। इनका नाम कहीं कहीं पर जम्मन[3] भी मिलता है परन्तु वह विशेष सही प्रतीत नहीं होता। अभी तक यह सम्पूर्ण ग्रन्थ अप्राप्य था परन्तु अब रामपुर स्टेट पुस्तकालय में इसकी एक हस्तलिखित प्रति का पता चल गया है[4]। प्रस्तुत लेखक उसे प्राप्त करने में अभी तक असफल रहा है।

१. रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास ( १९९९ ) पृष्ठ ११५ शुक्लजी ने इसे जायसी से पहले का कवि माना है परन्तु यह सही नहीं है।

२. सन नौ सै बावन जब भए। सनै बरख कुल पर हर गए ॥
तब हम जी उपजी अभिलाषा। कथा एक बांधौं बस भाषा ॥
नागरी प्रचारिणी पत्रिका (२००२) पृ० ६१

३. कैटेलाग औफ़ दि परशियन मेन्युस्क्रिप्ट्स इन दि ब्रिटिश म्यूजियम (१८८१) पृष्ठ ७००

४. इस प्रति के आधार पर एक लेख नागरी प्रचारिणी पत्रिका (सं० २००२) में प्रकाशित हुआ है। इसमें रामपुर स्टेट लाइब्रेरी की प्रति का विवरण दिया गया है। यह प्रति अत्यंत सुंदर ढंग से लिखी हुई है और इसका प्रत्येक पृष्ठ प्रचुरतया सुवर्णालंकृत है। पूरी पुस्तक २४९ पृष्ठों की है और प्रत्येक पृष्ठ में १५ पंक्तियां हैं। केवल पहला पन्ना गायब जान पड़ता है। सारी पुस्तक फारसी लिपि में है। इस हस्तलिखित प्रति की पुष्पिका इस प्रकार है:—

नुस्खा मधुमालत तस्नीफ मलिक मंझन बतारीख शमम सह सफ़र बवक़्त शाम रोज सेहशंबा हर मुंफरुल खिलाफत अकबराबाद दर हवेली अलीशेर मर्हूम हमराह नवाब हुसेन अली खां दर अहद बादशाह मोहम्मद शाह गाजी बखत फकीर आसी खादुमुल्मुल्क..........नविश्तै मियां अब्दुर्रहमान सल्लिमहू मुत्वत्तिन करबा बदो सराय तमाम शुद ।

इस पुष्पिका से मधुमालती की इस हस्तलिखित प्रति का लिपिकाल सम्राट मोहम्मदशाह के शासन काल में होना विदित होता है ।

पुस्तकालय के रजिस्टर में इस पुस्तक के पुस्तकालय में प्रविष्ट होने की तिथि दी है—१६ अक्तूबर सन् १६०३—नागरी प्रचारिणी पत्रिका २००२ पृ० ६०—१

मधुमालती की एक प्रति स्व० जगमोहन वर्मा को मिली थी। वे उसके विषय में लिखते हैं:—

मधुमालती की एक अपूर्ण प्रति मुझे इस वर्ष काशी के गुदड़ी बाजार में मिली। यह ग्रन्थ १७ पन्ने से १३३ पन्ने तक है। पुस्तक उर्दू लिपि (फारसी?) में अत्यंत शुद्ध और सुन्दर अक्षरों में लिखी हुई है। भाषा मधुर है। पांच पांच पंक्तियों के बाद एक दोहा है। आदि और अंत के पृष्ठ न होने से ग्रंथकर्ता के ठीक नाम, सिवाय मंझन के जो उसका उपनाम है, और उसके निर्माण काल आदि का पता नहीं चलता। ग्रंथ के आदि के ३९ पन्नों तक बाएं पृष्ठ पर के किनारे पर दो दो पंक्तियों में फारसी भाषा में कुछ याददाश्त लिखी है, जिनके अंत में ११ रवि उस्सानी सन् १०६९ हिजरी की मिती है। याददाश्त में उसी समय का वर्णन है। इससे अनुमान होता है कि यह प्रति उस समय संवत् १७१६ के पहले की लिखी हुई है।

चित्रावली (१९१२) भूमिका

यह प्रति सभा की प्रतियों से भिन्न है। अब इसका पता नहीं लगता। श्री सत्य जीवन वर्मा ने अपने आख्यानक काव्य निबन्ध में इससे बहुत से उद्धरण दिये हैं।

इस ग्रन्थ का फारसी अनुवाद भी हुआ था[1]। प्रस्तुत लेखक अनुवाद के आधार पर कार्य करना चाहता था परन्तु युद्ध जनित परिस्थितयों के कारण उसे भी प्राप्त करने में असमर्थ रहा[2]। नागरी प्रचारिणी सभा काशी में इस ग्रन्थ की दो हस्तलिखित प्रतियाँ हैं। दोनों प्रतियाँ अपूर्ण हैं। एक प्रति फारसी लिपि में है और दूसरी देवनागरी में। फारसी वाली में प्रारम्भिक दस पन्ने और अन्त में चौदह पन्ने नहीं हैं। देवनागरी वाली प्रति में प्रारम्भ में २७२ और मध्य में ८० दोहे नहीं हैं। अन्त में पुष्पिका भी है जिसमें इसका लिपिकाल १६४४ वि० दिया है। इन्हीं दोनों प्रतियों को मिला कर पढ़ने से प्रारम्भ के दस पन्ने तथा मध्य में कुछ दोहे कम रहते हैं। लेखक ने इन्हीं का उपयोग किया है। प्रारंभिक भाग के लिए रामपुर की पोथी के उद्धरणों का सहारा ले लिया है। इस काव्य की कहानी इस प्रकार है :—

कनेसर नगर के राजा सूरजभान के पुत्र मनोहर नामक सोए हुये एक राजकुमार को अप्सराएँ रातों-रात महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती की चित्रसारी में रख आईं। वहाँ जागने पर दोनों मिले और परस्पर मोहित हो गये। राजकुमारी के पूछने पर मनोहर ने अपना परिचय दिया और कहा—'मेरा अनुराग तुम्हारे ऊपर कई जन्मों का है। जिस दिन मैं इस संसार में आया,

१. केटलाग ऑफ् दि परशियन मेन्युस्क्रिप्ट्स इन दि ब्रिटिश म्यूजियम (१८८१) पृ४ ८०३

२. इसकी प्रतिलिपि इम्पीरियल लाइब्रेरी कलकत्ता में भी है परन्तु वहाँ से उत्तर दिया गया कि युद्ध के कारण यह प्राप्य नहीं है।

उसी दिन से तुम्हारा प्रेम मेरे हृदय में उत्पन्न हुआ। बातचीत करते करते दोनों एक साथ सो गये और अप्सरायें राजकुमार को उठाकर फिर उसे घर रख आईं। जागने पर दोनों अपने स्थान पर प्रेम में व्याकुल हुये। राजकुमार वियोग से दुखी होकर अपने घर से निकल पड़ा। उसने समुद्र की यात्रा की। तब तूफानों के कारण उसके इष्टमित्र पृथक हो गये। राजकुमार एक पटरे पर बहता हुआ एक जंगल में जा लगा, जहाँ पलंग पर एक सुन्दर स्त्री लेटी दिखाई पड़ी। जब उसने पूछा तो पता चला कि वह चितबिसरामपुर के राजा चित्रसेन की कुमारी प्रेमा थी, जिसे एक राक्षस उठा लाया था। इस पर मनोहर ने उस राक्षस को मारकर प्रेमा का उद्धार किया। प्रेमा ने मधुमालती को अपनी सखी बतलाकर उसका पता दिया और दोनों को मिलाने का वचन दिया। तब वे दोनों प्रेमा के पिता के नगर में आये। प्रेमा के पिता ने मनोहर का प्रेमा पर किये गये उपकार को सुनकर उसका विवाह मनोहर से करना चाहा; पर मनोहर को अपना भाई मानकर प्रेमा ने इसे अस्वीकार कर दिया।

दूसरे दिन मधुमालती अपनी माता रूपमंजरी के साथ प्रेमा के घर आई और प्रेमा ने उसके साथ मनोहर कुमार का मिलाप करा दिया। सवेरे रूपमंजरी ने चित्रसारी में जाकर मधुमालती को मनोहर के साथ पाया। जगने पर मनोहर ने अपने को अन्य स्थान पर पाया, पर रूपमंजरी ने अपनी कन्या को ऐसे व्यवहार पर बुरा भला कहकर प्रेम छोड़ने को कहा। पर मधुमालती के न मानने पर माता ने उसे पक्षी हो जाने का शाप दिया। जब वह पक्षी बनकर उड़ गई तब उसकी माता अति व्याकुल हुई, पर मधु-मालती का कहीं भी पता न लगा। मधुमालती पक्षी रूप में उड़ती

बहुत दूर निकल गई तो ताराचन्द नामक एक राजकुमार ने उसे अत्यन्त सुन्दर पक्षी समझ पकड़ना चाहा। इधर मधुमालती भी ताराचन्द को मनोहर समझ कर कुछ रुक गई और वह पकड़ कर एक सोने के पिंजरे में बन्द कर दी गई। एक दिन पक्षी रूप मधुमालती ने अपने प्रेम की सारी कहानी ताराचन्द को कह सुनाई, इस पर उसने इसे मनोहर से पुनः मिलाने हेतु प्रतिज्ञा की। अंत में वह उस पिंजड़े को लेकर महारस नगर में पहुँचा। मधुमालती की माता पुत्री को प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न हुई तथा उसने मंत्र पढ़कर उस पर जल छिड़का। वह फिर पक्षी से मनुष्य हो गई। मधुमालती के माता-पिता ने उसका विवाह ताराचन्द के साथ करने का विचार किया, पर ताराचन्द ने कहा, 'मधुमालती मेरी बहन है और मैंने उससे कुंवर मनोहर को मिलाने की प्रतिज्ञा की है।' तब मधुमालती व उसकी माता ने यह सारा हाल प्रेमा को लिखकर भेजा। प्रेमा इस स्थिति से खिन्न होती है परन्तु उसी समय उसे अपनी सखी द्वारा मनोहर का एक योगी के वेश में आने का समाचार मिलता है। अन्त में मधुमालती के पिता ने राजा चित्रसेन के यहाँ आकर मधुमालती का मनोहर के साथ धूमधाम के साथ विवाह कर दिया। मनोहर, मधुमालती और ताराचन्द बहुत दिनों तक प्रेमा के यहाँ अतिथि रहे। एक दिन आखेट से लौटने पर ताराचन्द प्रेमा और मधुमालती को एक साथ झूले पर झूलते हुये देखकर प्रेमा पर मोहित होकर मूर्छित हो गया। मधुमालती और उसकी सखियों ने उसका उपचार किया। अन्त में ताराचन्द व प्रेमा का भी विवाह हो जाता है।

३. पद्मावती—इसके रचयिता सुप्रसिद्ध मलिक मुहम्मद जायसी थे। इसके रचनाकाल के विषय में विद्वानों में मतभेद है। विद्वानों

का एक वर्ग ९२७ हि० मानता है[१] और दूसरा ९४७ हि०[२]। लिपि की त्रुटियों के कारण यह विवाद उठ खड़ा हुआ है। पद्मावती का बंगला अनुवाद भी हुआ था। उसमें स्पष्ट लिखा है :—

सेख मुहम्मद जाति जखन रचिल ग्रन्थ
संख्या सप्तविंश नवशत।[3]

सन् ९४७ हि० मानने वाले विद्वान कहते हैं कि कवि ने शेरशाह सूर की वन्दना सामयिक राजा के रूप में की है। शेरशाह सूर ९४७ हि० में गद्दी पर बैठा था।[४] इस कारण ग्रन्थ का रचनाकाल ९४७ हि० से पहले का नहीं हो सकता। पहले वर्ग के विद्वान इस तर्क का निराकरण करते हुये कहते हैं, कवि ने कुछ थोड़े से पद्य तो सन् १५२० ई० = ९२७ हि० में ही बनाए थे, पर ग्रन्थ को १९ या २० वर्ष पीछे शेरशाह के समय में पूरा किया। इसी से कवि ने भूतकालिक क्रिया 'अहा' और 'कहा' का प्रयोग किया है :—

सन् नौ सै सत्ताइस अहा। कथा अरम्भ बैन कवि कहा।।[५]

प्रस्तुत लेखक १५२० ई० = ९२७ हि० को मानने वाले विद्वानों से मतऐक्य रखते हुये एक और तर्क ९२७ हि० के पक्ष में रखता

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ १०
२. पद्मावती (१९१२) एशियाटिक सोसाइटी बंगाल पृष्ठ ३६
३. माधुरी (१९२६) पृष्ठ ५४५
४. शेरशाह गद्दी पर २६ जून १५३९ ई० में बैठा था। कुछ विद्वानों का विचार है कि इसके पहले इसका सिक्का चल गया था। ९४७ हि०, ८ मई १५३९ ई० से प्रारम्भ होता है। देखिए दि केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग ४ (१९३७) पृष्ठ ५१
५. जायसी ग्रन्थावली (१९३५) पृष्ठ १०

है। वह यह है कि मलिक मुहम्मद जायसी ने अपना अंतिम ग्रंथ आखरी कलाम १५२९ ई० = ९३६ हि० में लिखा था, यह अंत-साक्ष्य से प्रमाणित एवं निर्विवाद है:—

सन् नौ से छत्तीस जब भए। तब एहि कथा के आखर कहे ॥[1]

जब कि कवि का आखिरी कलाम अर्थात् कवि की अंतिम रचना[2] ९३६ हि० की है तो पद्मावती निश्चय रूप से उससे पूर्व की होगी।

• प्रस्तुत लेखक इस समस्या को एक दूसरे दृष्टिकोण से भी देखता है। उसने १५०० ई० से १७५० ई० तक लिखे गए सारे हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यों को अपने अध्ययन का विषय माना है। ९२७ हि० = १५२० ई० तथा ९४७ हि० = १५४० ई० दोनों सन् ही १५००-१७५० ई० के बीच पड़ते हैं। इस कारण प्रस्तुत पुस्तक के लिये यह विवाद विशेष महत्वपूर्ण प्राप्त नहीं होता।

पद्मावती के बंगला अनुवाद की चर्चा ऊपर हो चुकी है। वह १६४० ई० में अराकान के नवाब मंगन ठाकुर ने आलोउजालो अथवा अलाओल नामक कवि से करवाया था।[3] बंगाल के अतिरिक्त उर्दू[4] एवं फारसी[5] में भी इसके अनुवाद हुए। डा० ग्रियर्सन ने

१. जायसी ग्रन्थावली (१९३५) पृष्ठ ३८८

२. आखिरी कलाम का शाब्दिक अर्थ कवि की अंतिम रचना है। इस शब्द का व्यवहार भी इसी अर्थ में होता है। संभव है कवि ने शब्दों पर खेल-कर आखिरी शब्द में कयामत का भाव भी भर दिया हो।

३. दिनेशचन्द्र सेन—ए हिस्ट्री ऑफ बंगाली लैंग्वेज एण्ड लिटरेचर (१९११) पृष्ठ ६

४. प्रकाशक नवल किशोर प्रेस लखनऊ

५. कैटेलाग ऑफ दि परशियन मैन्यूस्क्रिप्टस इन दि ब्रिटिश म्यूजियम लाइब्रेरी १८८३ पृ० ७६८

इसका अनुवाद अंग्रेजी में प्रारम्भ किया था जो प्रथम दस खंडों तक ही हो सका था। उसको यू० पी० गवर्नर के भूतपूर्व एडवाइजर श्री ए० जी० शिरैफ् ने पूरा कर रायल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल से प्रकाशित करवाया है।[1] इसका एक खड़ी बोली के गद्य में अनुवाद डा० वासुदेव शरण अग्रवाल कर रहे हैं।[2] खड़ी बोली में थोड़ा सा अंश श्री राधाकृष्णदास ने किया था[3] और वह पद्मावत खंड की वार्तिक कौमुदी नामक से आगरा से सन् १८८२ ई० में प्रकाशित भी हुआ था। फ्रैंच भाषा में इसके कुछ भागों का अनुवाद श्री पेती महोदय ने किया था। वह पेरिस से १८५६ ई० में प्रकाशित हुआ था।[4]

मूल पद्मावती के कई संस्करण भी प्रकाशित हुए हैं। प्रस्तुत लेखक ने जायसी ग्रंथावली द्वितीय संस्करण का पाठ सर्वोत्तम माना है एवं उसका ही उपयोग किया है। परन्तु यहां पर यह स्पष्ट कर देना वह अपना कर्तव्य समझता है कि जिन हस्तलिखित प्रतियों को उसने देखा है उनको देखते हुए वह जायसी ग्रन्थावली के पाठ को विशेष वैज्ञानिक नहीं मानता। पद्मावती एक अच्छे संस्करण की अपेक्षा रखती है। संक्षेप में पद्मावती की कहानी इस प्रकार है:—

१. यह १९४४ में प्रकाशित हुआ है

२. डा० वासुदेव शरण अग्रवाल एम. ए., पी. एच-डी., डी. लिट्., अध्यक्ष, म्यूजियम ऑफ़ सैंट्रल एशियन एन्टिक्विटीज, दिल्ली

३. कैटलाग्ज ऑफ़ दि हिंदी, पंजाबी, सिन्धी एंड पश्तो प्रिन्टेड बुक्स इन दि लाइब्रेरी ऑफ दि ब्रिटिश म्यूजियम (१८९३) पृ० १०३

४. वही

सिंहलगढ़ के राजा गंधर्वसेन और रानी चंपावती के एक संतान हुई। उसका नाम पद्मावती रखा गया। पद्मावती अत्यन्त सुन्दर थी। पाँच वर्ष की आयु प्राप्त करने पर उसने पढ़ना प्रारंभ किया। पढ़ने में वह बहुत दक्ष थी। जब वह बारह वर्ष की हो गई तो सात खंड वाले महल में उसे अलग वास-स्थान दिया गया। उसकी अगणित सखियाँ थीं और उसके पास एक तोता था। तोते का नाम हीरामन था। वह महापंडित था और वेद शास्त्र पढ़ा था। गंधर्वसेन को अपने वैभव का बड़ा गर्व था। इस कारण वह पद्मावती का विवाह किसी से नहीं करता था। एक दिन मदन संतप्त होकर पद्मावती ने हीरामन से कहा—'हीरामन सुनो, दिन-दिन मुझको मदन अधिक सताता है। पिता मेरा विवाह नहीं करवाते और डर के मारे माँ भी कुछ नहीं कह सकतीं। देश-देश के वर मेरे लिए आते हैं; परन्तु पिता उनकी ओर आँख उठा कर भी नहीं देखते।' हीरामन ने कहा—'यदि तुम्हारी आज्ञा है तो देश-देशांतर घूमकर मैं तुम्हारे योग्य वर खोजूंगा। जब तक मैं लौटकर नहीं आता, तब तक धैर्य धारण करो।' कोई दुर्जन इस बात को सुन रहा था। उसने राजा से सारी बात कह दी। राजा ने सुए को मार डालने की आज्ञा दी। परन्तु जब तक मारनेवाले वहाँ तक आ सके, रानी ने उसे छिपा दिया। नौकर कह-सुन कर लौट गए; परन्तु हीरामन ने कहा—'रानी, यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो अब वन जाऊँ। जब राजा नाराज़ हो गए हैं तो यहाँ रहने में कुशल नहीं।' रानी ने उसे उड़ जाने दिया।

हीरामन उड़ गया। वह जंगल में गया। वहाँ पर उसे बहुत से पक्षी मिले। उन्होंने उसका बड़ा आदर किया। वह उनके साथ बड़े सुख से रहने लगा।

एक दिन वहाँ एक व्याध आया। हीरामन उसके जाल में फँस गया। बहेलिए ने उसे अपने झावे में रख लिया और ले गया।

चित्तौड़ में चित्रसेन नामक राजा राज्य करता था। उस के एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम रत्नसेन रखा गया। ज्योतिषियों ने उसके जन्म लेते ही उसे बतलाया कि यह बड़ा सौभाग्यवान् है। यह पद्मावती से विवाह करेगा और सिंहलद्वीप में जाकर सिद्ध बनेगा।

चित्तौड़ का एक बनिया सिंहलद्वीप व्यापार करने के लिए गया। एक गरीब ब्राह्मण भी किसी से ऋण लेकर उस बनिए के साथ गया। सिंहल दीप में जाकर उस ब्राह्मण ने देखा कि वहाँ बहुत बड़ा बाजार लगा हुआ है और सभी चीजें ऊँचे दामों की हैं। इस कारण वह बड़ा निराश हो उठा। इतने में वह व्याधा हीरामन को ले आया। ब्राह्मण उसके सोने जैसे रंग को देखकर विमोहित हो उठा। उसने तोते से पूछा—'तुझ में गुण भी है या तू निरगुन ही है।' हीरामन ने उत्तर दिया—'मैं ब्राह्मण और पंडित दोनों हूँ। जब इस पिंजड़े के बाहर था तो मेरे पास सभी गुण थे; परन्तु जब बंदी बना हुआ हूँ, तब तो कोई भी गुण नहीं हैं।' ब्राह्मण ने उसे खरीद लिया और चित्तौड़ ले आया।

चित्तौड़ के राजा चित्रसेन की मृत्यु हो चुकी थी और रत्नसेन गद्दी पर बैठा था। उसके दरबार में एक दिन यह बात चली कि सिंहल से कुछ बनिए आए हैं, वे विचित्र-विचित्र वस्तुएँ लाए हैं, जिनमें एक ब्राह्मण एक अत्यन्त सुन्दर तोता लाया है। राजा ने अपने नौकरों को भेजकर पंडित को बुलवाया। दरबार में आकर हीरामन ने कहा मेरा नाम हीरामन है, मैं तुम्हारी भेंट पद्मावती से करवा दूँगा और वहीं पर तुम्हारी सेवा करूँगा। रत्नसेन ने यह सुनकर उसे मोल ले लिया।

थोड़े दिन बीतने पर एक दिन राजा शिकार खेलने गए हुए थे, नागमती जो कि रत्नसेन की पटरानी थी, ने हीरामन से पूछा, 'मेरे स्वामी के प्रिय, यह बतलाओ कि क्या मुझसे अधिक सुन्दर भी कोई

स्त्री तुमने इस संसार में देखी है ? क्या तुम्हारे सिंहलद्वीप की पद्मिनी स्त्रियां मुझ से अधिक सुन्दर हैं ?' पद्मावती के रूप का स्मरण कर हीरामन हँसा और बोला, 'वास्तव में सुन्दर वह है जिसे उसका प्रिय प्यार करे। और यदि वैसे पूछती हो तो सिंहल की पद्मिनियों और तुम में कोई भी तुलना नहीं है। तुम में और उन में दिन और रात का अन्तर है। वे सोने की बनी हैं और सुगन्ध से भरी हुई हैं !' नागमती ने जब यह उत्तर सुना तो उसे बड़ी चिन्ता यह हुई कि रत्नसेन से यह तोता अगर यह बात कह देगा तो वह उसे छोड़कर सिंहल की ओर उसे प्राप्त करने के लिए चल देगा। इस कारण उसने अपनी धाय को वह तोता मार डालने के लिए दे दिया। धाय उसे ले गई। यह सोचकर कि यह तोता राजा का प्यारा है और जिसे स्वामी चाहता हो उसे मारना नहीं चाहिए उसने उसे न मारा और छिपा लिया। जब रत्नसेन शिकार खेलकर लौटे तो उन्होंने हीरामन की खोज की। नागमती ने सभी बात सच सच बतला दी। राजा को इस पर बड़ा क्रोध आया। नागमती धाय के पास दौड़ी हुई गई। धाय ने तोता दे दिया। रानी ने वह तोता राजा को लाकर दे दिया।

राजा ने तोते से सत्य बात पूछी। तोते ने सिंहल की बड़ी प्रशंसा करते हुए गंधर्वसेन का परिचय दिया और कहा कि उसकी कन्या पद्मावती अत्यन्त सुंदर है। राजा ने ज्यों ही यह सुना उस के मन में प्रेम जाग गया। उसने उस का नखशिख पूछा।

हीरामन ने कहा, 'राजा, उसका शृंगार का क्या वर्णन करूं ? वह उसी पर शोभा देता है। उसके बाल कस्तूरी रंग के घुंघराले हैं। मांग लाल रंग की है और ललाट द्वितीया के चांद की तरह है। इसी प्रकार हीरामन ने उसका सारा नखशिख बताया।

राजा इस नखशिख को सुनते ही मुरझा गया। वह बेहोश हो

गया। उसके मुख से बस त्राहि त्राहि का शब्द भर निकलता था। राजा के कुटुम्बी-परिजन सभी आ गए। परन्तु किसी की भी समझ में कुछ नहीं आता था। जब राजा को होश आया तो वह रोने लगा। सब ने उसे समझाया। परन्तु उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया। हीरामन ने भी समझाया, 'राजा, मन में धैर्य धरो और विचार करो। प्रीति करना अत्यन्त कठिन है। वह सिंहल का पथ अगम है। वहाँ जाना बड़ा कठिन है। वहाँ जोगी संन्यासी ही जा पाते हैं। तुम भोगी व्यक्ति हो, तुम्हारा वहां जाना अत्यन्त कठिन है।' राजा ने ज्योंही यह बात सुनी, वह जाग सा पड़ा। उसने शीघ्र ही सिंहल यात्रा का निश्चय कर लिया।

राजा ने राज्य छोड़ दिया और वह जोगी हो गया और चल दिया। रत्नसेन सात समुद्र पार करके सिंहलद्वीप पहुँच गया। हीरामन उसे एक जगह टिकाकर पद्मावती के पास गया। पद्मावती काम से तड़प रही थी।

इसी व्यथा के बीच हीरामन पहुँच गया। पद्मावती को ऐसा लगा मानो उस में प्राण आ गए हों। रानी उसे गले से लगाकर रोई और उसने कुशल पूछी। हीरामन बोला, 'रानी, तुम युग युगों तक जीती रहो। मैं यहाँ से वन में उड़कर गया। वहाँ पर एक व्याध ने मुझे पकड़ लिया और एक ब्राह्मण के हाथों में बेच दिया। ब्राह्मण मुझे जंबूद्वीप ले गया। वहाँ चित्रसेन का पुत्र रत्नसेन चित्तौड़ में राज्य कर रहा था। वह देश बड़ा ही वैभववान एवं सुंदर है। रत्नसेन में बत्तीसों शुभ लक्षण हैं। उसने मुझे ले लिया। उसे देखकर मेरी इच्छा हुई कि वह तुम्हारे योग्य है, इस कारण तुम्हारा वर्णन मैंने उससे किया। तुम्हारा वर्णन सुनते ही उसके अन्दर प्रेम की चिनगी पड़ गई। वह तुम्हारे लिए राज्य छोड़कर भिखारी हो गया। वह सोलह हजार चेलों के साथ योगी बनकर

आया है और महादेव की मढ़ी में है।' यह सुनकर पद्मावती के मन में अभिमान हुआ। जोगी से प्रेम करने को वह अपमान समझती थी। हीरामन फिर बोला, 'रानी, तुम्हारे विरह में उसने अपनी कंचन जैसी काया जलाकर भस्म कर दी है।' यह सुनकर रानी के मन में दया उत्पन्न हुई और काम भी जागा। वह बोली, 'यदि वह योगी अब मर जाएगा तो यह हत्या अब मुझे ही लगेगी। अब मैं बसंत पूजा के बहाने वहाँ जाकर उससे मिलूंगी।' यह सुनकर हीरामन प्रसन्न वदन वहाँ से उड़कर रत्नसेन के पास गया और पद्मावती का संदेश उसने उसे सुना दिया।

बसंत की श्री पंचमी को पद्मावती महादेव की पूजा के लिए सखियों के साथ वहाँ गई। पद्मावती ने महादेव की पूजा करते हुए कहा, 'देवता, मेरी सारी सखियों का विवाह हो गया है, परन्तु अभी तक मेरे लिए वर नहीं मिलता। मेरी इच्छा पूरी करो और मुझे एक वर मिला दो।' इसी समय एक सखी हँसकर बोली, 'रानी, यह तमाशा तो देखो। पूर्व द्वार पर बहुत से योगी आए हुए हैं। उनमें एक गुरु कहलाता है वह बत्तीस लक्षण युक्त राज कुमार प्रतीत होता है।' यह सुनकर पद्मावती वहाँ गई। उसको देखते ही राजा बेहोश हो गया। पद्मावती ने उसके शरीर पर चन्दन लगाया। एक क्षण के लिए तो राजा अवश्य जागा परन्तु शीघ्र ही ठण्डक पाकर और गहरी नींद में सो गया। तब रानी पद्मावती ने उसके हृदय पर चन्दन से यह लिखा कि जोगी, तू भीख लेना नहीं सीखा है। जब घड़ी आई तब तू सो गया। यह लिखकर पद्मावती लौट गई। रात में उसने स्वप्न में देखा कि चन्द्रमा का उदय पूर्व से हुआ और सूर्य का पश्चिम से। फिर सूर्य चाँद के पास चला आया और चाँद और सूर्य दोनों का मिलन हो गया है। और

हनुमान ने लंका लूट ली। सखियों से जागने पर उसने सपने का अर्थ पूछा। सखियों ने कहा कि तुम्हें वर प्राप्त होने वाला है।

पद्मावती के चले जाने पर रत्नसेन जागा। वह पद्मावती को गया हुआ देखकर रोने लगा और जल मरने का निश्चय करने लगा।

उसी समय वहाँ पर महादेव एवं पार्वती पहुँच गए। उन्होंने चिता देखकर रत्नसेन से आत्महत्या और योग नष्ट करने का कारण पूछा। राजा ने संक्षेप में अपनी व्यथा बतलाई। पार्वती के हृदय में उसे सुनकर दया आ गई। वह अप्सरा के समान सुंदर रूप धारण कर बोली, 'राजकुमार, मेरी बात सुनो। मुझ जैसी सुंदर और कोई स्त्री नहीं है। इन्द्र ने मुझे तुम्हारे पास भेज दिया है। यदि पद्मावती गई तो जाने दो। तुम्हें अप्सरा मिल गई।' रत्नसेन ने कहा, 'मेरा प्रेम तो एक से है, दूसरे से मुझे कुछ भी मतलब नहीं है।' तब गौरी ने महेश से कहा, 'इसका प्रेम सचमुच बड़ा गहरा है। तुम इसकी रक्षा करो।' इतने में रत्नसेन को महादेव का वास्तविक रूप ज्ञात हो गया। वह रोने लगा। उस को ढाढ़स बँधाते हुए महादेव ने कहा, 'रोओ मत। जैसा तुम्हारा शरीर नौ पौरी का है उसी प्रकार यह गढ़ भी है। दसवें द्वार तक इसमें भी चढ़ना पड़ेगा। जो दृष्टि को उलटकर लगाता है, वही उसे देख पाता है। वहाँ वही जा सकता है।'

इस सिद्धि गुटका को पाकर राजा एकाएक महल में घुस पड़ा। गंधर्वसेन को खबर मिली। उसने अपने नौकर भेजे। नौकरों से रत्नसेन ने कहा कि राजा की कन्या पद्मावती का भिखारी मैं हूँ। यदि वह मुझे दे दी जाए तो मैं लौट जाऊँगा। नौकरों ने यह बात राजा गंधर्वसेन से कही। गंधर्वसेन को यह सुनकर बड़ा क्रोध हुआ।

रत्नसेन उत्तर की प्रतीक्षा में दिन बिताने लगा। उसने एक पत्र

हीरामन के हाथ पद्मावती के पास भेजा। पद्मावती ने उत्तर के रूप में अपने प्रेम की दृढ़ता का संदेश भेजा। पद्मावती का संदेश सुन-कर रत्नसेन प्रसन्न-सा हो उठा।

गंधर्वसेन ने अपने मंत्रियों की सलाह ली। सब ने रत्नसेन को बंदी बनाने की सलाह दी। वह बंदी बना लिया गया। इधर पद्मा-वती बड़ी दुखी थी। वह एक बार बेहोश हो गई। हीरामन सुआ वहाँ पर लाया गया। उसकी आवाज सुनकर उसे होश आया। और पद्मावती ने एक संदेश रत्नसेन के लिये भेजा।

रत्नसेन बंदी बनाकर गंधर्वसेन के पास लाया गया। वहाँ पर गंधर्वसेन के पूछने पर उसने अपनी व्यथा सच सच बतला दी। इसे सुनकर महादेव का आसन भी डोल उठा। महादेव और पार्वती भाट-भाटिन का रूप धरकर वहाँ आए। रत्नसेन आसन जमाए 'पद्मावती-पद्मावती' जप रहा था। इतने में सुए ने आकर पद्मावती का संदेश सुनाया। महादेव भी आगे बढ़े। उन्होंने राजा को समझाया और रत्नसेन का सच्चा परिचय दिया। हीरामन ने भी साक्षी दी। तब विवाह का निश्चय कर रत्नसेन का तिलक किया गया और विवाह हो गया।

उधर नागमती के दिन रत्नसेन के विरह में बड़े दुख में बीत रहे थे।

नागमती रोती फिर रही थी। एक दिन आधी रात के समय एक पंछी को उस पर दया आ गई। उस ने उस की कथा पूछी। नागमती ने अपने विरह की कहानी उसे सुनाते हुए उससे रत्नसेन के पास तक उसका संदेश ले जाने की प्रार्थना की। पंछी ने उसे स्वीकार कर लिया।

पंछी संदेश को लेकर चला। सिंहल में बड़ी आग उठी। सब जगह आग लगी हुई देखकर सारे पंछी तीर के एक वृक्ष पर आ

कर बैठ गए। उसी पेड़ के नीचे रत्नसेन जो कि वहाँ शिकार खेलने आये थे, बैठ गए। यह पंछी भी उसी पेड़ पर जाकर बैठा। उन पक्षियों में आपस में बातें होने लगीं। इस पंछी ने अपना परिचय दिया और नागमती की कथा पंछियों को सुनाई। राजा नीचे बैठा सब कुछ सुन रहा था। उसने पंछी से फिर सारी बात पूछी। और कहा, 'पंछी, मेरी आँख सदा नागमती की राह पर ही लगी रहती है परंतु कोई भी आकर उसका संदेश नहीं सुनाता।' पंछी ने नागमती की विरह कथा फिर कह सुनाई और वह उड़कर चला गया। रत्नसेन उसे पुकारता रह गया परंतु वह न लौटा। रत्नसेन को अब चित्तौड़ की याद आ गई। वह एक बरस तक चितौड़ को भूला हुआ था। वह उदास रहने लगा। गंधर्वसेन उसे उदास देख कर उसके पास आया और बोला, 'तुम मेरे प्राणों के समान हो, तुम्हें मैंने अपनी आँखों में रहने को जगह दी। यदि तुम्हीं उदास हो जाओगे तो यह महल किसका होकर रहेगा ?'

रत्नसेन ने हाथ जोड़कर स्तुति करते हुए कहा, 'मैं कांच था, आपने ही मुझे कंचन बना दिया है। परंतु आज मेरा परेवा पत्र ले कर आया है। मेरा राज्य मेरा भाई लिए ले रहा है। उधर दिल्ली सुल्तान भी हमला करने वाला है। इस कारण मुझे विदा दी जाए।' गंधर्वसेन ने रत्नसेन की बात मान ली। सुमुहूर्त में वह वहाँ से अगणित द्रव्य लेकर रत्नसेन पद्मावती के साथ चला।

समुद्र में जब कि आधा रास्ता भी तय नहीं हो पाया था, एक बड़ी जोर की आंधी उठी। इसमें राजा के जहाज़ अपना रास्ता भूल गए। विभीषण का एक केवट राक्षस मछलियों का शिकार करते करते वहाँ आ गया था। राजा ने आफ़त में पड़कर उससे अपना जहाज़ ठीक रास्ते पर लगा देने की प्रार्थना की। राक्षस ने कपट रूप से उसे विनयपूर्वक स्वीकार किया और उसे एक अत्यंत

गहरे और भंवरों से भरे सागर में ले गया। वहाँ राजा का जहाज़ डूब गया।

बहते-बहते पद्मावती समुद्र तट पर लगी। वहाँ पर समुद्र की बेटी जिसका नाम लक्ष्मी था, खेल रही थी। उसने पद्मावती को देखा और वह उसे होश में लाई। होश में आने पर पद्मावती ने पूछा कि वह कहाँ है और रत्नसेन कहाँ है? लक्ष्मी ने कहा, 'मैं तुम्हारे प्रिय को नहीं जानती। मैंने तुम्हें तो किनारे पर ही पाया है।' पद्मावती यह सुनकर सती होने के यत्न करने लगी। लक्ष्मी ने उसे समझाया और रत्नसेन को ढूँढने का आश्वासन दिया। उसने अपने पिता से सब बात कही। पिता ने पुत्री को आश्वासन दिया। आश्वासन पाकर लक्ष्मी समुद्र तट पर जाकर बैठ गई। वहाँ पर रत्नसेन आया। उसने अपने को पद्मावती बतलाया। परंतु रत्नसेन ने उसे पहिचान लिया, वह पद्मावती न थी। तब लक्ष्मी उसे पद्मावती के पास ले गई। बिछुड़े हुए प्रेमी मिल गए। वहाँ से वे जगन्नाथपुरी होते हुए अपने देश की ओर बढ़े।

जब राजा चित्तौड़ के निकट पहुँच गया तो नागमती को बड़ी प्रसन्नता हुई। परन्तु पद्मावती को देखकर उसमें सपत्नी की ईर्ष्या जाग उठी। उसने उसे दूसरे महल में उतारा। दिन भर राजा दान-पुण्य करता रहा। रात में वह नागमती से मिला। नागमती का जीवन फिर हरा भरा हो उठा।

नागमती को प्रसन्न देखकर पद्मावती के हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। वह एक दिन नागमती से लड़ गई। दोनों में हाथापाई होने लगी। जब रत्नसेन ने यह सुना तो वह वहाँ पहुँचा। उसने समझाया—'तुम दोनों का प्रिय मैं हूँ। जिस प्रकार रात दिन दोनों बराबर होते हैं उसी प्रकार तुम मेरे लिए हो।' दोनों रानियाँ यह सुनकर संतुष्ट हो गईं।

नागमती के नागसेन और पद्मावती के पद्मसेन नाम के पुत्र हुए। ज्योतिषियों ने बतलाया कि दोनों बड़े भाग्यवान हैं।

रत्नसेन के दरबार में राघव चेतन नाम का एक बड़ा पंडित था। उसे यक्षिणी इष्ट थी। एक दिन अमावस थी। राजा ने पूछा, 'दूज कब है?' राघव के मुँह से निकला—'आज' पंडितों ने कहा—'महाराज कल है।' इस पर विवाद उठा। शाम को राघव ने यक्षिणी के बल से चाँद दिखला दिया। उस समय तो राजा ने बात मान ली। दूसरे दिन फिर द्वितीया का चाँद दिखलाई पड़ा। राजा को राघव चेतन पर बड़ा क्रोध आया। उसने राघव चेतन को अपने राज्य से बाहर निकल जाने की आज्ञा दी।

जब पद्मावती ने यह सुना तो उसे बड़ी चिन्ता हुई। ऐसा गुनी आदमी निकाला जा रहा था, यह उसे अच्छा नहीं लग रहा था। वह झरोखे पर आई। उसीके नीचे से राघव चेतन जा रहा था। उसने पद्मावती की ओर देखा। पद्मावती ने अपना एक कंगन उतार कर उसकी ओर फेंका और मुस्कुरा दिया। राघव चेतन उसे देख कर बेहोश हो गया। सखियाँ उसे होश में लाईं। वह उस कंगन को लेकर चला गया।

वह दिल्ली गया। दुनिया रूपी दूध में दिल्ली मलाई की तरह थी। वहाँ वह अलाउद्दीन से मिला और उसने पद्मिनी के सौन्दर्य की चर्चा की। अलाउद्दीन ने कहा, 'ऐसी पद्मिनी स्त्रियाँ कहाँ मिलती हैं?' उसने कहा, 'ये इस जंबूद्वीप में नहीं मिलतीं। ये सिंहलद्वीप में मिलती हैं।'

फिर उसने रत्नसेन की पद्मावती का नखशिख वर्णन किया। उसे सुनकर शाह चेतना खो उठा। जब उसे होश हुआ तो उसने पद्मावती को शीघ्र भेज देने के लिए रत्नसेन के पास एक पत्र अपने दूत द्वारा भेजा और राघव चेतन को धन एवं सम्मान दिया।

जब रत्नसेन ने वह पत्र पढ़ा तो वह अति क्रोधित हुआ। उसने दूत को यों ही लौटा दिया। दूत लौटकर अलाउद्दीन के पास गया। दोनों ओर युद्ध की तैयारियाँ पूरी तरह से होने लगीं। अलाउद्दीन चित्तौड़ की ओर बढ़ा।

अलाउद्दीन चित्तौड़ पहुँचा। बड़ा घमासान युद्ध हुआ। सौ-सौ मन के गोले रत्नसेन के गढ़ पर गिरते थे परंतु वह डटा हुआ था। उसने अपने भोग विलास को भी नहीं छोड़ा? एक दिन एक वेश्या को अलाउद्दीन के पक्ष के एक व्यक्ति ने तीर मार दिया। वह मर गई। इससे राजपूतों को बड़ा क्रोध आया। वे जी जान से लड़ने लगे। कई वर्षों तक यह युद्ध चलता रहा। अलाउद्दीन को खबर मिली की दिल्ली पर लोग हमला करनेवाले हैं। उसने यह भी सोचा कि अगर वह इस समय चित्तौड़ जीतेगा तो पद्मावती जल कर सती हो जाएगी। इस बार संधि करना उसे उचित दिखाई पड़ा।

अलाउद्दीन ने अपना दूत रत्नसेन के पास भेजा। शर्त यह रखी थी कि रत्नसेन पद्मावती न दे और साथ ही साथ चंदेरी भी ले ले परन्तु समुद्र ने उसे जो पाँच रत्न दिए थे, उन्हें दे दे। राजा ने इसे स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन अलाउदीन रत्नसेन के यहाँ प्रीति भोज के लिए गया।

राजा ने बड़े अच्छे व्यंजन बनवाए थे।

बादशाह ने भोजन किया और वह चित्तौड़ गढ़ देखने लगा। देखते-देखते वह रनिवास पहुँचा वहाँ पर रत्नसेन की दासियाँ थीं। अलाउद्दीन ने उनको स्वरूपवान देखकर समझा कि इन्हीं में कोई पद्मावती है। उसने राघवचेतन से पूछा। राघव ने उसे बतलाया कि वे तो दासियाँ हैं, पद्मावती नहीं।

भोज के पश्चात गोरा बादल ने रत्नसेन को समझाया कि अलाउद्दीन का विश्वास करना उचित नहीं है। परन्तु रत्नसेन ने

बात न मानी। एक जगह बैठकर वह अलाउद्दीन के साथ शतरंज खेलने लगा। वहाँ पर एक बड़ा दर्पण रखा था। दर्पण में एकाएक पद्मावती का प्रतिबिम्ब दिखलाई पड़ा। अलाउद्दीन उसे देखते ही बेहोश हो गया।

जब अलाउद्दीन होश में आया तो राजा उसे अपने गढ़ के दरवाजे तक पहुँचाने आया। दरवाजे पर आते ही अलाउद्दीन ने उसे बाँध लिया और दिल्ली ले गया।

कुंभलनेर का राजा देवपाल रत्नसेन का शत्रु था। जब उसने यह सुना तो उसने पद्मावती को फुसलाने के लिए अपनी दूती भेजी। परंतु पद्मावती का रत्नसेन से इतना दृढ़ प्रेम था कि उसने दूती को अपमानित कर निकाल दिया।

बादशाह अलाउद्दीन ने भी एक वेश्या को दूती बनाकर भेजा परंतु वह भी पद्मावती को फुसलाने में असफल रही।

पद्मावती अपने चारों ओर यह जाल बिछता हुआ देखकर गोरा बादल के पास गई और उनसे अपनी व्यथा सुनाई। गोरा और बादल दोनों को दया आ गई। उन्होंने रत्नसेन को छुड़ा लाने का वचन दिया।

बादल का उसी दिन गौना आया था। माँ ने उसे जाने से रोका। परंतु वह न माना। पत्नी ने भी रोका परंतु उसने अनसुनी कर दी वह चला गया।

सोलह सौ पालकियाँ सवारी गईं। उनमें हथियारों से लैस राजपूत सरदार बैठाए गए। उनमें एक पालकी पद्मावती की भी बनी। उसमें एक लोहार बैठाया गया। इन पालकियों के साथ गोरा-बादल यह कहते हुए चले कि पद्मावती अलाउद्दीन के पास जा रही है।

वे दिल्ली पहुँचे और अलाउद्दीन से प्रार्थना के स्वर में बोले कि

पद्मावती कह रही है, 'मैं तो दिल्ली आ गई हूँ परंतु मेरे पास चित्तौर की कुंजियां हैं। यदि आप की आज्ञा हो तो उसे रत्नसेन को सौंप दूँ।' अलाउद्दीन ने इसे स्वीकार कर लिया। वह लोहार वाला विमान रत्नसेन के पास गया। उस लुहार ने रत्नसेन के बंधन काट दिए और बादल उसे लेकर चित्तौड़ की ओर भागा। गोरा और अलाउद्दीन की सेना में वहीं पर युद्ध होने लगा। इस युद्ध में गोरा की मृत्यु हो गई।

रत्नसेन चित्तौड़ आकर पद्मावती से मिला। पद्मावती ने बादल की भुजाओं की पूजा की। रात में पद्मावती ने देवपाल की बात रत्नसेन से कही।

देवपाल की चाल सुनकर रत्नसेन को बड़ा क्रोध आया। वह उससे लड़ने चल पड़ा। युद्ध में रत्नसेन को देवपाल ने मार डाला।

रत्नसेन की मृत्यु पर गढ़ बादल को सौंप दिया गया।

पद्मावती एवं नागमती भी राजा के साथ सती हो गईं। उन के सती होने के बाद अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर हमला किया। बादल लड़ा परन्तु हार गया। सारी स्त्रियाँ जौहर में जल गईं और पुरुष संग्राम में खेत रहे। चित्तौड़ पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। अलाउद्दीन पद्मावती को न पा सका।

४. चित्रावली—उसमान गाजीपुरी ने यह काव्य १६१३ ई० में लिखा था[1]। इसकी केवल दो हस्तलिखित प्रतियां उपलब्ध हो सकी थीं और उनके आधार पर चित्रावली का एक संस्करण काशी

१—चित्रावली (१९१२) ना० प्र० काशी, पृष्ठ १४

नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रकाशित किया था[1]। प्रस्तुत लेखक ने उसका ही उपयोग अपने अध्ययन के लिये किया है। संक्षेप में चित्रावली की कहानी इस प्रकार है:

१. वही भूमिका। सभा की खोज रिपोर्ट में एक पोथी का विवरण दिया गया है : चित्रावली Verse. Substance-Country made paper. Leaves-305. Size—$11\frac{1}{2} \times 7\frac{1}{2}$ inches. Lines. 18 on a page. Extent—3508 slokas. Appearance-very old, incomplete generally correct. Character-Kaithi. Place of deposit—Library of the Maharaja of Banaras.

पुस्तक की पुष्पिका भी इस नोटिस में दी गई है :

इति श्री चित्रावली कथा संपुरन जो देखा सो लिखा पंडित जन सों विनती हमारी भुला लीजियो संभारी। पोथी हजारी अजबसिंह जी ने लिखाया। साकिन-चिनार गढ़ दूध बहेलिए दसखत फकीरचंद के हाथ का वोतन कड़े मानिक पुर शोभ श्री वास्तव कायथ दूसरे ॥ १ ॥

संवत् १८०२ मिती सावन सुदी १५ रोज सोमवार को पोथी तैयार हुआ। पोथी चित्रावली लिखाया हजारी अजबसिंह ने खोम खास बहेलिया, वोतन चिनार-गढ़ पातसा महमंदसाह सन् २८ अजीमाबाद में पोथी लिखाया। अजीमाबाद के सुबा नवाब जैनदी अहमदखां जी के अमल मो लिखा गया दसखत फकीरचंद कायथ के हाथ का वोतन कड़े मानिकपुर के वासिन्दे ॥ १ ॥ पोथी मो पैसे लगे रुपैया एक सौ एक १०१ सिया मोसौवर औ लिखाई औ कागज औ रोसनाई औ जिल्द साज ॥ १ ॥

इस पोथी के अतिरिक्त एक दूसरी पोथी का भी आधार श्री जगमोहन वर्मा ने लिया था। उसका विवरण उन्होंने अपनी प्रकाशित चित्रावली में नहीं के बराबर दिया है। वे लिखते हैं—'इस ग्रन्थ के सम्पादन और संशोधन में मुझे रम-जान उपनाम पोथी मियां की उर्दू प्रति से बड़ी सहायता मिली जिसके लिए मैं उसका बड़ा कृतज्ञ हूं।

नैपाल के राजा धरनीधर पंवार के कोई पुत्र नहीं था। बड़े कठिन व्रत पालन करने के पश्चात उसके पुत्र हुआ। उसका नाम उसने सुजान रखा। सुजान एक दिन आखेट खेलने गया था। वहां पर वह राह भूल गया। अंत में राह ढूंढते ढूंढते थककर एक देव की मढी में जाकर सो गया। देव ने आकर उसकी रक्षा करना अपना धर्म समझा। वह देव अपने एक साथी के साथ रूप नगर की राजकुमारी चित्रावली की वर्ष गांठ का उत्सव देखने के लिए गया और अपने साथ सुजान को भी लेता गया। वहाँ कोई दूसरा उपयुक्त स्थान न पाकर सुजान को देव ने राजकुमारी चित्रावली की चित्रसारी में सुला दिया और स्वयं उत्सव देखने लगा। कुमार की नींद खुली। उसने अपने को एक विचित्र स्थान पर पाया। उसने दीवाल पर राजकुमारी का चित्र टंगा देखा। वह इतना सुन्दर था कि वह उस पर आसक्त हो गया। उसने वहीं पर अपना एक चित्र बनाया और उस चित्र के निकट ही टांग दिया और सो गया। उत्सव समाप्त होने पर देव सुजान को वहाँ से उठा लाए और लाकर उसे फिर उसी मढ़ी में रख दिया। जागने पर उसे यह घटना स्वप्न सी मालूम पड़ी। पर अपने हाथ में रंग लगा देख कर उसके मन में घटना के सत्य होने का निश्चय हुआ और वह चित्रावली के प्रेम में विकल हो गया।

सुजान के पिता के आदमी सुजान को खोजते खोजते वहाँ पर आ पहुँचे और उसे अपने साथ ले गए। परंतु सुजान वहां पर भी व्याकुल रहता था। अंत में अपने सहपाठी सुबुद्धि नामक एक ब्राह्मण के साथ वह फिर उसी मढ़ी में गया और उसने मंत्र तंत्र जारी कर दिया।

इधर उसका चित्र देख कुमारी भी आसक्त हो गई और उसने अपने नपुंसक भृत्यों को जोगी के भेष में उसे ढूंढने के लिए भेजा।

करना चाहा। कौंलावती से चित्रावली मिलन तक अलग रहने की प्रतिज्ञा करवाकर उसने विवाह कर लिया।

चित्रावली ने अपने पहले वाले भृत्य को फिर भेजा। कुंवर कौंलावती को ले गिरिनार यात्रा के लिये गया था। वहां उसे योगी मिला। योगी उसका समाचार लेकर रूपनगर गया। चित्रावली ने उसे एक पत्र दिया। पत्र लेकर वह सागरगढ़ गया और उसने योगी बनकर धूनी जमाई। कुंवर योगी की प्रसिद्धि सुनकर उसके पास गया। योगी ने उसे चित्रावली का पत्र दिया। कुंवर रूपनगर उसके साथ गया।

योगी रूपनगर की सीमा पर उसे बैठाकर स्वयं चित्रावली के पास गया।

इसी समय एक पथिक ने सागरगढ़ और सोहिल राजा के बीच हुए युद्ध की कहानी चित्रावली के पिता को सुनाई। उसे अपनी कन्या के विवाह की चिंता यह सुनकर हुई। राजा ने चार चितेरे राजकुमारों के चित्र लाने के लिये भेजे। किसी चेरी ने द्वेषवश चित्रावली और सुजान के प्रणय की कहानी रानी से कह दी। सुजान को सीमा पर बैठाकर जो दूत चित्रावली के पास जा रहा था, रानी ने उसे मार्ग में ही पकड़वा लिया। इस प्रकार देर होने पर सुजान चित्रावली का नाम ले लेकर पागलों की नाईं दौड़ने लगा। इसकी सूचना राजा तक पहुँची। राजा ने अपयश के डर से इसे छिपाना चाहा। उसने एक हाथी चुपचाप सुजान को मारने के लिये भेजा। कुमार ने उस हाथी को मार डाला।

इतने में एक चितेरा सागरगढ़ से लौटा और उसने चित्रावली के पिता को उस राजकुमार का चित्र दिखाया जिसने सोहिलगढ़ के राजा को मारा था। यह चित्र सुजान का ही निकला। इस पर राजा ने चित्रावली और सुजान का विवाह कर दिया।

कुछ दिनों के बाद कौंलावती ने विरह से संतप्त होकर हंस मित्र को दूत बनाकर भेजा। उसने कुंवर से भेंट की और कौंलावती का सन्देश कहा। कुमार ने अपने पिता और कौंलावती का स्मरण कर रूप नगर से बिदा ली। वह सागरगढ़ आया। वहां से कौंला-वती को बिदा कराकर वह घर को लौटा। समुद्र में तूफान आ गया परन्तु किसी प्रकार वह घर लौट आया। पिता ने आनन्द बधाई की। माता अन्धी हो गई थी, पुत्र के आगमन से हर्षित हो पुनः उसके नेत्र खुल गए। राजा ने पुत्र को गद्दी पर बैठा दिया और स्वयं भगवान का भजन करने लगा। कुमार अपनी रानियों के साथ सुपूखर्वक राज्य करने लगा।

५. इन्द्रावती—नूर मुहम्मद सहरबदी ने १७४४ ई० में[1] यह काव्य कालिंजर के राजकुंवर तथा आगमपुर की इन्द्रावती की प्रेम कहानी को लेकर लिखा। इसका पूर्वार्द्ध राय बहादुर डा० श्याम सुन्दरदास ने सम्पादित कर नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित किया था। किन्तु इसका उत्तरार्द्ध अभी तक अप्रकाशित है। डाक्टर साहब ने इसके उत्तरार्द्ध की प्रतिलिपि करवा कर सभा में रख दी थी। इस प्रतिलिपि का आधार १९६० वि० की लिखी हुई एक पोथी है।[2] प्रस्तुत लेखक ने उक्त प्रकाशित पूर्वार्द्ध तथा अप्रकाशित उत्तरार्द्ध की प्रतिलिपि का उपयोग किया है। जिस प्रति के आधार पर इस ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध का सम्पादन तथा उत्तरार्द्ध की प्रतिलिपि सुरक्षित की गई है उसका परिचय सभा की खोज

१. इंद्रावती ( १९०६ ) पृ० ४

२. इद्रावती पृ० ३०४.

रिपोर्ट में दिया गया है।[1] इस काव्य तथा आगे आनेवाले उपलब्ध काव्यों के कथानक ऊपर दिए गए काव्यों के ही समान हैं इस कारण यहाँ नहीं दिए जा रहे हैं। पुहुपावती का कथानक सर्वथा नवीन ग्रन्थ होने के कारण दे दिया गया है।

६. हंस जवाहिर[2]—कासिम शाह दरियाबादी ने राजकुमार हंस तथा राजकुमारी जवाहिर की प्रम कथा को लेकर इस काव्य की रचना सन् १७२१ ई० में की थ ।[3] इसके दो प्रकाशित संस्करण उपलब्ध हैं। एक तो नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित हुआ

१. इंद्रावती Verse. Substance—Sivarampur made paper Leaves—600. Size $10\frac{1}{4} \times 6\frac{1}{4}$ inches. Lines 12 on a page. Extent—5500 slokas. Appearance—New. Complete. Correct Character—Kaithi. Place of deposite—Maulavi Abdullah, Dhuniyana Tola, Mirzapur.

इस पुस्तक की किसी दूसरी हस्तलिखित पोथी का पता अभी तक नहीं चल सका है। वैसे इस लेखक का एक दूसरा ग्रन्थ अनुराग बांसुरी मिल गया है, जिसका सम्पादन श्री चंद्रबली पांडे ने किया है। ग्रंथ हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से प्रकाशित हुआ है। अनुराग बांसुरी की रचना १७५० ई० के बाद हुई थी। इसके विषय में देखिए—रामचंद्र शुक्ल: हिन्दी साहित्य का इतिहास (२००२) पृ० ६८—६९.

२. हंस जवाहिर Verse-Substance-Foolscape paper. Leaves —368. Size—13 × 8 inches, Lines—16 on a page. Extent 4500 Slokas. Appearance-New-Complete-Correct, Character Kaithi, Place of deposit—Sheikh Qadiv Baksh, Makaria Khoha, Mirzapur. नागरी प्रचारिणी सभा खोज रिपोर्ट

३. हंस जवाहिर ( १८९८ ) पृष्ठ ११.

था और दूसरा अयोध्या से। नवलकिशोर प्रेस लनखऊ का संस्करण तो बाजार में बिक रहा है परन्तु अयोध्यावाला संस्करण अनुपलब्ध है। नवलकिशोर प्रेस का संस्करण प्रस्तुत लेखक को उसके मित्र श्री ए. जी. शिरेफ, एडवाइजर, हिज़ एक्सीलेन्सी यू० पी० गवर्नर के सौजन्य से मिल गया था और अयोध्या का संस्करण भारती भवन पुस्तकालय, प्रयाग में देखने का सौभाग्य उसे प्राप्त हुआ था। उसके पश्चात् एक दिन जब कि लेखक गुदड़ी बाजार में लालों की खोज कर रहा था तब उसे तीन पैसे में वह मिल गया। इन दोनों संस्करणों में अयोध्या का संस्करण कुछ अधिक अच्छा प्रतीत हुआ। इस कारण उसका ही उपयोग किया गया है। इसके दो संस्करण फारसी लिपि में भी प्रकाशित हुए हैं। एक लखनऊ से १९०१ ई० में और दूसरा १९१० ई० में। इसकी एक हस्तलिखित प्रति का उल्लेख सभा की खोज रिपोर्ट में है।

७. नल दमन—सूरदास लखनवी ने इस काव्य की रचना महाभारत से नल दमयन्ती का आख्यान लेकर[1] सन् १६५७ ई०[2] में की थी। पहले तो सामान्य विश्वास यह था कि नल दमन काव्य के रचयिता हमारे सुप्रसिद्ध महाकवि सूरदास ही हैं।[3] कालांतर में इसकी एक प्रति बम्बई प्रिंस अव वेल्स म्यूजियम में उसके क्यूरेटर

१. भारत महं जो कथा बखानी। आदि अन्त बार्ता महं आनी।
नागरी प्रचारिणी सभा की प्रतिलिपि पृ० १२.

२. वही पृ० १०

३. रामकुमार वर्मा: हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (१९३८) पृ० ६२७
विभाघ: भारतवर्षीय मध्य युगीन चरित्र कोश (१९३७) पृ० ८१३

डा० मोतीचन्द को मिली।[1] उससे पता चला कि ये सूरदास महाकवि सूर से भिन्न हैं।[2] इस काव्य की प्राप्त प्रति की दो प्रतिलिपियां नागरी प्रचारिणी सभा काशी में हैं। प्रस्तुत लेखक ने बम्बई में इस मूल प्रति को देखना चाहा परन्तु पता चला कि युद्ध की अनिवार्य परिस्थितियों के कारण यह प्रति कहीं दूसरी जगह हटाकर रख दी गई है और युद्ध पर्यन्त प्राप्त नहीं हो सकती।[3] इस कारण लेखक ने नागरी प्रचारिणी सभा की प्रतिलिपि का ही उपयोग किया। इसकी कहानी लोक प्रचलित नल दमयन्ती की कथा है।

८. ज्ञानदीप[4]—शेख नबी ने ज्ञानदीप और देवजानी की प्रेम

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १६ पृ० १२१—१३८—यह प्रति फारसी लिपि में लिखी हुई है। इस पुस्तक में १६३ डबल पृष्ठ हैं। जिन पृष्ठों पर चित्र नहीं बने हैं उन पर १५ सतरें हैं। पूरे पृष्ठ की नाप ६$\frac{1}{2}$" × ५$\frac{3}{4}$" तथा लिखित भाग की नाप ७$\frac{1}{2}$" × ४" है। कातिब ने पृष्ठ संख्या नहीं दी है बाद में किसी ने पेंसिल से भर दिए हैं।····पुस्तक फारसी के नास्तलीक अक्षरों में लिखी हुई है। पृष्ठों के बीचों बीच हाशिया छूटा हुआ है। जिसके दोनों ओर पाठ अंकित हैं।···· इस प्रति की नकल हिजरी सन् १११०···· में समाप्त हुई।

२. उनका काल विक्रम की सोलहवीं शती था और इनका अठारहवीं।

३. यह प्रति आजकल लखनऊ म्यूजियम के तहखाने में सुरक्षित है।

४. खोज रिपोर्ट (१६०२) नो० १०२

Verse. Substance—Country made paper. Leaves—112 Size—6½ × 4". Lines 18 on a page. Extent—1500 slokas. Appearance—old. complete. correct. Place of deposit—Moulvi Abdullah, Dhuniyana Tola, Mirzapur.

Gyan Dip—Story of Raja Gyan Dip and his queen Devayani by Sheikh Nabi of Jaunpur who Composed it

in 1024 A. H. ( 1519 A. D. ) during the reign of Shah Salim. The Manuscript is dated 1875 A. D.

**Begining :**

आदि अनादि निरंजन नायक। एक अंकार सकल सुख दायक।
दीन देखि दुख दरिद भंजै। ज्ञान अंध पर कारथ अंजै॥
सब घट घट महं वह परधाना। सब महं जोति उहै सत माना।
ओहि के रूप सब होत सरूपा। ओहि सरूप नहिं काहु के रूपा॥
वह सब महं ओहि महं कोई नाहीं। वह निरूप सब जग उपराहीं।
ओहि के गुन गुन गुनी कहाए। निरगुन होइ गुन सबै सिखाए॥
निरगुन रूप सगुन मधि नैना। ध्यान महै मन जाको चैना।

बिनि अच्छर के ऊठर मधि गिलै घरै सत मौन।
अंक उभय एक ज्ञान मय परत करत है बौन॥

**End :**

पढवैयन सों विनती मोरी। आखर समुझि पढै या १ मती फेरी।
बूझि बिचारि दोष मोहि लायहु। दोष होइ तो मोहि बतायहु॥
ललित रूप जो आषर काढी। चुनि चुनि अमर कोष सों काढी।
सेब रस थाह किएउ सनमाना। जो आनंद हिय ओइ निदाना॥
विनती एक कहुउ विधि पाही। मिटै पाप पुनि उपजै ताही।
आखर चारि पढ़ै सब कोई। जासों मोष मुकुति मोहि होई॥
आखर तो नालीस खुराना। जिन जानो कुछ आखर आना।

नबी नबी नित रटत हों नितहि नबी मन आस।
करता करै सो होइ है चित मह कौन उदास॥

ग्रंथकर्ता शेष नबी स्थान मऊ, थाना दोसपुर, जिला जौनपुर के रहने वाले थे। उन्होंने यह ग्रंथ सन् १०२६ हिजरी अर्थात् संवत १६७६ में शाह सलीम के समय में बनाया। जिस प्रति से यह नोटिस ली गई है वह १२ सितम्बर १८७५ ई० को लिखी गई है।

कहानी लेकर यह काव्य सन् १६१९ ई० में लिखा। इसकी एक हस्तलिखित प्रति का उल्लेख काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट (१९०२) में है। उसके उल्लेख के अनुसार वह मिर्जापुर में किन्हीं अब्दुल्लाह के पास थी। प्रस्तुत लेखक ने उसे पाने का प्रयत्न किया परन्तु वह अपने प्रयत्न में असफल ही रहा। इस ग्रंथ का कुछ परिचय सभा की खोज रिपोर्ट में दिया गया है।

९. पुहुपावती—दुख हरन दास ने इस काव्य की रचना सन् १६६९ ई० में की। इस ग्रन्थ का पता नागरी प्रचारिणी सभा काशी को हाल ही में चला है[1] और केवल एक प्रति ही प्राप्त हो सकी है। प्रस्तुत लेखक ने उसी प्रति की एक प्रतिलिपि का उपयोग अपने अध्ययन में किया है। इस सर्वथा नवीन ग्रंथ का कथानक इस प्रकार है :

राजपुर नरेश को कोई संतान न थी। उसने पुत्र की इच्छा से तपस्या प्रारंभ की। सात वर्ष तक वह तपस्या करता रहा परन्तु

१. इस हस्तालिखित पोथी में १-१७३ पन्ने हैं जिन्हें दीमक ने जगह जगह पर काट दिया है। लिखावट साफ है। एक पृष्ठ पर २३-२५ पंक्तियां हैं। कागज बहुत पुराना नहीं है। पोथी पूरी तथा सही है। पोथी का लिपिकाल १८६७ वि० है। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है :

इति कथा पुहुपावती दुखहरनदास विरंचीते समाप्त संवत् १८६७ मिती अगहंन बदी ८ वार सोमार के दिन समाप्त हुआ जो देखा सो लिखा मम दोपन ना दीअते सजन जन से बीनती मोरी टूटल अछर लैवै जोरी आगे दसषत लाला रामप्रसाद मिसर शिवाराम के अस्थल गाजीपुर घरका घाट महल्ला नियाजी ११९ श्रीराम अभीराम काम पहल.........

उसकी इच्छा पूरी न हुई। तब वह निराश हो उठा। देवी अभी तक प्रसन्न नहीं हुई थी और दूसरे देवता की उपासना में धर्म नष्ट होता। इस कारण उसने अपना सिर देवी को अर्पित कर अपना जीवन समाप्त कर दिया। इसमें हत्या का डर देवी को लगा। इससे देवताओं में भी उनका अपमान होता। इस कारण वे शिव के पास घबराई हुई गईं। शिव ने भवानी को अमृत दिया। भवानी ने वह अमृत राजा के मुंह में डाला। इससे राजा जी उठा। भवानी ने राजा को पुत्र का वरदान दिया। यह वरदान पाकर राजा अपने घर आया। नगर में बधावे बजने लगे। दस मास पश्चात् राजा के एक अत्यन्त रूपवान पुत्र हुआ। नगर में बड़ी खुशियाँ मनाई गईं। राजा ने बहुत दान आदि दिए। इसका नाम राजकुंवर रखा गया। ज्योतिषियों ने बतलाया कि यह बड़ा भाग्यवान बालक है। परन्तु बीस वर्ष की आयु प्राप्त करने पर यह देश छोड़कर विदेश जाएगा, वहाँ पर एक सुन्दर स्त्री से यह प्रेम करेगा और उसी के वियोग में वैरागी हो जाएगा। बाद में उसीसे विवाह करेगा। राजा अपने पुत्र का यह भाग्य सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ। पंडितों को उसने बहुत दान दिया।

पाँच वर्ष की आयु में बालक को राजा ने पढ़ने के लिए बैठाया। थोड़े ही दिनों में बालक पंडित बन गया। सब विद्याओं में पारंगत हो जाने पर राजकुमार शिकार खेलने के लिए वन में जाने लगा। इस प्रकार आठ वर्ष और बीत गए। ज्योतिषी का बताया हुआ समय आ रहा था। एक दिन एक चेरी ने कहा कि राजा जब तपस्या के लिए वन चले गए थे तब वैरियों ने बहुत सा राज्य छीन लिया था, वह अभी तक उन्हीं के अधिकार में है। राजकुमार ने यह सुन लिया। उसने पिता से आज्ञा माँगी कि यदि वे आज्ञा दें तो वह वैरियों को हरा दे और अपना राज्य फिर प्राप्त

कर ले। राजा ने कहा कि तुम अभी सुकुमार बालक हो, तुम अभी युद्ध में लड़ना क्या जानो। अभी तुम सुख से रहो। यदि तुम चाहो तो मैं तुम्हारा राजतिलक कर दूँ।

पिता के वचनों को सुनकर कुंवर बड़ा दुखी हुआ। विशेष दुख उसे यह सुनकर हुआ कि उसके पिता उसे अभी बालक ही समझे हुए हैं। इस कारण उसने देश छोड़ने का निश्चय कर लिया। आधी रात को वह अपने माता, पिता, वैभव और देश को छोड़कर चला गया। राजा रानी तथा नगर निवासियों को इसका बड़ा दुख हुआ। राजा ने सज्ञान नामक एक अपने व्यक्ति को पाँच सेवकों के साथ कुंवर की खोज करने के लिए भेजा।

कुंवर बराबर चलता जा रहा था। चलते चलते वह एक अँधेरे वन में पहुँचा। वहां भी वह अपने शरीर की कांति की सहायता से चलता जा रहा था। उसे भूख लगी। भोजन उसने एक बनिजारे से मांगकर किया। भोजन कर वह आगे चल दिया। चलते चलते वह अनूप नगर में पहुँचा। अंबरसेन वहाँ का अत्यंत ऐश्वर्यवान राजा था। उसके प्रधान का नाम सूरजसेन और मंत्री का नाम चंद्रकला था। राजा की पटरानी का नाम वसुधा था। उसके एक अत्यन्त रूपवती कन्या पुहुपावती थी। वह चारों वेद और चौदहों विद्याएं पढ़ी थी। उसने यौवन में प्रवेश किया था। उसके अंग अंग में कामदेव व्याप्त हो रहा था। वह प्रायः अपना झरोखा खोलकर झांका करती थी। एक दिन राजकुंवर उसकी दृष्टि में पड़ गया। उसे देखकर वह मुग्ध हो गई। कुंवर को भी पुहुपावती की फुलवारी बड़ी सुन्दर लगी। वह मालिन के घर ठहरने के लिए फुलवारी के बाहर गया। जैसे ही वह बाहर गया, पुहुपावती विरह वियोग से बेहोश होकर झरोखे से अटारी पर गिरी। चारों ओर से सखियां दौड़कर आईं। वसुधा रानी को भी खबर दी गई। वह पुहुपावती के

पास आई और विकल होकर रोने लगी। थोड़ी देर बाद उसे होश आ गया। उसे होश में आया देखकर रानी ने झरोखे से गिरने का कारण पूछा। पुहुपावती ने उत्तर दिया कि मैं झरोखे से बाहर नगर देख रही थी। एकाएक झरोखे के नीचे देखते ही डर लगा और पाँव फिसल गया। उसी से चोट खाकर बेहोश हो गई। परंतु अब कोई चिन्ता की बात नहीं है। उसकी यह आश्वासनमयी वाणी सुनकर वसुधा को संतोष हुआ।

पुहुपावती उस दिन से बड़ी ही दुखी और उदास रहने लगी। एक दिन रानी ने उससे पूछा कि इस मलिन वेश में रहना और कुल की लज्जा खोना उसने कहाँ से सीखा है। पुहुपावती अत्यन्त रूखे स्वर से पूछने लगी कि मां प्रेम क्या होता है। यह मुझे अगर तुम जानती हो तो बतला दो। वसुधा रानी इस प्रश्न को सुनकर चुप रह गई। उन्होंने सोचा कि ये बातें इसके मन में कहाँ से आईं। अभी तो यह पुष्प मधुप के लिए अपरिचित ही है। फिर यह प्रेम समझ ही कैसे सकती है।

जिस मालिन के घर राजकुंवर ठहरा हुआ था वह नित्य पुहुपावती की पुष्प-शैया बिछाया करती थी। उसने देखा कि वह सेज पर अब नहीं सोती, अपनी सखियों के साथ सोया करती है और पुष्पशैया ज्यों की त्यों रहती है। उसने उससे रहस्य पूछा। पुहुपावती ने उसे सारी बातें सच सच बतला दीं। मालिन ने उसे उससे मिलवाने का विश्वास दिलवाया। उसने यह भी बतला दिया कि वह उसके घर पर ही ठहरा हुआ है। पुहुपावती ने उससे उसका विशेष परिचय पूछा परंतु वह नाम के अतिरिक्त कुछ भी न बतला सकी। उसने सब बातें पूछकर बताने का वचन दिया।

घर आकर मालिन ने राजकुमार से उसका परिचय पूछा। राजकुंवर ने अपना पूरा परिचय देकर मालिन से उसके देश का हाल पूछा।

मालिन ने देश का वर्णन करते करते पुहुपावती का वर्णन किया और बतलाया कि पुहुपावती पता नहीं क्यों आजकल अत्यंत उदास रहती है। राजकुंवर के मन में यह सुनकर पुहुपावती के लिए प्रेम उत्पन्न हो गया। उसने पुहुपावती के बारे में और पूछा तो उसने बतलाया कि वह उससे प्रेम करने लगी है। राजकुमार यह सुनकर अत्यंत विकल हो उठा। मालिन ने प्रेममार्ग की कठिनाइयां बतलाते हुए स्त्री-भेद वर्णन तथा पुहुपावती का शिख-नख वर्णन किया यह वर्णन सुनते ही राजकुंवर को मूर्च्छा आ गई। यह देखकर मालिन बड़ी विकल हो उठी। उसने कुंवर का उपचार किया। कुंवर फिर चेतन हो गए जैसे सोकर उठे हों। उसने कुंवर को योग का उपदेश प्रेम मार्ग के लिए दिया। कुंवर ने उसे स्वीकार कर लिया। अब दूती पुहुपावती के पास गई। उसने पूरा हाल पुहुपावती को सुनाया और बताया कि अगर तुम उसे दर्शन न दोगी तो वह मर जाएगा और हत्या तुम्हारे ही सिर लगेगी। पुहुपावती ने राजकुंवर के बारे में पूछते हुए पुरुष-भेद पूछा। मालिन ने कामशास्त्र के अनुसार पुरुष-भेद सुनाया। पुहुपावती ने स्नान के बहाने फुलवारी में आने और राजकुंवर से मिलने का वचन मालिन को दिया।

फुलवारी में जाकर पुहुपावती राजकुंवर से मिली। दोनों एक दूसरे को देखते ही मूर्छित हो गए। दूती ने एक उपाय किया। दोनों को एक साथ लिटाकर एक के अधर दूसरे के अधरों पर रख दिए। अधर रस से दोनों में चेतना फिर आ गई। दोनों आपस में अपने अपने दुख सुख की बातें करने लगे। दोनों ने अपने अपने प्रेम की शपथ ली और थोड़ी देर में मां के भय से पुहुपावती वहां से चली गई।

एक दिन अम्बरसेन का मन शिकार खेलने का हुआ। नगर

में ढिढोंरा पीटा गया। लोग राजा के साथ साथ वन के लिए शिकारी साजों से सजकर चले। वन में बहुत से पशु-पक्षियों का अहेर किया गया। वहां पर एक सिंह मिला। वह बड़ा बलवान था। उसे कोई नहीं मार सका। जो कोई उसे मारने जाता वह स्वयं ही उसका भक्ष्य हो जाता था। राजा ने घोषणा की कि जो कोई इस सिंह को मार डालेगा उसे वह आधा राज दे देगा। जब कुंवर ने यह सुना तो वह राजा के पास यह सोचकर गया कि सिंह को मारने पर मैं राज न लेकर पुहुपावती माँग लूंगा। अपना परिचय देते हुए उसने राजा से कहा कि मैं तो अपना ही राज छोड़ आया हूँ, तुम्हारा आधा राज लेकर क्या करूँगा। यह कहकर उसने बीड़ा खाया और वह शेर को मारने के लिए गया। शेर उस समय सो रहा था। पहले तो कुंवर ने उसे जगाया फिर उसे बड़ी वीरता से मार डाला। राजा भी कुंवर के पैरों पर गिर पड़ा। गाड़ी पर लादकर सिंह लाया गया। इतने में सिंहनी भी बाहर निकल आई। लोग उससे बहुत डरे। कुंवर उसके पीछे दौड़ा। तीस कोस दौड़ने पर सिंहनी हाथ में आई। उसे कुंवर ने शीघ्र मार डाला।

संध्या हो गई थी। कुंवर मार्ग भूल गया और वन में यहां वहां भटकने लगा।

प्रजापति ने इधर कुंवर की खोज का भार अपने साले सज्ञान को दे दिया था। वह उसे देश देशान्तरों में खोजता हुआ इसी वन से आ रहा था। उसने कुंवर से उसका परिचय पूछा। कुंवर ने अपना सच्चा परिचय दे दिया। उसने भी अपना सच्चा सच्चा परिचय दिया और कुंवर को बांधकर घर ले आया।

अम्बरसेन ने भी कुंवर की खोज की परंतु उसे वह न मिला। उसे बड़ा दुख हुआ। पुहुपावती के दिन फिर कष्ट में कटने लगे।

इधर कुंवर भी बड़ा दुखी रहता था। सज्ञान ने बतलाया कि

वह प्रेम-पंथ का पथिक बन गया है। प्रजापति ने यह सुनते ही काशी के चित्रसेन की कन्या रूपावती से उसका विवाह कर दिया। परंतु कुंवर पुहुपावती की याद में ही सदा दुखी रहता था।

इधर पुहुपावती भी अत्यंत दुखी रहा करती थी। अम्बरसेन तरह तरह के उपचार करते थे परंतु सब व्यर्थ थे। अंत में पुहुपावती ने मालिन दूती के हाथ एक पत्र राजकुंवर के पास भेजा। दूती केश मुड़वाकर सन्यासी का वेश धारण कर राजपुर गई। वहां उसने एक स्थान पर बैठकर गाना प्रारंभ किया। उसके मधुर संगीत को सुनकर नगर के नर-नारी मोहित होने लगे। धीरे धीरे उसकी प्रसिद्धि चारों ओर फैली। साथ ही साथ लोग उसे सिद्ध समझ कर उससे अपने अपने दुखों का विवरण करने लगे। कुंवर भी उसके पास आया। उसने उसे पहिचान लिया। दूती ने पुहुपावती का पत्र कुंवर को दिया। कुंवर ने सारी कथा उससे कही और वैरागी का भेष रखकर दूती के साथ अनूपनगर की ओर चल दिया। राजा ने जब यह सुना तो उसने आज्ञा दे दी कि नगर के सब मार्ग बंद कर दो और कुंवर जहाँ मिले वहीं पकड़ लो। लोगों ने बहुत यत्न किया परंतु कुछ न हो सका। कुंवर चलते चलते धर्मपुर पहुँचा। वहाँ पर धर्मराय नामक राजा राज्य करता था। उसने इन दोनों का बड़ा स्वागत किया।

सात समुद्र पार बेगमपुर नामक एक गांव था। वहाँ के राजा का नाम बेगमराय था। वह बड़ा घमंडी था। उसके एक रंगीली नामक कन्या थी। वह बड़ी सुन्दरी थी। एक दिन एक दानव आया। वह उस नगर के सारे स्त्री-पुरुषों को खा गया। यहां तक कि राजा और रानी तक को उसने न छोड़ा। रंगीली के सौन्दर्य से वह अभिभूत हो गया और उसने उसे दयाकर के छोड़ दिया। वह उसे प्यार से पालने लगा। जब वह तरुणी हुई तब कामदेव ने

उसे सताना प्रारंभ किया। उसने दानव से यह भेद बतलाया। दानव उसे एक सुन्दर राजकुमार खोजकर ला देने का वचन देकर वहाँ से चल दिया। खोजते खोजते वह कुंवर और मालिन के पास पहुँचा। कुंवर के सौन्दर्य को देखकर उसने उसको ही उठा लिया और रंगीली के पास ले आया। वहाँ उसने दानव रीति से उचित विवाह दोनों का कर दिया। इस विवाह से रंगीली बड़ी प्रसन्न हुई परंतु कुंवर बड़ा उदास रहने लगा। रंगीली ने इसका कारण पूछा। दानव के सामने रंगीली से कुंवर ने सारी बात बतला दी और दानव को वैराग्य का उपदेश देकर चलने की इच्छा प्रगट की। रंगीली भी साथ जाने का हठ करने लगी। कुंवर उसे लेकर पुहुपावती के नगर की ओर चला। मार्ग में सात समुद्र और सातों द्वीप पड़े। कुंवर उन्हें पार करने लगा। अंतिम समुद्र में बोहित डूब जाने से दोनों डूब गए। कुंवर तैरकर एक किनारे पहुँचा। रंगीली भी बहते बेहते बेहोश होकर दूसरे किनारे पहुँची। वहाँ शिव पार्वती खड़े थे। पार्वती ने शिव से उसकी रक्षा के लिए कहा। शिव उसे होश में ले आए। रंगीली ने चतुर्भुज देवता की आराधना कुंवर को प्राप्त करने के लिए प्रारंभ कर दी।

कुंवर वन में जाकर भटकने लगा। उसकी सुंदरता के कारण वन के सिंह आदि उसे खाते न थे। घूमते फिरते कुंवर फिर धर्मपुर पहुँच गया। वहाँ पर लोगों से उसने अनूपनगर का मार्ग पूछा परंतु किसी को भी पता न था। नगर के द्वार को पार करते समय कुंवर को दौवारिकों ने पकड़ लिया। कुंवर ने प्रभु से प्रार्थना की। दैवयोग से मालिन दूती कुंवर के पास पहुँच गई। उसे देखकर कुंवर बड़ा प्रसन्न हुआ। कुंवर ने बिछुड़ने के बाद की कहानी उसे सुनाई। फिर वह उसके साथ चल दिया। इस बार किसी ने उसे द्वार पर नहीं रोका।

इधर पुहुपावती दिन दिन क्षीणकाय होती जा रही थी। रानी ने यह देखकर राजा से उसके विवाह के लिए कहा। राजा ने स्वयंवर किया। देश देश के राजकुमार स्वयंवर में सम्मिलित हुए। स्वयंवर के दिन पुहुपावती ने सिर दर्द का बहाना कर टाल दिया। इसी प्रकार दो दिन और टाले गए। तीसरे दिन स्वयंवर टलना कठिन था। पुहुपावती बड़े सोच में थी। इतने में दूती पहुँची। दूती के मुख से प्रिय के आगमन को सुनकर पुहुपावती बड़ी प्रसन्न हुई। उस दिन वह स्वयंवर में गई। स्वयंवर में कुंवर भी था। पुहुपावती ने उसीके गले में वरमाला डाल दी। एक वैरागी के गले में माला पड़ती देखकर और राजकुमार बड़े अप्रसन्न हुए। उन्होंने कुंवर पर हमला किया परंतु उसका वे कुछ भी न बिगाड़ सके। स्वयं राजा अम्बरसेन बड़े अप्रसन्न हुए। दूती ने उन्हें समझाया कि यह भिखारी के वेश में वही राजकुमार है। राजा यह सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने दोनों का विवाह कर दिया। दोनों सुख से रहने लगे।

इधर रूपावती विरह से व्यथित थी। उसने एक मैना पाल रखी थी। उसका नाम पर उपकारी था। उस पर उपकारी ने रूपावती को दुखी देखकर उसका दुख पूछा। रूपावती ने अपना दुःख उससे कहा। उसे सुनकर मैना रूपावती का सन्देश लेकर वहां से राजकुंवर को खोजकर सुनाने चली। खोजते खोजते वह अनूपगढ़ पहुंची, वहाँ पर प्रत्येक घर उसने खोजा। अन्त में थककर गढ़ के उपवन के एक वृक्ष पर बैठ गई। वहीं पर कुंवर पुहुपावती और उसकी सखियों के साथ खेल रहा था। कुंवर ने उसे देखा और उसे देखते ही वह उदास-सा हो गया। पुहुपावती ने इसका कारण पूछा। कुंवर ने कारण बताया कि वह उदास एवं दुखी मैना को देखकर ही दुखी हो गया है। पुहुपावती ने मैना से उसकी व्यथा का कारण पूछा।

उसने सारी बात बता दी, कुंवर ने यह सुन अपना परिचय दिया। मैना ने कुंवर को रूपावती का सन्देश सुनाया। उसे सुनकर कुंवर की आंखें भर आईं। उसने शीघ्र ही आने का वचन मैना को दिया। पुहुपावती प्रियतम का गमन सुनकर दुखी हुई। परन्तु उसका कुछ वश न चला। कुंवर उसे लेकर राजपुर की ओर चला।

मार्ग में उज्जैन नगर पड़ा। वहां का राजा रोठ गंवार बड़ा पापी था। जो वहाँ से जाते थे उनसे वह उनकी वस्तुओं में से एक चौथाई ले लिया करता था। जब कुंवर वहाँ पहुँचा तो उससे भी वही कर माँगा गया। कुंवर ने देने से इन्कार किया। इस पर घमासान युद्ध हुआ। अन्त में रोठ गंवार हार गया। वह बन्दी बना लिया गया। कुंवर ने उसे क्षमा कर दिया और फिर उज्जैन का राजा बना दिया। उस दिन से उसने सत्पूर्वक राज्य करना प्रारम्भ कर दिया।

मैना वहां से उड़कर रूपावती के देश जा रही थी। मार्ग में उसने एक वन में बहुत से पंछी देखे। उन पंछियों से उनके वहां एकत्रित होने का कारण पूछा। उन पंछियों में एक मैना भी थी। उसने उत्तर दिया कि हम लोग एक तीर्थ जा रहे हैं। मैना भी उनके साथ गई। तीर्थ के पास जाकर उसे रंगीली मिली। वह उसी वन में रहती थी। मैना उस रानी के पास गई। वह ध्यानस्थ होने के कारण एक पत्थर की मूर्ति के समान बैठी हुई थी। मैना यह जानने के लिए कि वह मूर्ति है या कोई स्त्री उसके हाथ पर जा बैठी। तब रानी ने आँखें खोलीं। मैना ने रानी से उसका परिचय एवं व्यथा का कारण पूछा। रानी ने अपना नाम रंगीली बताते हुए अपना सारा परिचय दिया। मैना ने उसे सहायता देने का आश्वासन दिया।

मैना कुंवर के पास फिर गई। कुंवर समाचार पा सब कुछ वहीं पर छोड़ शीघ्र रंगीली के पास आया। वहाँ रंगीली न थी। कुंवर ने समझा कि उसे किसी वन पशु ने खा लिया है। वह वहीं

चतुर्भुज देवता की आराधना रंगीली को प्राप्त करने के लिए करने लगा। परन्तु कुछ नहीं हुआ। तब वह तलवार लेकर अपनी गरदन काटने के लिए तैयार हो गया। इस पर देवता प्रकट हुआ और उन्होंने बतलाया कि रंगीली विरह पीड़ित होकर स्नान करने समुद्र के तीर पर गई है। कुंवर वहाँ भी पहुँचा। रंगीली की विरहाग्नि पानी में स्नान करने से नहीं बुझ रही थी इस कारण वह समुद्र में डूबना चाहती थी। इतने में कुंवर वहाँ पहुँच गया। अपने प्रियतम को आते देखकर रंगीली पीठ फेरकर लज्जा से बैठ गई। कुंवर ने उसे समझाया कि हे सुन्दरी! मुझे पहिचानो तो कि मैं कोई बटोही हूँ या तुम्हारा प्रियतम। रंगीली ने मुँह घुमाकर देखा और कहा कि हे प्रियतम! मैं तुम्हें पहिचान गई हूँ, किन्तु तब तुम वैरागी थे और मैं वैरागिनी। अब तुम राजा हो इस कारण अपना शरीर तुम्हें दिखाते लज्जा आती है, मैं तो भिखारिनी ही हूँ। मेरे पास ऐसा गुण भी नहीं जिसे मैं तुम्हें अर्पित करूं। कुंवर ने कहा कि तब मैं वैरागी था इस कारण तुम वैरागिनी थीं। अब मैं राजा हूँ इस कारण अब तुम शृंगार करो और रानी बनो। रंगीली ने स्नानकर आभूषण आदि पहिने। रात दोनों ने बड़े सुख के साथ बिताई।

फिर दोनों उज्जैन गए। वहाँ पुहुपावती बड़ी चिंतित रहती थी। उसने कुंवर के शरीर पर रति-चिन्ह देखे तो रहस्य पूछा। कुंवर ने सारी बात बतलाई।

अब कुंवर अपने देश की ओर चला। मैना ने आगे जाकर रूपावती को इसकी सूचना दे दी। और सब को भी सूचना मिली। सब बड़े प्रसन्न हुए। नगर में नया जीवन-सा आ गया। कुंवर भी इतने में आ पहुँचे। राजा ने उसका राजतिलक कर दिया। नगर में बड़े उत्सव मनाए गए। रात में कुंवर और रूपावती मिले।

राजकुंवर ने एक नया किला बनवाया। उसमें तीन महल थे। सफेद महल में रूपावती को रखा, काले में रंगीली को और लाल में पुहुपावती को। गढ़ के बाहर उसने एक धर्मशाला बनवाई, वहाँ भोजन मुफ्त मिलता था। इस प्रकार राजकुंवर राज्य करने लगा। एक बार भगवान एक साधु के रूप में राजा के आतिथ्य की परीक्षा लेने आए। कुंवर ने उनका बड़ा सम्मान किया। उन्होंने उससे पुहुपावती माँगी। कुंवर पुहुपावती के पास गया और बोला कि एक अतिथि वैरागी तुम्हें माँग रहा है। पुहुपावती तैयार न हुई। कुंवर ने उसे समझाया। रंगीली और रूपावती भी पुहुपावती को नहीं जाने देना चाहती थीं। पर अंत में पुहुपावती गई। वैरागी ने अपना असली रूप प्रगट कर दिया और शुभाशीष देकर विदा हो गया।

संक्षेप में प्राप्त पाठ्यग्रन्थों की रूपरेखा इस प्रकार है:—

| ग्रंथ | रचना काल | उपयोग में आया हुआ पाठ |
|---|---|---|
| १. पद्मावती | १५२० ई० | जायसी ग्रंथावली (द्वितीय संस्करण) |
| २. मधुमालती | १५४५ ई० | नागरी प्रचारिणी सभा की दोनों प्रतियां तथा रामपुर स्टेट की (प्रति नागरी प्रचारिणी पत्रिका के आधार पर) |
| ३. चित्रावली | १६१३ ई० | चित्रावली (सं०-जगमोहन वर्मा) |
| ४. नल दमन | १६५६ ई० | प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम बंबई की प्रति |
| ५. पुहुपावती | १६६९ ई० | नागरी प्रचारिणी सभा की प्रति |
| ६. हंसजवाहिर | १७२१ ई० | अयोध्या से प्रकाशित संस्करण |
| ७. इंद्रावती | १७४४ ई० | नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पूर्वार्द्ध एवं वहीं पर सुरक्षित अप्रकाशित उत्तरार्द्ध |

§२७.····हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य संबंधी जो खोज अभी तक हो सकी है वह तीन वर्गों में बांटी जा सकती है :

१. मूलग्रन्थों की खोज:—इस दिशा में श्याम सुन्दर दास के निर्देशन में काशी नागरी प्रचारिणी सभा का कार्य अत्यन्त स्तुत्य है। मूल ग्रन्थों की खोज के साथ ही साथ सभा ने इन ग्रन्थों को प्रकाशित भी किया है। इसका विवरण हम ऊपर दे चुके हैं। अन्य संस्थाओं द्वारा जो प्रकाशन हुआ है उसकी सूची भी ऊपर दी गई है।

२. प्रेमाख्यानक काव्य का अध्ययन:—प्रेमाख्यानक काव्य की धारा का अध्ययन अभी बहुत ही कम हुआ है। डा० श्यामसुन्दर दास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, डा० रामकुमार वर्मा तथा बा० सत्यजीवन वर्मा ही इस दिशा में कुछ बढ़े हैं। समस्त धारा का अध्ययन डा० श्यामसुंदरदास तथा डा० रामकुमार वर्मा ने अपेक्षाकृत अधिक किया है। रामचन्द्र शुक्ल ने समस्त धारा का अधिक अध्ययन नहीं किया। बाबू सत्यजीवन वर्मा ने इस पर वैज्ञानिक खोज प्रारंभ की थी परंतु वे अभी तक ग्रन्थों की एक सूची ही हमारे सामने रख सके हैं।[1] प्रस्तुत निबंध में इन विद्वानों के हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य संबंधी विचार जहाँ तहाँ दिए गए हैं। सामूहिक रूप में इस धारा के विषय में इन विद्वानों के विचार ये ही हैं कि यह धारा हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य को लेकर चली और इन आख्यानों में फारसी मसनवी की शैली पर समासोक्ति अथवा अन्योक्ति से लौकिक प्रेम के द्वारा अलौकिक प्रेम की व्यञ्जना की गई है।[2]

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग ६

२. जायसी ग्रंथावली भूमिका भाग, रामकुमार वर्मा कृत—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास तथा अन्य विद्वानों के ग्रंथ

इस धारा की भाषा अवधी पर भाषा विज्ञान के दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य डा० बाबूराम सक्सेना ने किया है।[1]

३. **कवियों का अध्ययन:**—इस दिशा में सराहनीय प्रयत्न पं० रामचन्द्र शुक्ल, डा० श्यामसुंदरदास, पं० चन्द्रबली पांडेय, डा० रामकुमार वर्मा, सैय्यद कल्बे मुस्तफा, ए० जी० शिरैफ, सैयद आले मेहर जायसी तथा अवधवासी लाला सीताराम आदि ने किया है। इनमें कुछ विद्वानों ने जीवनियां लिखी हैं और कुछ ने समालोचनाएं। जायसी ग्रंथावली की भूमिका में मलिक मुहम्मद जायसी की जो समीक्षा पं० रामचन्द्र शुक्ल ने वह है वह साधारणतया काफी अच्छी है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने इतिहास में भी कुछ प्रकाश इन कवियों पर डाला है। डा० श्यामसुन्दरदास ने अपने हिन्दी साहित्य[2] नामक ग्रंथ में इन कवियों के विषय में छोटी छोटी समीक्षाएं लिखी हैं। परंतु जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है कि डा० साहब ने कवियों की अपेक्षा इस धारा मात्र पर अधिक जोर दिया है जो कि साहित्य के वैज्ञानिक इतिहास के लिए अधिक आवश्यक है। पं० चन्द्रबली पांडेय ने कुछ निबन्ध तो सूफी धर्म पर लिखे थे[3] जिनका कोई संबंध वे इन कवियों से दिखा नहीं पाए। इसके पश्चात् उन्होंने एक निबंध

१. इस विषय पर बाबूराम सक्सेना को प्रयाग विश्वविद्यालय से डी० लिट्० की उपाधि मिली है। थीसिस 'इवोल्यूशन औफ अवधी' के नाम से इंडियन प्रेस प्रयाग से प्रकाशित भी हुई है।

२. हिन्दी भाषा और साहित्य में से साहित्य अंश को अलग निकाल कर इस नाम से प्रकाशित किया गया है।

३. नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १६-१७-१८

जायसी के जीवन वृत्त[1] पर तथा एक निबंध मधुमालती[2] पर लिखा। इनका संकेत इस निबंध में आवश्यक स्थलों पर किया गया है। डा० रामकुमार वर्मा ने भी प्रत्येक कवि के विषय में अपने इतिहास में लिखा है। परन्तु उनका कार्य डा० श्यामसुन्दरदास की कोटि का है। सैयद कल्बे मुस्तफा ने एक छोटी-सी पुस्तक उर्दू में मलिक मुहम्मद जायसी पर लिखी है। यह अंजुमन तरक्किए उर्दू, देहली से प्रकाशित हुई है। यह पुस्तक कोई विशेष महत्व की नहीं है। ए० जी० शिरेफ ने पद्मावती का अंग्रेजी अनुवाद किया है। उस अनुवाद की भूमिका में उन्होंने मलिक मुहम्मद जायसी के ऊपर भी कुछ प्रकाश डाला है जो कि पर्याप्त वैज्ञानिक होते हुए भी कुछ विशेष महत्व नहीं रखता[3]। मुस्तफा तथा शिरैफ साहब की पुस्तकों में जायसी का एक चित्र भी दिया गया है। यही चित्र ग़नी की पुस्तक 'परशियन लिटरेचन एट मुग़ल कोर्ट' में भी दिया गया है। सैयद आले मेहर जायसी ने एक सुविस्तृत निबंध मलिक मुहम्मद जायसी के जीवन-वृत्त पर लिखा है।[4] निबंध जनश्रुतियों पर आधारित है। अवधवासी लाला सीताराम ने मलिक मुहम्मद जायसी पर एक निबन्ध प्रयाग बिश्वविद्यालय की इलाहाबाद यूनीवर्सिटी स्टडीज़ में लिखा था[5]। जायसी पर एक लेख पं० रामकृष्ण शुक्ल ने अपनी पुस्तक सुकबि समीक्षा में लिखा है जो कि पर्याप्त महत्व-

१. वही भाग १४

२. वही (१९९५) भाग १९

३. लेखक की ध्यान अनुवाद पर रहा है, इस विषय पर नहीं।

४. नागरी प्रचारिणी सभा पत्रिका (१९९७) भाग २१

५. इलाहाबाद युनिवर्सिटी स्टडीज़, वाल्यूम ६

पूर्ण है ।[1] डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने एक लेख पद्मावती पर द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ में लिखा था ।[2] ये दोनों निबंध जायसी की अन्योक्ति भावना पर सुंदर प्रकाश डालते हैं । ओझाजी ने पद्मावती की ऐतिहासिकता[3] एवं सिंहल द्वीप के भौगोलिक अस्तित्व[4] पर लिखा है[5] । प्रस्तुत लेखक ने भी जायसी पर एक पुस्तक लिखी है[6] ।

१. इस निबंध में अन्योक्ति पर मौलिक ढंग से विचार किया गया है

२. द्विवेदी अभिनंदन ग्रन्थ (१९३३) पृ० ३९५—४०१

३. ओझा: उदयपुर का इतिहास भाग ७, (१९८८) पृ० १८०—८२

४. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १३

५. प्रमुख विद्वानों के हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य विषयक विचार संक्षेप में नीचे दिए जाते हैं :

श्याम सुंदरदास जी ने अपने ग्रंथ हिन्दी साहित्य में प्रेममार्गी भक्ति शाखा शीर्षक में हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य पर विचार प्रगट किए हैं । आपके विचार संक्षेप में निम्नलिखित हैं :

भारतवर्ष पर मुसलमानों की विजय के अनंतर जब हिन्दू और मुसलमान सभ्यताओं का संयोग हुआ तब····कुछ दिनों बाद दोनों को मिलकर रहने की उत्सुकता हुई····कबीर ने मेल की बड़ी कोशिश की थी····कबीर ने परोक्ष सत्ता की एकता स्थापित की । थोड़े समय पीछे कवियों का एक ऐसा समुदाय भी उदय हुआ जिसने व्यावहारिक जीवन की एकता की ओर ध्यान दिया । यह समुदाय सूफी कवियों का था····सूफी प्रेम लौकिक नहीं था····धार्मिक प्रतिबंध के कारण सूफी कवि अपने उपास्यदेव के प्रेम के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कह सकते थे । अतः उन्होंने प्रेम सम्बन्धी अनेक आख्यानों का सृजन किया और उन लौकिक आख्यानों की सहायता से ईश्वर के प्रेम की व्यंजना की ।

········सूफी कवियों के अधिकतर आख्यान हिन्दू समाज से लिए गए हैं और हिन्दू जीवन से पूरी सहानुभूति रखते हैं। यह उन कवियों के उदार हृदय और सामंजस्य बुद्धि का परिचायक है।....देश में सूफी कवियों की न तो अधिक प्रसिद्धि ही हुई और न उनका अधिक प्रचार ही हुआ।···· ·· इनकी रचना भारतीय चरित काव्यों की सर्गबद्ध शैली में न होकर फारसी की मसनवियों के ढंग पर हुई है।··· ····इन प्रेम की पीर के कवियों का केन्द्र अवध की भूमि ही थी············सबने प्रायः दोहा और चौपाइयों में ही ग्रंथ रचना की है········प्रेमगाथाकार सभी कवि मुसलमान थे।··· ····प्रेममार्गी सूफी कवियों ने प्रेम का चित्रण जिस रूप में किया है उसमें विदेशीयता ही नहीं है प्रत्युत भारतीय शैलियों का भी प्रभाव है···· ·· उन्होंने प्रारम्भ में नायक को प्रियतमा की प्राप्ति के लिए अधिक प्रयत्नशील दिखाकर ही संतोष नहीं कर लिया वरन् उपसंहार में नायिका प्रियतमा के प्रेमोत्कर्ष को भी खूब दिखाया········उनका प्रेम बहुत कुछ लोक व्यवहार के परे है पर फिर भी असंयत नहीं। सूफी सिद्धांत के अनुसार अन्त में आत्मा परमात्मा में मिल जाता है। इसीलिए उनकी कथाओं का अंत या समाप्ति दुखांत हुई।···········पर आगे चलकर इस सम्प्रदाय के कवि यह भूल गये।········यद्यपि प्रेममार्गी कवियों का उद्देश्य एक लौकिक कथा के आवरण में अलौकिक प्रेम प्रकट करना था परंतु इस उद्देश्य की प्रधानता देखते हुए भी हम उन कथाओं को कहीं पर उखड़ी हुई या अनियमित नहीं पाते।···· प्रेममार्गी कविया की भावव्यंजना हिन्दी के अन्य बड़े कवियों की तुलना में उच्च स्थान की अधिकारिणी है।········वास्तविक रहस्यवाद की कविता हिन्दी में इसी सम्प्रदाय में मिलती है।·······प्रेममार्गी कवियों ने शब्दालंकारों पर बहुत ही कम ध्यान दिया है। प्रायः वे हैं ही नहीं·······परंतु इसकी कमी अर्थालंकारों में पूरी करने की चेष्टा की गई है।···········सूफी कवियों की भाषा अवध की हिन्दी है।

पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रंथ हिन्दी साहित्य की भूमिका में हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य पर संक्षेप में अपने विचार प्रकट किये हैं:—

ये साधक सूफी दरवेश अन्यान्य मुसलमानों के समान कट्टर और विरोधी नहीं थे।·········कबीरदास के निर्गुण भजन, सूरदास के लीलागान और तुलसीदास का रामचरित मानस अपनी अंतर्निहित शक्ति के कारण अत्यधिक प्रचलित हो गये और हिन्दू जनता का सम्पूर्ण ध्यान अपनी ओर खींचने में समर्थ हुए। परंतु जन साधारण का एक और विभाग, जिसमें धर्म को स्थान नहीं था, जो अपभ्रंश साहित्य के पश्चिमी आकार से सीधा चला आ रहा था, जो गांवों की बैठकों में कथानक रूप से और गान-रूप मे चला आ रहा था, उपेक्षित होने लगा था इन सूफी साधकों ने पौराणिक आख्यानों के बदले इन लोक प्रचलित कथाओं का आश्रय लेकर ही अपनी बात जनता तक पहुंचाई। इन कहानियों की परंपरा शेख कुतुबन से प्रारंभ होती है।······ये सभी बा शरा थे।········ सबकी भाषा अवधी है·······सबमें फारसी प्रेम गाथाओं की भांति पुरुष आसक्ति पहले दिखाई जाती है और सबसे बड़ी बात यह कि सब में प्रस्तुत कथा के साथ ही साथ अप्रस्तुत परोक्ष सत्ता की ओर इशारा किया गया है।········इन्होंने प्रेम के जिस एकान्तिक रूप को चित्रित किया है वह भारतीय साहित्य में नई चीज़ है।········कुछ लोगों का भ्रम है कि पद्मावत आदि में दोहा और चौपाइयों में प्रबंध काव्य लिखने की जो प्रथा है वह सूफी कवियों का अपना आविष्कार है।

डा० रामकुमार वर्मा ने अपने विचार अपने इतिहास में दिये हैं। संक्षेप में उनकी रूपरेखा निम्नलिखित है :

सूफी मत के········व्यापक सिद्धांतों को लेकर ही प्रेमकाव्य चला है, उन्हीं सिद्धांतों के अनुरूप कथा की सृष्टि हुई है।········पार्थिव प्रेम में अपार्थिव प्रेम की ओर संकेत है।········कोई भी कहानी दुखांत नहीं है क्योंकि मिलन ही सूफी मत की एकमात्र चरम स्थिति है;········कथानक सम्पूर्ण रूप से भारतीय है···· पात्रों के आदर्श भी एकान्तिक रूप से हिन्दू धर्म से पोषित हैं।········हिन्दू वातावरण रहते हुए भी निष्कर्ष मुसलमानी सिद्धांतों से पूर्ण हैं। भारतीय काव्य शैली से पूर्ण रहते हुए भी ये काव्य मसनवी के वर्णनात्मक रूप लिए हुए हैं....।

दोहा चौपाई छंद में कथा कही गई है। भाषा भी अवधी है।········प्रेम काव्य के कवियों ने हिन्दू शरीर में मुसलमानी प्राण डाल दिए हैं।

हिन्दू और मुसलमान संस्कृतियों का प्रेमपूर्ण सम्मिलन ही प्रेम काव्य की अभिव्यक्ति है।········जब प्रेम कथा किसी मुसलमान के द्वारा लिखी गई है तो उसमें कथा की गति में सूफीमत के सिद्धांतों की गति भी चलती रहती है, जब प्रेम कथा किसी हिन्दू के द्वारा लिखी गई है तो उसमें केवल प्रेम की रसमयी कहानी रहती है, किसी सिद्धान्त के प्रतिपादन की चेष्टा नहीं।

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने विचार अपने इतिहास में व्यक्त किये हैं। उनका सारांश उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है :

इन साधक कवियों ने लौकिक प्रेम के बहाने उस प्रेमतत्व का आभास दिया है जो प्रियतम ईश्वर से मिलाने वाला है।········सूफी कवियों ने जो कहानियां ली हैं वे सब हिन्दुओं के घर में बहुत दिनों से चली आती हुई कहानियां हैं।

········इनका प्रभाव हिन्दू मुसलमानों पर समान रूप से पड़ता है।

अपनी जायसी ग्रंथावली की भूमिका में शुक्लजी लिखते हैं :

सौ वर्ष पहले कबीरदास हिन्दू और मुसलमान दोनों के कट्टरपन को फटकार चुके थे। पंडित और मुल्लाओं की तो नहीं कह सकते, पर साधारण जनता राम रहीम की एकता मान चुकी थी।······· ऐसे समय में कुछ भावुक मुसलमान प्रेम की पीर की कहानियां लेकर साहित्य क्षेत्र में उतरे। ये कहानियां हिन्दुओं के घर की थीं। इनकी मधुरता और कोमलता का अनुभव करके इन कवियों ने यह दिखला दिया कि एक ही गुप्त तार मनुष्य मात्र के हृदयों से होता हुआ गया है जिसे छूते ही मनुष्य सारे बाहरी रूप रंग के भेदों की ओर से ध्यान हटा एकत्व का अनुभव करने लगता है।········इन प्रेम-गाथा काव्यों के संबंध में पहली बात ध्यान देने की यह है कि इनकी रचना भारतीय चरित काव्यों की सर्गबद्ध शैली पर न होकर फारसी की मसनवियों के ढंग पर हुई है।········दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि ये सब मसनवियां पूरबी हिन्दी अर्थात् अवधी भाषा में एक

संक्षेप में हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य का जो अध्ययन अभी तक हो सका है उसकी यही रूपरेखा है। उल्लिखित व्यक्तियों के अतिरिक्त कुछ अन्य व्यक्तियों ने भी इस धारा के अध्ययन प्रस्तुत किए हैं परन्तु वे एकदम पिष्ट-पेषण एवं महत्वहीन हैं।

§२८. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य का अध्ययन दो भागों में विभक्त होना चाहिए—

१. मूल ग्रन्थों की खोज

२. खोज द्वारा प्राप्त किए गए मूल ग्रन्थों के अध्ययन के आधार पर धारा का अध्ययन

प्रस्तुत लेखक ने मूल ग्रन्थों की खोज में जो प्रयत्न किया है उसकी एक संक्षिप्त रूपरेखा ऊपर प्रस्तुत की गई है। युद्ध की असाधारण परिस्थियितों में इस प्रकार की खोज बड़ी कठिन होती है। दूसरी ओर प्रस्तुत लेखक एक रिसर्च स्कॉलर है जो कि कुछ और कठिनाइयों के बीच भी कार्य कर रहा है। फिर भी इस निबन्ध में प्रस्तुत लेखक ने कुछ ऐसे ग्रन्थों का विस्तृत अध्ययन दिया है जिनका इतना विस्तृत अध्ययन अभी तक नहीं किया था।

धारा का अध्ययन फिर दो भागों में बँटता है:—

१. धारा के उद्‌गम का अध्ययन जो धारा के अध्ययन में सहायक होगा

नियत क्रम के साथ केवल दोहा चौपाई में लिखी गई हैं।............तीसरी बात ध्यान देने की यह है कि इस शैली की प्रेम कहानियां मुसलमानों के द्वारा ही लिखी गई है।

६. हिन्दी साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद से यह पुस्तक प्रकाशित हुई है।

२. धारा के साहित्यिक, ऐतिहासिक तथा धार्मिक पक्षों का अध्ययन

प्रस्तुत लेखक ने ये दोनों प्रकार के अध्ययन प्रस्तुत किए हैं। धारा का उद्‌गम उसने तीन भागों में बांटा है :

१. सूफी धर्म के विकास का अध्ययन

२. फारसी मसनवी का अध्ययन

३. भारतीय कहानियों की परम्परा का अध्ययन

इन तीन पक्षों के अध्ययन से धारा के उद्‌गम का समस्त अध्ययन हो जाता है। प्रस्तुत लेखक जिन परिणामों पर पहुंचा है उसकी रूपरेखा उसने आगे के पृष्ठों में दी है।

धारा के विविध पक्षों का अध्ययन भी उसने प्रस्तुत किया है। धार्मिक एवं दार्शनिक पक्षों का अध्ययन उसने सूफी धर्म के विकास वाले परिच्छेद में ही दे दिया है। इन कवियों के प्रेम पंथ की रूपरेखा उसने अलग परिच्छेद में दे दी है। ऐतिहासिक पक्ष में वह अभी तक कोई विशेष बात नहीं कह सकता। इस कारण यह परिच्छेद इसमें नहीं दिया गया।[1]

साहित्यिक पक्ष की दो दृष्टिकोणों से परीक्षा हो सकती है :

१. काव्य के दृष्टिकोण से

२. कथा के दृष्टिकोण से

इन दोनों दृष्टिकोणों से प्रस्तुत लेखक ने अध्ययन प्रस्तुत किया है।

१. ऐतिहासिक सामग्री पद्मावती के कथानाक में अवश्य प्रतीत सी होती है। अन्य प्रेमाख्यानों के कथानकों में नहीं। इस कारण समस्त धारा के विषय में ऐतिहासिक पक्ष की विवेचना करने पर कोई भी सामुहिक प्रकाश नहीं पड़ सकता।

उपसंहार में लेखक ने अपने समस्त निबन्ध के निचोड़ को संक्षेप में रखा है।

§२९. संक्षेप में प्रस्तुत निबन्ध की यह वाह्य रूप रेखा है। हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य की प्रमुख समस्याएं उन पर फारसी का ऋण, अन्योक्ति तथा समसोक्ति, हिन्दू मुस्लिम ऐक्य और उनकी हिन्दी साहित्य को देन की हैं। इन पर विभिन्न परिच्छेदों में विस्तृत मौलिक प्रकाश प्रस्तुत निबन्ध में डाला गया है।

---

भाग २

# धारा का उद्गम

१

# सूफी धर्म की उत्पत्ति तथा विकास

और उसका

# हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य पर प्रभाव

§१. इस्लामी धर्म तथा शासन संबंधी संस्थाओं के अध्यक्ष मुहम्मद का निधन ८ जून ६३२ ई० को हुआ।[1] उनकी प्रिय पत्नी आएशा के पिता अबू बकर उनके उत्तराधिकारी निर्वाचित हुए[2]। किन्तु उनके लिए राजगद्दी कोमल पुष्प शय्या प्रमाणित न हो सकी।[3] ईश्वर के भेजे हुए अंतिम दूत के निधन का समाचार अरब के कोने कोने में बिजली की तरह फैल गया। मिथ्या दूतत्व का जामा पहिनकर बहुत व्यक्ति आगे बढ़े और स्थान स्थान पर विद्रोह होने लगे। इस्लामी धर्म तथा शासन संबंधी संस्थाओं के अध्यक्ष खलीफा अबू बकर ने अपने शक्तिशाली कर से ये विद्रोह दबा दिये। इतना ही नहीं इस्लामी राज्य की विस्तार भावना से उन्होंने फारस आदि

१. हिट्टी: हिस्ट्री ऑफ दि अरब्ज़ (१९३७) पृष्ठ ११९
म्योर: एनाल्स ऑफ दि अर्ली केलिफेट (१८८३) पृष्ठ १
खुदाबख्श: दि ओरिएन्ट अन्डर दि कैलिफ्स (१९२०) पृष्ठ १-५
निकल्सन: ए लिटरेरी हिस्ट्री ऑफ अरब (१९०७) पृष्ठ १७५

२. अरब में खिलाफत की गद्दी पैतृक नहीं निर्वाचित पद्धति पर थी। देखिये हिट्टी: पृष्ठ: १३९। अबू बकर के निर्वाचन के लिए देखिए वही पृष्ठ १४०, म्योर: पृष्ठ ५, खुदाबख्श: पृष्ठ ६, निकल्सन: पृष्ठ १८१,

३. अबू बकर केवल ६३४ ई० तक लगभग दो वर्ष राज्य कर सके। इनके राज्यकाल में बड़े विद्रोह हुए। इनके वर्णन के लिए देखिए।
हिट्टी: पृष्ठ १४०—२ म्योर : पृष्ठ ५ : ११४
निकलसन : पृष्ठ १८३

पर आक्रमण किया।[1] फारस विजय का कार्य उनके द्वारा पूर्ण न हो सका। इस विजय का श्रेय अबू बकर के उत्तराधिकारी खलीफा उमर को है। फारस के निवासी अरब के मैत्री भाव से भरे हुए शत्रु थे। फ़ीरोज़ नामक एक फारसी गुलाम ने इस विजय के एक वर्ष बाद ही उमर को नमाज पढ़ने में मार डाला। इतिहास की यह घटना ६४४ ई० में हुई।[2] उमर एक अत्यंत योग्य शासक था। कफन में उसके शव के साथ साथ इस्लाम का सौभाग्य भी दफना दिया गया।[3]

चारों ओर फिर विद्रोह की आंधी उठी, विद्युत् मालाएं खंड खंड होकर चमकीं और कहीं कहीं पर बूंदाबांदी भी हुई। उसमान खलीफा निर्वाचित हुए।[5] किंतु दशा संभल न सकी। इधर अरब विलास की ओर अग्रसर होने लगा। पावन तीर्थ विलासी विभ्रमों के दास हुए और इस्लामी पवित्रता पृथ्वी के स्तर से ऊपर कल्पना की एक वस्तु बन गई।[6] ईश्वर के भेजे हुए अंतिम दूत की स्वप्निल किंतु यथार्थवादी पलकें संभवतः यह कल्पना भी नहीं कर सकती थीं कि उसके तिरोभूत होने के एक दर्जन वर्षों के अंदर ही उसके संदेश को माननेवाले इस अवस्था पर पहुँच जाएंगे।

१. हिट्टी: पृ० १३९–७७

२. म्योर: पृ० २७६–२८५

३. इब्न खल्लिका सम्पा० वुस्टन फैल्ड पृ० ६६

४. वही पृष्ठ २८६–२९०

५. वही पृष्ठ २९०

हिट्टी पृष्ठ १७६

६. खुदाबख्श: पृष्ठ २६--५३

समान के विपक्षी दल ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया[१] और वयोवृद्ध खलीफा अपने महल में ही ६५६ ई० में मार डाला गया।[२] अली जो कि ईश्वरीय दूत के दामाद थे इस बार इस्लामी धर्म तथा शासन संबंधी संस्थाओं के अध्यक्ष नियुक्त हुए।[३] किंतु व्यवस्था बड़ी अनिश्चित थी। समृद्धि तो दूर व्यक्तिगत स्वार्थों की आँधी ने अध्यक्ष के सिंहासन को डाँवाडोल कर रखा था। अली पर संदेह किया गया कि ये उसमान की हत्या करनेवाले दल से संबंधित थे। इसी संदेह के आधार पर मुआविया बिन अबी सुफया के अधिनायकत्व में विद्रोहियों ने अपना सिर उठाया। एक घमासान युद्ध के पश्चात् अली के स्थान पर मुआविया स्वतः खलीफा हुए।[४] किन्तु अली ने अपना सिर न झुकाया। युद्ध बराबर होते रहे और अंत में ६६० ई० में अली को मुआविया से संधि करनी पड़ी।[५] इस संधि ने अली के जीवन रूपी जगत से उन्नति एवं वैभव सूर्य को अस्त कर दिया। अंधेरी रात अब दूर न थी। मुआविया के दल के एक सदस्य ने ईश्वर के दूत की पुत्री के जीवन में सुख सौभाग्य लानेवाले को सदा सर्वदा के लिए समाप्त कर दिया।[६]

१. म्योर: पृष्ठ २२६-२३८

२. वही पृष्ठ ३३९

३. हिट्टी: पृष्ठ १७९

४. वही पृष्ठ १७९-८०

५. वही पृष्ठ १८१
   म्योर: पृष्ठ ४१०

६. वही पृष्ठ ४११-४१४

§२. मुहम्मद के चारों साथी अब संसार से विदा ले चुके थे। मुआविया खलीफा के पद पर था।[१] उसने अपने को सर्वप्रथम बादशाह कहा। किंतु इस्लाम धर्म की अनुयायी जनता की दृष्टि में वह तथा उसके समस्त दलवाले लुटेरे डाकू थे। अली अंतिम सनातनी खलीफा थे। जनता की सारी संवेदना एवं सहानुभूति उनके साथ थी।[३] धीरे धीरे इसीके परिणामस्वरुप दो दल बन गए। एक तो शिया जो अली से सहानुभूति रखते थे और उन्हीं को इस्लाम का सच्चा अंतिम नायक मानते थे और दूसरे खारिजा उनके विपक्षी।[४]

६८० ई० में अली के पुत्र हुसैन ने अपने को सच्चा खलीफा पद का अधिकारी कहा और कुफा में सहायता प्राप्तकर पद प्राप्त करने के लिए आए। किन्तु वे कुछ भ्रम में थे। कुफा निवासियों का हृदय और हाथ दो वस्तुएं थीं। हृदय हुसैन के साथ था और तलवार लिए हुए हाथ मुआविया के पुत्र यज़ीद के साथ जो कि इस समय गद्दी पर था। हुसैन तथा यज़ीद के बीच युद्ध हुए और अंतिम कर्बला का युद्ध इस्लामी इतिहास के पृष्ठों में रक्त के अक्षरों से लिखा हुआ है। इस युद्ध में हुसैन तथा उनके समस्त साथी मार डाले गए। यज़ीद की नृशंसताओं का इतिहास यहीं पर अपना परिच्छेद समाप्त नहीं कर देता। उसने मदीना तथा मक्का पर भी नृशंस अत्याचार किए।[५]

१. हिट्टी: पृष्ठ १८६

२. निकलसन: पृष्ठ १९३

३. वही पृष्ठ १९३

४. वही पृष्ठ १९३

५. म्योर: पृष्ठ ४२६-४४४

तथा कुरान कुछ दूसरी शिक्षाएं देता था। सूफी धर्म का मूल यहीं पर इस्लाम को एक गहरा धर्म मानने में है।

§४. आठवीं शताब्दी के पहले लगभग पचास वर्ष शांति के दिन थे। खलीफाओं ने राज्य-व्यवस्था में उन्नति करवाई। जनता के उपर्युक्त वर्ग को इस समय कुछ सोचने समझने का अवसर मिला और विद्या तथा कला की विशेष उन्नति हुई।[१]

§५. आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राजवंश का परिवर्तन हुआ।[२] इस परिवर्तन के मूल में एक दूसरा तत्व भी था। अरब वालों का साम्राज्य फारस में था। फारस निवासियों ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। किन्तु फिर भी उनके साथ समानता का व्यवहार न होता था। इस कारण फारस वालों ने क्रांति की और उसीके फलस्वरूप राजवंश परिवर्तित हो गया। राज दरबार में फारसी प्रभाव बढ़ा। किन्तु क्रांति और विद्रोह इस समय में भी रहे। अली के वंशजों ने जो अपने को मुहम्मद के सच्चे उत्तराधिकारी मानते थे विद्रोह का झंडा उठाया। बादशाह को इसे दबाने में काफी कष्ट हुआ। पूर्वी फारस में एक दूसरा विद्रोह उठा और उसकी अग्नि-शिखा लगभग अस्सी वर्षों तक जगती रही। इधर नवीं शताब्दी के प्रारंभ में अरब के राजवंश के सहायक बरमी नामक कुल के अति विश्वस्त फारसी व्यक्तियों को उस समय के खलीफा हारूं ने मरवा डाला। ये व्यक्ति लगभग आधी शताब्दी से राज्य-संचालन में बहुत हाथ बंटवा रहे थे। उनके समाप्त होने पर

१. हिट्टी: पृ० २०६—२८७

२. अब्बासी राजवंश गद्दी पर आया

फारसवालों ने फिर अरब के निवासियों से खुल्लम खुल्ला घृणा आरम्भ कर दी। और फिर यह जातीय एवं राष्ट्रीय संघर्ष प्रारम्भ हो गया।[१]

यहां पर एक बात और स्पष्ट समझ लेनी चाहिए। अरब की राज्य व्यवस्था निर्वाचन पद्धति पर अवलंबित थी। एक खलीफा की मृत्यु पर दूसरा खलीफा निर्वाचित होता था। इस कारण एक की मृत्यु पर विद्रोह और लड़ाई-झगड़े प्रारंभ हो जाते थे। फारस की राज व्यवस्था में बादशाह की मृत्यु पर उसके बड़े पुत्र को ही गद्दी मिलती थी। फलतः इतने विद्रोह और लड़ाई-झगड़े न होते थे। अरबवालों के राज्य से फारसवाले इस कारण भी असंतुष्ट थे।

§६. इस समय इन सारी परिस्थितियों के परिणामस्वरूप एक आंदोलन प्रारम्भ हुआ। इसका नायक अब्दुल्लाह बिन मैमून अलक़द्दाह (मृ० ८७४ ई०) था।[२] वह फारस से अरब साम्राज्य को समूल नष्ट कर देना चाहता था। वह धर्म एवं राजनीति दोनों का विद्वान् था और चतुराई उसमें कूट कूटकर भरी थी। उसने घोषणा की कि वह अली के पक्ष का है और अली की संतान को ही वास्तविक खलीफा मानता है।[३] इस प्रकार उसने शिया दल की सारी सहानुभूति अपनी ओर कर ली। उसने यह भी घोषित किया कि वह फारस से विदेशी साम्राज्य समाप्त कर देना चाहता है। इस प्रकार फारस के सारे निवासी उसके पक्ष में आ गए। अब्दुल्लाह बिन मैमून ने अपना आंदोलन प्रारम्भ कर दिया।[४]

१. निकलसन : पृ० २५४—५

२. हिट्टी : पृ० ४४३

३. सीली : मुस्लिम शिज़्म्स एन्ड सेक्ट्स (१९२०) पृ० ३४—५

४. जुहूरूद्दीन : मिस्टिक टेन्डेन्सीज़ इन इस्लाम (१९३२) पृ० १२

इस उपर्युक्त राजव्यवस्था तथा राजनीति के संक्षिप्त चित्र से ही स्पष्ट हो जाता है कि इस युग में शासन सम्बन्धी अशांति कितनी अधिक थी। स्थान स्थान पर फूट का साम्राज्य था और विद्रोह की ज्वाला धधक रही थी। मुस्लिम जनता का एक अल्पसंख्यक वर्ग इन निरंतर विद्रोहों से घबरा गया होगा। शांतिप्रिय नागरिक ऐसी राजनीति से किसी प्रकार संतुष्ट नहीं हो सकते थे।

§७. इस्लामी साम्राज्य के विस्तार के साथ ही साथ विदेशी एवं विधर्मी विजित देशों के लिए एक धार्मिक, नैतिक एवं राजनीतिक नियमावली की आवश्यकता हुई। इस्लाम धर्म की पवित्र कुरान का उपयोग यहाँ भी हुआ।[1] स्थान स्थान पर और देश देश में कुरान के प्रयोगकर्त्ताओं ने आवश्यकतानुसार उसके अर्थ निकाले। यह स्वाभाविक ही था कि विविध अर्थकर्त्ताओं के द्वारा उसके अलग अलग अर्थ निकाले गए होंगे। शान्तिप्रिय इस्लाम धर्मावलंबियों को पवित्र ग्रन्थ के ये मनमाने अर्थ पसन्द न आए होंगे। उसकी पावनता इस अत्यधिक प्रयोग के द्वारा कुछ विनष्ट-सी हो चली होगी। सच तो यह है कि इस युग में इस्लाम धर्म के सच्चे माननेवाले इस समय एक अशान्ति का अनुभव कर रहे थे। खिलाफ़त के पद के लिये यह निरन्तर एवं परम्परागत विद्रोह-प्रणाली उनको पसन्द न होगी। उन्हें यह किसी प्रकार भी स्वीकार न होगा कि धर्म-संस्थाओं का अध्यक्ष-पद अपने चरण सतत रूप से रक्त की सरिता में डुबोए रहे, धर्म व्यक्तिगत वैभव एवं विलास का हेतु बने और मानव जीवन पशुता के आदर्शों पर चले।

§८. इस अशान्ति एवं उच्छृंखलताओं के युग में एक धार्मिक

१. खुदाबख्श: ओरियन्ट अंडर कैलिफ्स (१६२०) पृ० २६१

सुधार अन्दोलन आवश्यक था और उसकी अभिव्यक्ति सलमान पारसी द्वारा प्रारम्भ किये आन्दोलन में हुई। यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि सलमान पारसी का आन्दोलन राजनैतिक न था। इसमें सन्देह नहीं कि सलमान पारसी ने अली को मुहम्मद साहब का सच्चा उत्तराधिकारी माना। इस कारण अब्दुल्लाह के राजनैतिक आन्दोलन को उनसे बल प्राप्त हुआ और उनको अब्दुल्लाह से। उन्होंने ईश्वर के एकत्व पर जोर दिया, किन्तु यह एकत्व मोहम्मद साहब के एकत्व से कुछ भिन्न था। सलमान पारसी ईश्वर के निर्गुण स्वरूप पर अत्यधिक जोर देता था। मानव जीवन और निर्गुण ईश्वर के बीच वह प्रेम का सम्बन्ध बतलाता था। ईश्वर के निर्गुण होने के कारण यह प्रेम भी सांसारिक प्रेम से बिलकुल अलग आध्यात्मिक प्रेम था।[१] यहीं पर सूफी धर्म में रहस्यवादी प्रेम का प्रवेश हुआ जो कि कालान्तर में सूफी धर्म का प्राण बन गया।

§९. इस प्रकार सातवीं शताब्दी का अन्त होते होते सूफी धर्म का जन्म हुआ और नवीं शताब्दी में उसका सजग विकास। इस विकास के इतिहास को अध्ययन के सुभीते के लिये हम चार कालों में बाँट सकते हैं :

१. तापसी जीवन (७—९ वीं शताब्दी ईसवी)
२. सैद्धान्तिक विकास (१०—१३ वीं शताब्दी ईसवी)
३. सुसंगठित सम्प्रदाय (१४—१८ वीं शताब्दी ईस्वी)
४. पतन (१९ वीं शताब्दी ईसवी से आधुनिक समय तक)

## §१० तापसी जीवन ७— ९वीं शताब्दी ईसवी

हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि एकान्तिक तापसी जीवन कुरान के द्वारा स्वीकृत नहीं है।[1] इस्लाम एक सामाजिक धर्म है किन्तु उसमें कुछ रमज़ान के व्रत, मदिरा का निषेध और तीर्थ यात्रा जैसी ऐसी रीतियां प्रचलित हैं जो तापसी जीवन से सम्बन्ध रखती हैं। ये साधारण रीतियाँ अत्यन्त सरल हैं और मनुष्य को असामाजिक नहीं बना देतीं। सुप्रसिद्ध विद्वान गोल्डज़िहर ने यह ठीक ही लिखा है कि पापों की अत्यधिक एवं अतिरंजित भावना और दैवी दण्ड का विस्तृत विधान इस्लाम में तापसी जीवन के जन्मदाता हैं।[2] तामीम अलदारी और अबू अलददो जो कि रसूल के साथी थे, के जीवनों से यह बात भली भांति प्रमाणित हो जाती है।[3] स्वयम् मोहम्मद साहब के जीवन में रसूल घोषित होने से पहिले तापसी होने के चिन्ह मिलते हैं। वे हिरा पहाड़ की गुफा में जाकर तपस्या करते थे।[4] बसरा के हसन प्रारम्भिक सूफ़ियों में सुप्रसिद्ध हैं। दैवी भय उन्हें इतना सताता था कि वे ऐसे डरने लगते थे मानो नरक की समस्त ज्वाला केवल उन्हींके लिए बनाई गई है।[5]

हमने राजनैतिक परिस्थितियों का विश्लेषण करते हुए यह बतलाया है कि ईसा की सातवीं शताब्दी के अन्त में जनता का एक वर्ग

१. जुहूरुद्दीन अहमदः मिस्टिक टेन्डेंसीज इन इस्लाम (१९३२) पृ० ३२.
२. निकलसनः पृ० २२५
३. वही २२५
४. जुहूरुद्दीन अहमद : मिस्टिक टेन्डेन्सीज इन इस्लाम (१९३२) पृ० ४६
५. निकल्सनः पृ० २२५

इस्लाम के प्रचलित स्वरूप से संशंकित हो उठा था। संभवतः उसका यह दृढ़ विश्वास हो चला होगा कि मोहम्मद साहब की शिक्षा में कुछ और अधिक गहराई है। कुरान मानवता को किसी दूसरे मार्ग पर जाने का आदेश देती है और इस्लाम के धवल प्रकाश ने किसी दूसरे समुन्नत लक्ष्य की ओर ले जानेवाले पंथ को आलोकित किया है। इस वर्ग के मनुष्यों को मोहम्मद साहब का जीवन तथा कुरान की पवित्र पुस्तक कुछ दूसरी शिक्षाएँ देती थीं। यह वर्ग उस समय के पतनोन्मुख समाज से अलग एकान्त में व्यष्टि का तापसी जीवन व्यतीत करता था। सूफी धर्म की प्रारम्भिक उत्पत्ति इसी में अन्तर्निहित है।

मोहम्मद द्वारा प्रचारित इस्लाम धर्म के धवल प्रकाश में कई रंग की किरणें मिली हुई थीं। राजनीति के शीशे ने उनको अलग अलग बिखरा दिया। शिया, खारिजा, मुर्जिया और कादरी सम्प्रदायों ने सबसे पहिले जन्म लिया।[1] क़ादरी सम्प्रदाय स्वतः कई उपसम्प्रदायों में बंटा, जिनमें एक का नाम मुतज़ाली था। इसके माननेवाले अपने प्रारम्भिक एवं वास्तविक स्वरूप में तपसी ही थे और वे संसार से अलग पार्थिव संघर्षों की प्रतिध्वनियों से बहुत दूर एकान्तिक जीवन व्यतीत किया करते थे। आत्मनिरूपण ही उनका लक्ष्य था और वे इसी को जीवन का वास्तविक लक्ष्य प्राप्त करने का सच्चा मार्ग मानते थे।[2]

१. ताराचंद : इन्फ्लुएन्स औफ इस्लाम औन इंडियन कल्चर (१९३६) पृष्ठ ५१

२. वही पृष्ठ ५५—५७

शिया सम्प्रदाय में एक वर्ग ऐसा था जो सामयिक पतित संघर्षों के वातावरण और कुरान के मनमाने विविध अर्थों से थक कर तपसी जीवन व्यतीत करता था और कुरान का अन्योक्ति-मूलक अर्थ बतलाता था।[१] मुतज़ाली सम्प्रदाय भी कुरान का जो अर्थ बतलाता था वह इस वर्ग के शियाओं से विशेष विरोध नहीं रखता था। ये एकेश्वरवादी थे और नकारात्मक प्रणाली में अपने आराध्य का वर्णन करते थे।[२] मआमर बिन अब्बा के हाथों यह सिद्धान्त एक पग और बढ़ गया और ईश्वर एक ऐसी भावात्मक सत्ता बन गई जिसके विषय में कुछ भी कहना असंभव था।[३]

जुअल नून के सिद्धान्तों में अद्वैतवाद के भी प्रारम्भिक चिन्ह मिलते हैं[४] किन्तु बायजीद के विचारों में अद्वैतवाद ने अपने दृढ़ चरण बढ़ाये। वह कहता है—

विविध रूपों में मैं ही परमेश्वर हूँ, मेरे अतिरिक्त और कोई दूसरा परमेश्वर नहीं। इस कारण मेरी उपासना करो।[५]

मैं ही मदिरा का पीने वाला हूँ, मैं ही मदिरा हूँ और मैं ही पिलानेवाला साक़ी हूँ।[६]

१. ताराचंद : इन्फ्लुएन्स ऑफ़ इस्लाम ऑन इंडियन कल्चर (१९३६) पृष्ठ ५२

२. वही पृष्ठ ५५—५६

३. वही पृष्ठ ५६

४. ब्राउन: ए लिटरेरी हिस्ट्री ऑफ़ परशिया भाग २ (१९२८) पृष्ठ ५५

५. वही भाग १ (१९२९) पृष्ठ ४२७

६. वही पृष्ठ ४२७

इन पंक्तियों में अद्वैतवाद का सब कुछ ब्रह्म ही है वाला सिद्धांत अपने प्रखरतम स्वरूप में बोल रहा है। सम्भवत: बायज़ीद ने सबसे पहले सूफ़ी धर्म में एक दूसरा योग फ़ना के सिद्धांत का दिया[1] जिस के अनुसार मानव जीवन का लक्ष्य उसी परम सत्ता में लीन हो जाना था। इस प्रकार नवीं शताब्दी तक सूफ़ी धर्म की निम्न लिखित रूप-रेखा थी।

सूफ़ी तपसी जीवन व्यतीत करते थे और वहीं पर ईश्वर के सम्बन्ध में मनन करते थे। कुछ सूफ़ियों के विचार से ईश्वर एक था और कुछ के विचार से अद्वैत। मानव जीवन का लक्ष्य उसी परम सत्ता में सदा सर्वदा के लिये विलीन हो जाना था। संसार झूठा एवं मिथ्या संघर्षों की रंगभूमि थी। सत्य की प्राप्ति के लिये उसको त्याग देना आवश्यक था। तपस्या अथवा एकान्तिक मनन एवं उस परम सत्ता से प्रेम करना इस लक्ष्य को प्राप्त करने का साधन-पथ था।

इस समय के सूफ़ी अपने समस्त सिद्धान्तों का कुरान एवं मोहम्मद साहब के जीवन से निकला हुआ बतलाते हैं। वे तपसी जीवन के चिह्न मोहम्मद साहब के हिरा नामक गुफ़ा से सम्बन्धित जीवन से खोज निकालते हैं।[2] मोहम्मद साहब सादा जीवन व्यतीत करते थे। विलास उनसे बहुत दूर था। वे दिन में धार्मिक उपदेश करते थे और रात में ईश्वर की प्रार्थना।[3] वे कभी कभी महीनों तक व्रत

१. एनसाइक्लोपीडिया ऑफ इस्लाम (१९२६) भाग १, पृष्ठ ६८६

२. ल्यूः दि अरेबियन प्रोफेट (१९२१) पृष्ठ ७६

३. जुहूरुद्दीन अहमदः मिस्टिक टेन्डेन्सीज़ इन इस्लाम (१९३२) पृष्ट १९

रखते थे और रात में सोते भी बहुत कम थे।[1] उन्होंने ईश्वर प्रार्थना की जो परिभाषा बतलाई है, उसीमें से सूफ़ी सन्तों ने अपने प्रेम विह्वलता वाले तत्व खोज निकाले हैं।[2] ज़िक्र (स्मरण) का उल्लेख कुरान में है।[3] जिहाद भी कुरान में मिलता है, जिसका साधारण अर्थ ईश्वरीय मार्ग में प्रयत्न करना है।[4] सूफ़ी संतों ने इसका अर्थ यह लगाया कि अपनी पतनोन्मुख प्रवृत्तियों से लड़ना ही जिहाद है।[5] कुरान का कहना है कि जो तुम स्वयं करते हो एकमात्र उन्हीं अच्छे कर्मों का उपदेश दो।[6] सूफ़ियों ने इसको थोड़े से परिवर्तित स्वरूप में दुहराया कि पहले आत्मनिरूपण कर आत्मशुद्धि कर लो उसके पश्चात् तुम्हें दूसरों को उपदेश देने का अधिकार होगा।[7] इसी भांति इस समय के सूफ़ी अपने को शास्त्रीय एवं परम्परागत मानते थे।

सच तो यह है कि इस समय का सूफ़ी धर्म अत्यधिक व्यवहारिक था और अपने आदर्शों के अत्यधिक निकट भी था। शासन एवं धर्म सम्बन्धी पतित अध्यक्ष पद से वह पूरी तरह से अलग था और पार्थिव संघर्षों की प्रतिध्वनि से बहुत दूर

१. वही पृष्ठ १६

२. वही पृष्ठ १६

३. वही पृष्ठ २३

४. वही पृष्ठ २७

५. वही पृष्ठ २७ डिक्शनरी ऑफ इस्लाम (१८८५) पृष्ठ २४३

६. कुरान ५१ : ३

७. जुहूरुद्दीन अहमद: मिस्टिक टेन्डेन्सीज़ इन इस्लाम (१९३२) पृष्ठ २८

प्रकृति की एकान्तिक गोद में इसका विकास हो रहा था। सूफी धर्म के सिद्धान्त निर्मित हो रहे थे और हम यह भी कह सकते हैं कि निर्माण की प्रारम्भिक अवस्था को प्राप्त हो चुके थे। आगे आने वाले युग में इनका पर्याप्त विकास हुआ।

## §११. सैद्धान्तिक विकास १०–१३ वीं शताब्दी ईसवी

इस काल में सूफ़ी सिद्धान्तों का विकास हुआ। तर्क और अनुभूति दोनों का प्रश्रय लेते हुए, सूफ़ी सन्तों ने अपने धर्म का पूर्ण विश्लेषण किया और अपने विचारों का स्पष्टीकरण। इस काल में सूफ़ी धर्म सम्बन्धी कई पुस्तकें लिखी गईं। इन पुस्तकों में सबसे पुरानी अरबी की पुस्तक कूतू अल कुलूब लेखक अबू तालिब अल-मक्की है।[१] इससे भी पहिले ख़लीफ़ा मामू की आज्ञानुसार अरस्तु के ग्रन्थ अरबी में किन्दी के द्वारा अनुवादित हो चुके थे।[२] भारतीय विद्वान अरब में पहुँच चुके थे और खलीफा के द्वारा उन्हें पर्याप्त सम्मान भी प्राप्त था।[३] इस प्रकार सूफ़ी धर्म के सिद्धान्तों के निर्माण में ग्रीस और भारत दोनों ने सहायता दी। ज्ञान प्राप्त करो, चाहे वह चीन में हो,[४] इस युग के एक सूफ़ी के द्वारा कही हुई यह उक्ति इस काल के सूफ़ियों की ज्ञान-पिपासा की परिचायक है।

१. निकलसन : लिटरेरी हिस्ट्री ऑफ अरब ( १९०७ ) पृष्ठ ३१३

२. राहुल सांकृत्यायन: दर्शन दिग्दर्शन ( १९४४ ) पृष्ठ १०५–६

३. ताराचंद: इन्फ्लुएन्स ऑफ इस्लाम ऑन इंडियन कल्चर ( १९३६ ) पृष्ठ ९५

४. ब्राउन : लिटरेरी हिस्ट्री ऑफ परशिया भाग २ ( १९२८ ) परिच्छेद १३

इस समय के समस्त सूफ़ी सिद्धान्त निर्माताओं में गज्जाली[1] का स्थान सबसे ऊंचा है। अन्य सन्तों में अबू अल फ़ज़अल शहरस्तानी[2] का नाम लिया जा सकता है। इन सन्तों ने उल्माओं को तीन कोटियों में बांटा :[3]

१. परम्पराओं को मानने वाले

२. कुरान का अर्थ बताने वाले

३. सूफ़ी

परम्पराओं को मानने वाले उल्मा मोहम्मद साहब के जीवन सम्बन्धी घटनाओं को संसार के देशों में घूम घूम कर सुनाते थे और फिर उन्हें दूसरों को सुनाते थे। मोहम्मद साहब का जीवन उनके लिये एक आदर्श जीवन था और उसी का श्रवण, कीर्त्तन वे अपना लक्ष्य मानते थे। उनके धर्म की यही नींव थी। हमें यह न भूल जाना चाहिए कि मोहम्मद साहब के जीवन के साथ साथ ये उल्मा मोहम्मद साहब के साथियों की जीवन सम्बन्धी कहानियां भी सुनते और सुनाते थे।

कुरान की व्याख्या करनेवाले उल्मा कुरान का विस्तृत एवं गहरा अध्ययन कर उसका अर्थ समझाते थे। कुरान का पठन पाठन ही इनके जीवन का लक्ष्य था और धर्म की नींव। यह उल्मा चारों ओर बिखरे हुए थे। जनता उन्हें श्रद्धा से देखती थी।

तीसरा वर्ग सूफ़ियों का था। ये सूफ़ी इन दोनों वर्गों से आगे बढ़े हुए कहे गए हैं। कुरान की कुछ आयतों तथा मोहम्मद साहब

१. मृत्यु ११११ ई०

२. मृत्यु ११५३ ई०

३. सरोजः किताब अल लुमा फिल तसव्वुफ निकल्सन द्वारा संपादित (१९१४) परिच्छेद १-९

के जीवन की घटनाओं का ये स्वतः अनुकरण एवं अनुभूति करते थे और यह स्वाभाविक ही था कि सूफ़ी लेखक अपने वर्ग को सबसे ऊंचा बतलाते।

आराध्य और आराधक के बीच प्रेम का जो मनोरम एवं कलात्मक सम्बन्ध पूर्ववर्त्ती काल के सूफ़ियों ने निश्चित किया था, वह भी इन सूफ़ियों के हाथों वैज्ञानिक हो उठा। यह कल्पना की गई कि आराधक प्रेम के पथ पर चलता है और यात्रा कर आराध्य तक पहुंचता है। इस यात्रा में उसे कई मुकाम मिलते हैं। उनका वर्गीकरण एवं स्पष्टीकरण किया गया। संसारों को भी वर्गों में बांटा गया और संसार में ज्ञान प्राप्ति के साधनों का भी विवेचन किया गय।[1] यह वर्गीकरण की प्रवृति की इति यहीं पर नहीं हो गई। सूफ़ी प्रेम भी तीन वर्गों में बांट दिया गया :[2]

१. निकृष्ट
२. मध्यम
३. उत्तम

जब आत्मा को परमात्मा अपना प्रेम देता है और आत्मा परमात्मा को एक साधारण दयावान दाता मानती है और इसी भाव से उससे प्रेम करती है तो वह प्रेम निकृष्ट होता है। जब कि आत्मा परमात्मा को सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी और सर्वान्तर्यामी मानकर उससे प्रेम करती है तो उसका प्रेम मध्यम कहलाता है। यह उत्तम उस दशा में है जब कि आत्मा परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कर उससे प्रेम करती है।

१. एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन्स एण्ड ईथिक्स भाग १२ पृ० १०

२. तर्जः किताब अल लुमा फिल तसव्वुफ निकल्सन द्वारा संपादित (१९१४)

परिच्छेद ३०

गज्जाली के विचार से तर्कजनित ज्ञान की अपेक्षा अनुभूति ऊंची वस्तु है। तर्क के आधार पर प्राप्त हुआ ज्ञान प्रत्येक दशा में अनुभूति के आधार पर प्राप्त किए हुए ज्ञान से बहुत नीचा है। उसने यह भी बतलाया कि ईश्वर को जानना एवं उसकी अनुभूति प्राप्त करना असंभव नहीं है क्योंकि ईश्वर की प्रकृति मानव प्रकृति से विभिन्न नहीं है। मानवात्मा स्वयं परमात्मा से ही आई है और सांसारिक बंधनों से छूटने पर उसीमें लीन हो जायगी।[1] इस लीन होने का स्वरूप हम भारतीय दर्शन शास्त्र की शब्दावली में तिरोभूत शब्द के द्वारा व्यक्त कर सकते हैं। गज्जाली परमात्मा को सर्वव्यापी मानता हुआ प्रकृति के पीछे उसके दर्शन करता है और हमें आदेश देता है कि प्रकृति का संचालक वही है।[2]

सूफी सिद्धान्तों के विकास की एक नवीन अवस्था हमें इब्न सीना[3] में मिलती है। उसके अनुसार परम सत्ता का स्वरूप शाश्वत सौन्दर्य भरा है। आत्म अभिव्यक्ति उसकी विशेषता एवं प्रकृति है। वह अपना स्वरूप सृष्टि में प्रतिबिम्बित कर देखती है। आत्म अभिव्यक्ति ही उसका प्रेम है जो सारे संसार में व्याप्त है। प्रेम सौन्दर्य का आस्वादन है और सौन्दर्य पूर्ण होने के कारण प्रेम भी पूर्ण है। इस प्रकार प्रेम संसार की जीवन-शक्ति है। यह प्राणियों को उनके मूल उद्गम की ओर अग्रसर करती है जो कि पूर्ण है और जिससे

१. ताराचन्द: इन्फ्लुएन्स ऑफ इस्लाम ऑन इंडियन कलचर (१९३६) पृ० ५९-६०

२. वही पृ० ५९-६०

३. मृत्यु १०३६ ई० वही पृ० ६२

वे सृष्टि रचना में अलग हट गए हैं। प्रेम के द्वारा ही मानवात्मा परमात्मा से एकत्व की अनुभूति करती है।[1]

परम सत्ता के स्वरूप के विषय में दो विचार-धाराएं इस काल में हमें मिलती है :

१. परम सत्ता प्रकाश स्वरूप है
२. परम सत्ता विचार स्वरूप है

पहली विचार धारा के दर्शन हमें शेख सहाबुद्दीन सुहरावर्दी में होते हैं[2] और दूसरी के अब्दुल कलाम जीली में।[3]

इब्न अरबी[4] के विचार से प्रकृति और मनुष्य दोनों ही उस परम सत्ता के दर्पण हैं। दोनों में ही उसका प्रतिबिम्ब पड़ता है। सृष्टि का अणु परमाणु उसी परम सत्ता से भरा हुआ है और उसी की आत्म अभिव्यक्ति है। मनुष्य परमात्मा का एक स्वरूप है और परमात्मा मनुष्य की आत्मा है। संसार के सारे धर्म उसी परम सत्य की ओर ले जाते हैं। इस कारण किसी से द्वेष करना उचित नहीं है।[5] इस युग के अन्य सूफी भी इस विचार-धारा के पोषक हैं। अब्दुल करीम इब्न जीली[6] का विचार था कि सारे धर्म एवं सम्प्रदाय उसी परम सत्ता का विश्लेषण एवं मनन करते हैं और उसके किसी न किसी पक्ष की अभिव्यंजना हमारे सामने रखते हैं। विविध

१. वही पृ० ६३
२. मृत्यु १२०९ ई० वही पृ० ७१
३. मृत्यु १४४६ ई० वही पृ० ७१
४. मृत्यु १२४१ ई० वही पृ० ७१
५. वही पृ० ७३-४
६. मृत्यु १४०६ ई० वही पृ० ७१

धर्मों एवं सम्प्रदायों में अन्तर नामों एवं विशेषणों का है। यह अन्तर वाह्य है और इसके परे अन्तर्निहित सत्य को खोजने पर हम पाते हैं कि वे उस पूर्ण परम सत्ता का ही विश्लेषण कर रहे हैं।[1] हमें यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि अब्दुल करीम इब्न जीली हिन्दू धर्म से पूर्ण परिचित था।[2]

§१२. इन शास्त्र प्रणेताओं के अतिरिक्त इस समय हमें बहुत से सूफी कवि भी मिलते हैं। उनका योग भी सूफी धर्म के प्रचार में महत्वशील होने के साथ ही साथ सूफी विचारों के विकास में भी महत्वशील है। इस दृष्टिकोण से ये कवि दो वर्गों में बंटते है :

१. वे कवि जो सूफी विचारावली के विकास में योग देते हैं।

२. वे कवि जो सूफी विचारावली की लोकप्रियता और प्रचार में योग देते है।

पहली कोटि में हम अबू आला[3] आदि को रख सकते है और दूसरी में जलालुद्दीन रूमी[4] आदि को। अबू आला ने मुहम्मद की महानता पर भी एक प्रश्नवाचक चिन्ह लगाया :

इस प्रकार बहुत से पथ हैं और बहुत से जाल हैं
और बहुत से गुरु हैं और उनमें कौन बड़ा है

१. वही पृ० ७७

२. वही पृ० ७७

३. अबू आला के लिए देखिए: ब्राउन: लिटरेरी हिस्ट्री औफ पर्शिया

४. रूमी के लिए देखिए: ब्राउन: लिटरेरी हिस्ट्री औफ पर्शिया
डेविस: जलालुद्दीन रूमी
हकीम: मेटाफिजिक्स औफ रूमी
निकल्सन: मसनवी औफ रूमी

मुहम्मद के पास बहुत रूपों में तलवार है
और उसके पास सत्य भी हो, यह संभव है, संभव है[1]

और

अल्लाह के अतिरिक्त कोई दूसरा ईश्वर नहीं है, यह ठीक है
और न मस्तिष्क के अतिरिक्त कोई दूसरा फरिश्ता ही है
यह मस्तिष्क मनुष्य का मस्तिष्क है जो अंधेरे में भटकता है
उस स्वर्ग को खोजने के लिए जो मुझमें और तुममें है[2]

इस प्रकार इन कवियों ने भी सैद्धांतिक विकास में सहायता दी परंतु वह योग कोई विशेष महत्वशील नहीं है। दूसरे वर्ग के कवियों ने सूफी धर्म को लोकप्रिय बनाने में सहायता दी। जलालुद्दीन रूमी की मसनवी आज भी घर घर पढ़ी जाती है। सादी के ग्रंथ आज भी सूफी धर्म रूपी सुमन का सौरभ फारस क्या दूर दूर तक फैला रहे हैं। रबिया और खय्याम की मस्ती भरी कविता आज भी उस कस्तूरी की सुगंधि को वनों वनों में बिखेर रही है।

संक्षेप में इस काल में सूफी धर्म के विकास की यही रूपरेखा है। इस काल में सूफी धर्म एक सुनियमित सम्प्रदाय बन गया। सूफी प्रवृत्तियों एवं धर्म नियमों का शास्त्रीय विवेचन किया गया। इससे धर्म की रूप रेखा अति स्पष्ट हो गई। पार्थिव संघर्षों से भागकर तापसी जीवन का अवलम्बन लेने वाले थोड़े से संत इस समय बहु संख्यक हो गए थे और उनका प्रभाव नागरिकों पर बढ़ता जा रहा

१. अबू आला का दीवान गीत सं० १५ इसका अंगरेजी अनुवाद वपर-लीन ने किया है।

२. वही गीत सं० ८१

था।[१] इस समय के सूफी सिद्धांत निर्माताओं को राज्याश्रय भी प्राप्त था।[२] शास्त्रीय विवेचन के लिए एक पारिभाषिक शब्दावली आवश्यक थी और उसका भी निर्माण किया गया। कहना न होगा कि समसामयिक दार्शनिक एवं धार्मिक शब्दावली में से ही यह निकाली गई थी।

हमने ऊपर बतलाया है कि सूफी धर्म सामयिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया से बना था। वह निर्माण कार्य इस युग में पूर्ण हो गया। शान्तिप्रिय मुसलमानी जनता इस्लाम धर्म एवं शासन संबंधी संस्थाओं के अध्यक्षों से थक चुकी थी। निरंतर विद्रोह एवं रक्तसरिता बहाने का उपदेश कुरान एवं मुहम्मद साहब का लक्ष्य न था, यह उसका विश्वास था। उसकी साधारण एवं मोटी समझ में इस्लाम कुछ अधिक गहरा धर्म था। उसका यह स्वप्न इस युग में सत्य बन गया। अब सूफी धर्म इस्लाम की एक नवीन व्याख्या दे रहा था। जिसकी रीढ़—दर्शनशास्त्र मजबूत थी। इस्लाम धर्म एवं शासन संबंधी दो संस्थाओं का अध्यक्ष सूफी धर्म में एक ही व्यक्ति न था। अब धर्माध्यक्ष गुरु था। यद्यपि इन सूफियों ने इन राज्याध्यक्षों के विरुद्ध किसी प्रकार का विद्रोह नहीं किया परंतु फिर भी उन्हें धर्माध्यक्ष नहीं माना। इतना ही नहीं उन्होंने मुहम्मद साहब की अध्यक्षता पर भी उंगली उठाई, इस्लाम धर्म की गहराई जनता के सम्मुख रखी और कुरान की नवीन व्याख्या जनता को बतलाई।

१. निकलसन: लिटरेरी हिस्ट्री औफ अरब (१९०७) पृ० ३३९-३४०

२. इस विषय में निकलसन की लिटरेरी हिस्ट्री अव अरब द्रष्टव्य है

§१३. इस युग में हम एक दूसरी प्रवृत्ति बढ़ती हुई पाते हैं, जिसके बीज तापसी जीवन काल में भी विद्यमान थे। उस काल में सूफी संत वनों में एकाकी जीवन स्मरण एवं चिंतन में बिताते थे। वहाँ पर साधारण जनता भी उनके उपदेश सुनने जाती थी। कुछ व्यक्ति उनके शिष्य भी बन जाते होंगे और इस प्रकार गुरु परम्पराएँ प्रारम्भ हो गई होंगी। इस युग में ये परम्पराएँ विभिन्न सम्प्रदायों का निर्माण करने लगीं। ये सम्प्रदाय इन्हीं गुरुओं के नामों पर बनते थे। आगे वाला युग इन्हीं सम्प्रदायों का इतिहास है। इस पर अब विचार किया जाएगा।

## §१४. सुसंगठित सम्प्रदाय १४वीं--१८वीं शताब्दी ई.[1]

सारे सूफी मुहम्मद साहब को अपना सबसे पहला धर्मगुरु मानते हैं।[2] मुहम्मद साहब ने अली को दीक्षा दी। अली के चार मुरीद थे—कामिल, हसन, हुसैन और ख्वान हसन बसरी। ख्वान हसन बसरी के दो शिष्य हुए—ख्वान हबीब अजवी और ख्वान अब्दुल वाहिद। ख्वान हबीब अजवी के दो शिष्य हुए—ख्वान तफूर और ख्वान दाऊद। ख्वान तफूर से तफूरी सम्प्रदाय चला। ख्वान दाऊद के ख्वान मारूफ खर्खी शिष्य हुए। इनसे खर्खी सम्प्रदाय चला। इनके शिष्य ख्वान सिरी सिक्ती हुए। इनसे सिक्ती सम्प्रदाय चला। जुनैद ने उन्हें अपना मुर्शिद बनाया। उनसे जुनैदी सम्प्रदाय चला। उनके दो मुरीद हुए—हजरत ममसदोब तथा शेख अबूबकर। हजरत ममसदोब के दो मुरीद हुए—शेख अबूअली और ख्वान अहमद।

१. ये गुरुपरम्पराएँ रोज की ग्लासरी ऑफ पंजाब के पहले भाग से ली गई हैं। वहीं से टाइटस ने अपने ग्रंथ इंडियन इस्लाम में दी हैं।

शेख अबूअली के शिष्य शेख अबू इशाक़ गज़रूनी हुए, उनसे गजरूनी सम्प्रदाय चला।

हम ऊपर कह चुके हैं कि ख्वान अहमद हज़रत ममसदोब के शिष्य थे। उनके मुरीद शेख अमोइया हुए। शेख अमोइया के मुरीद शेख वजीउद्दीन हुए। उनके दो मुरीद हुए—शेख अहमदीन और शेख जियाउद्दीन। शेख अहमदीन से तुसी सम्प्रदाय चला और ज़ियाउद्दीन से सुहरावर्दी। शेख ज़ियाउद्दीन के शिष्य शेख नज़मुद्दीन हुए। उनसे फिरदौसी सम्प्रदाय चला।

हम ऊपर कह चुके हैं कि जुनैद के दो शिष्य थे—हज़रत ममस-दोब और शेख अबूबकर। ममसदोब की चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं। शेख अबूबकर के मुरीद शेख अब्दुल वाहिद हुए। शेख अब्दुल वाहिद के शिष्य शेख अबुल फराह हुए। शेख अबुल हसन ने उन्हें अपना मुर्शिद माना। शेख अबुल हसन के शिष्य शेख अबू सईद हुए। अबू सईद के शिष्य शेख अब्दुल कादिर हुए और उनसे कादिरी सम्प्रदाय चला।

हमने ऊपर बतलाया है कि ख्वान हसन बसरी के दो शिष्य थे हबीब अजमी और ख्वान अब्दुल वाहिद। ख्वान अब्दुल वाहिद से जैदी सम्प्रदाय चला। उनके शिष्य ख्वान फज़ल हुए। ख्वान फज़ल के पिता का नाम अय्याज़ था। उनसे अय्याज़ी सम्प्रदाय चला। ख्वान अय्याज़ के शिष्य ख्वान इब्राहीम अधम थे। उनसे अधम सम्प्रदाय चला। उनके शिष्य ख्वान हजिक थे। ख्वान हज़िक के मुरीद ख्वाद हबेरा थे जिनसे हबेरी संप्रदाय चला। इनके मुरीद ख्वान अबू थे और अबू के शिष्य ख्वान इशाक़ शफी थे जिनसे चिश्ती संप्रदाय चला।

इस गुरु परंपरा को हम निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं

मुहम्मद
अली
कामिल
हसन
हुसैन
ख्वान हसन बसरी
ख्वान हबीब अजवी
ख्वान अब्दुल वाहिद
ख्वान फज़ल
ख्वान तफूर
ख्वान दाऊद
ख्वान इब्राहीम अधम
ख्वान मारूफ खर्खी
ख्वान हज़िक
ख्वान सिरी सिक्ती
ख्वान हबेर
जुनैद
ख्वान अबू
ख्वान इशाक़शामी
हज़रत ममसदोव
शेख अबू वकर
शेख अब्दुल वाहिद
शेख अबूअली
ख्वान अहमद
शेख अब्दुल फराह
शेख अमोइया
शेख अबुल हसन
शेख अबू इशाक
शेख वजीउद्दीन
शेख अबू सईद
शेख अब्दुल कादिर
शेख अहमदीन
शेख जियाउद्दीन
शेख नजमुद्दीन
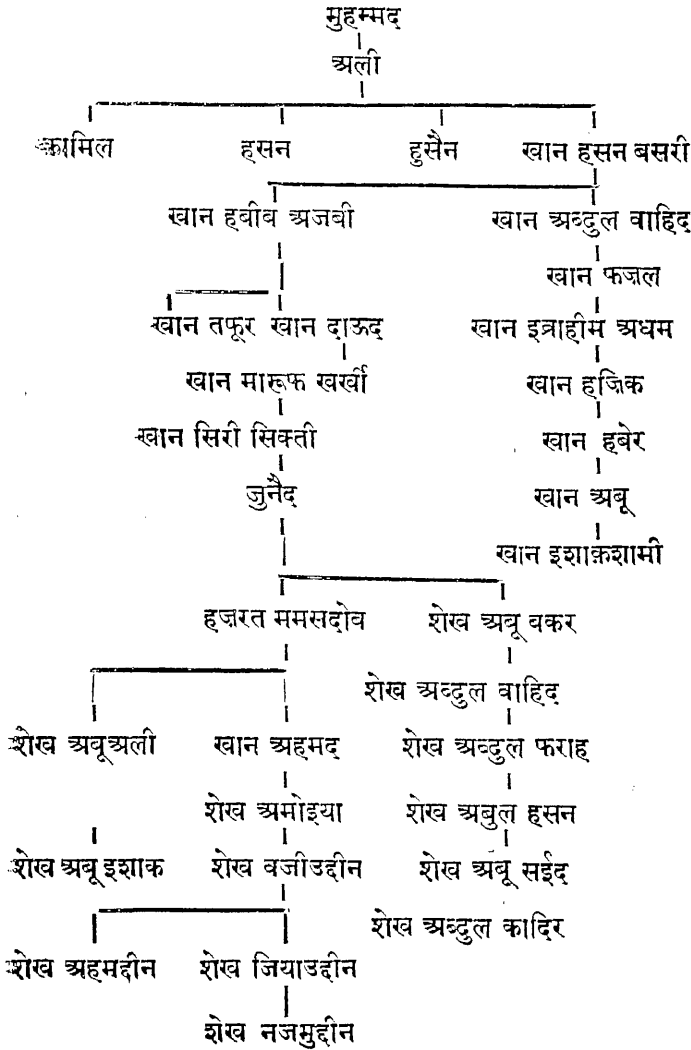
इन सम्प्रदायों के अतिरिक्त एक सम्प्रदाय नक्शबंदी नामक भी है। आज इसके सदस्य अपना संबन्ध अली से नहीं जोड़ते वरन् मुहम्मद के दूसरे खलीफा अबू बकर से जोड़ते हैं। अबू बकर के शिष्य सलमान फारसी थे। उनके मुरीद इमाम कासिम थे और वे जफर के मुर्शिद थे। जफर के मुरीद बज़ीद बुस्तमी थे और उनके शेख अबुल हसन। शेख अबुल हसन के शिष्य शेख अब्दुल क़ासिम थे और उनके खान अबुल अली। खान अबुल अली के शिष्य खान यूसुफ थे और उनके खान अब्दुल खालिक। खान अब्दुल खालिक के शिष्य खान खरीफ थे और उनके खान महमूद। खान महमूद के मुरीद खान अली थे और खान अली खान मुहम्मद बाबा के मुर्शिद थे। खान मुहम्मद बाबा के शिष्य अमीर कलाल थे और उनके खान बहाउद्दीन नक्शबंद। इनसे ही नक्शबंदी संप्रदाय चला। इस गुरु परंपरा को हम निम्नलिखित तालिका द्वारा सुस्पष्ट कर सकते हैं—

क्रमशः
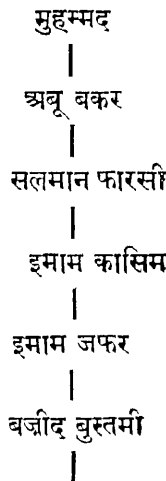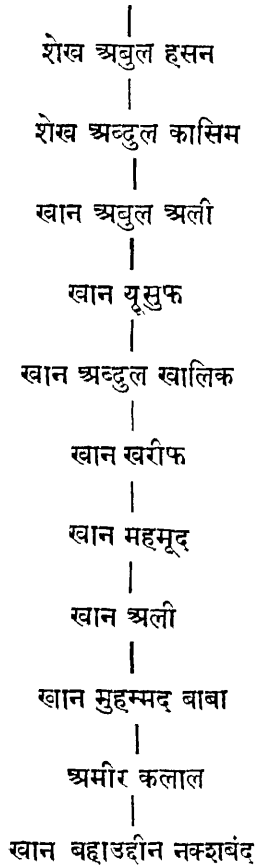
इन विविध सम्प्रदायों में सिद्धान्तों का कोई बड़ा अन्तर न था।[1] केवल गुरु परम्पराओं के आधार पर ही इनमें विभिन्नत्व था।

१. गुस्तरी: आउट लाइन्स ऑफ इस्लामिक कल्चर भाग २ (१९३८) पृ० ४७२

इन्हें अपनी गुरु परम्पराएँ मौखिक याद रहती थीं। ये सम्प्रदाय व्यष्टि रूप से सूफी धर्म का प्रचार इस्लाम धर्मावलंबी देशों में कर रहे थे। विधर्मियों के देशों में जाकर ये इस्लाम का प्रचार करते थे।[1] ये उत्तर पश्चिम में स्पेन तक गए और पूर्व में भारत वर्ष तक। सच तो यह है कि इस्लाम का भारत में प्रचार इन सूफियों के द्वारा अत्यधिक हुआ। यह तो सुनिश्चित है कि हिन्दू धर्म अपने दर्शन की दृढ़ रीढ़ि के कारण पर्याप्त गहरी जड़ें जमाए हुए था। तलवार के द्वारा विश्वास नहीं फैलता और धार्मिक कट्टरता तो बड़ी दूर की वस्तु है। फिर भी धर्म परिवर्तित हिन्दू मुसलमान होते ही इतने कट्टर क्यों हो जाते थे? इसके कई कारणों में एक बड़ा कारण यही था कि ये सूफी भारतवर्ष में इस्लाम धर्म पर विश्वास प्रचारित कर रहे थे। इसका विवेचन आगे किया जाएगा।

इस सम्प्रदाय काल में कोई सिद्धान्तों संबंधी उन्नति न हुई। कुछ सिद्धान्तों संबंधी ग्रंथ अवश्य लिखे गए किंतु उनमें किसी विशेष मौलिकता के दर्शन दुर्लभ हैं। प्रचार कार्य के साथ ही साथ दिखावे की प्रवृत्ति बढ़ी। प्राणायाम आदि संबंधी कुछ नियमों से ये संत परिचित थे।[2]

इस काल में एक प्रवृत्ति करामातों की है।[3] प्रत्येक संत करामाती था। उसके शिष्य जनता में उसकी करामातों का प्रचार करते थे। मध्ययुग की सरल विश्वास से भरी जनता उन करामातों को सच मान लेती थी और उन पीरों की पूजा करने लगती थी। यह पीरत्व ही सूफी धर्म के पतन का कारण हुआ।

१. इस विषय पर अर्नल्ड कृत प्रीचिंग औफ इस्लाम सुंदर प्रकाश डालती है

२. देखिए अर्नल्ड: प्रीचिंग औफ इस्लाम (१९१३)

३. जुहुरूद्दीन अहमद: मिस्टिक टेण्डेन्सीज़ इन इस्लाम (१९३२) पृष्ठ १४१

### §१५. पतन १८वीं शताब्दी ईसवी से वर्तमान काल तक[१]

हम ऊपर पीरों की चर्चा कर चुके हैं। उनका प्रचार धीरे धीरे बढ़ा। प्रमुख रूप से इसी कारण सूफी धर्म का पतन हुआ। आज भी अपने जर्जरित रूप में सूफी मिलते हैं और अपनी पवित्रता एवं उच्चता की छाप बैठाने का प्रयत्न करते हैं। लोगों को तावीज़ आदि देते फिरते हैं परंतु उनमें न तो वह आध्यात्मिक उच्चता ही है और न वह आत्मिक पवित्रता।

संक्षेप में सूफी धर्म की उत्पत्ति एवं विकास का यही चित्र है।

§१६. भारतवर्ष में सूफी धर्म की स्वतंत्र उत्पत्ति नहीं हुई थी। सूफी दरवेश ही इसे पश्चिमी इस्लामी प्रांतों से यहां पर लाए थे। सबसे पहले कौन सूफी भारतवर्ष में आया इसके विषय में हम विश्वस्त रूप से कुछ भी नहीं जानते। परन्तु निम्नलिखित सूफी दरवेशों को हम प्रारंभिक बारहवीं शताब्दी तक के सूफियों में पाते हैं।

१. शेख इस्माइल[२]—ये १००५ ई० के लगभग आए और लाहौर में बस गए। इनके विषय में कहा जाता है कि जो कोई इनके सम्पर्क में आया, इस्लाम धर्मावलम्बी हो गया।

२. सैयद नथर शाह[३]—ये त्रिचनावली में आकर बसे थे। खुत्तनों की इस्लाम धर्मावलंबी जाति का कहना है कि इनके तथा

१. इस परिच्छेद का संबंध हमारे विषय से बहुत ही कम है इस कारण यह लगभग नहीं के बराबर दिया गया है।

२. इंडियन कल्चर भाग १ पृष्ठ २९७
अर्नल्ड: प्रीचिंग ऑफ इस्लाम (१९१३) ई० पृष्ठ २८०

३. टाइटस: इण्डियन इस्लाम (१९३०) पृष्ठ ४२
इंडियन कल्चर भाग १ पृष्ठ २९६

इनके साथियों के द्वारा ही वह मुसलमान हुई थी। इनका जीवन काल ९६९-१०२९ ई० है।

३. शाह सुलतान रूमी[1]—कहा जाता है कि इसने बंगाल के एक कोच राजा को मुसलमान बना लिया था।

४. अब्दुल्लाह[2]—१०६५ ई० में ये गुजरात आए और कम्भ के आस पास इस्लाम धर्म का प्रचार करना इन्होंने प्रारंभ किया। इसके द्वारा बनाए हुए मुसलमानों के वंशज आज बोहरा कहलाते हैं।

५. दाता गंजबख्श[3]—ये एक बहुत बड़े दरवेश थे। इन्होंने कश्फ अल महबूब नामक एक बहुत बड़ी पुस्तक लिखी है। ये लाहौर में आकर बसे थे और इनकी मृत्यु १०७२ ई० में हुई।

आर्नल्ड: प्रीचिंग आफ इस्लाम (१९१३)
टाइटस: इंडियन इस्लाम (१९३०) पृष्ठ ४८
मद्रास डिस्ट्रिक्ट गज़टियर्स (१९०७) त्रिचनापल्ली भाग १ पृष्ठ ३३८-
एनसाक्लोपीडिया आफ इस्लाम (१९२१) भाग ९ पृष्ठ ६९

---

१. इंडियन कल्चर भाग १ पृष्ठ २९६
बंगाल डिस्ट्रिक्ट गज़टियर्स (१९१७) मैमेनसिंह पृष्ठ १५२

२. इंडियन कलचर भाग १ पृष्ठ २९६
टाइटस: इंडियन इस्लाम (१९३०) पृष्ठ ४३ और ३९

३. इंडियन कल्चर भाग १ पृष्ठ २९६—७
सेन: मैडीवल मिस्टिसिज्म (१९३७) पृष्ठ १७
निक्लसन: कश्फ अल महजूब भूमिका
एनसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम (१९१६) पृष्ठ ९
टाइटस: इंडियन इस्लाम (१९३०) पृष्ठ ११९

६. नूरुद्दीन[1]—यह प्रचार कार्य में अत्यन्त दक्ष था और इसने गुजरात में कौबी, खर्वा और कोरी जाति के हिन्दुओं को मुसलमान बनाया। यह बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में आया था।

७. बाबा आदिमशाहिद[2]—यह बल्लाल सेन के राज्यकाल में बंगाल आया था।

८. मुहम्मद अली[3]—बारहवीं शताब्दी ईसवी के प्रारंभ में यह दरवेश गुजरात आया। इसने बहुत से हिन्दुओं को मुसलमान बनाया।

§१७. सूफी दरवेशों के प्रवेश की संक्षेप में यही रूप रेखा है। बारहवीं शताब्दी ईसवी के अंत से इनके इतिहास के क्रमबद्ध पृष्ठ हमें मिलते हैं। ये सूफी किसी न किसी उपर्युक्त सम्प्रदाय से सम्बद्ध होते थे। इस कारण अध्ययन के सुभीते के लिये इनका विश्लेषण सम्प्रदायों के शीर्षकों में निम्नलिखित रूप से किया जा सकता है।

१. इंडियन कल्चर भाग १ पृष्ठ २९७

टाइटस: इंडियन इस्लाम (१९३०) पृष्ठ ४३

अर्नल्ड: प्रीचिंग औफ इस्लाम (१९१३) पृष्ठ २७५

२. इंडियन कल्चर भाग १ पृष्ठ २९७

ब्लाचमेन: कन्ट्रीब्यूशन टु दि ज्योग्रेफी एण्ड हिस्ट्री औफ बंगाल पृष्ठ ७६—७७

३. इंडियन कल्चर भाग १ पृष्ठ २९७

टाइटस: इंडियन इस्लाम (१९३०) पृष्ठ ६८

§१८. चिश्ती सम्प्रदाय[1]—शेख मुईनुद्दीन[2] इस सम्प्रदाय का सबसे बड़ा भारतीय दरवेश है। कहा जाता है कि मुहम्मद साहब ने स्वयं अज्ञात रूप से इसे भारत में इस्लाम धर्म के प्रचार करने की आज्ञा दी थी।[3] यह भारतवर्ष आया और लाहौर होते हुए अजमेर में बस गया।[4] वहां पर इसने इस्लाम धर्म का बड़ा प्रचार किया। ख्वाजा कुतबुद्दीन बख्तयार काकी इसका प्रमुख मुरीद था।

१. इस सम्प्रदाय के विशेष विवरण के लिए देखिए :
रोज: ग्लासरी ऑफ ट्राइब्ज़ एण्ड कास्ट्स ऑफ पंजाब भाग १
टाइटस: इंडियन इस्लाम
शुस्तरी: आउटलाइन्स ऑफ इस्लामिक कल्चर भाग २
अबुलफज़ल: आइन-ए-अकबरी
एनसाइक्लोपीडिया ऑफ इस्लाम
एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रीलिजंन्स एण्ड ईथिक्स
इंडियन कल्चर भाग १

२. आईन अकबरी (ब्लाचमेन) भाग १ पृष्ठ ३६२
इंडियन कल्चर भाग १ पृष्ठ ३३३
एनसाइक्लोपीडिया ऑफ इस्लाम
एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन्स एण्ड ईथिक्स
टाइटस: इंडियन इस्लाम (१९३०) पृष्ठ ११८
अर्नल्ड: प्रीचिंग ऑफ इस्लाम (१९१३) पृष्ठ २८१

३. इंडियन कल्चर भाग १ पृष्ठ ३३४

४. इंडियन कल्चर भाग १ पृष्ठ ३३४
आईन अकबरी ब्लालचमेन पृष्ठ ३६२

वह दिल्ली के निकट बस गया।[1] इसके एक शिष्य शाह अब्दुल्लाह किरमानी ने बंगाल में इस्लाम धर्म का प्रचार किया।[2] काकी का शिष्य फरीदुद्दीन शकरगंज था। उसने पंजाब में इस्लाम का प्रचार किया। वह दक्षिण भी गया और वहां भी उसने प्रचार कार्य को सफल बनाया। वह अपने इसी लक्ष्य को लेकर बंगाल भी गया था।[3] इसके दो शिष्य थे अलाउद्दीन अली अहमद साबिर[4] और निज़ामुद्दीन औलिया।[5] ये दोनों शिष्य अपने गुरु की ही भांति दृढ़ चित्त एवं लगन के साथ कार्य करने वाले थे। औलिया के दो शिष्य दक्षिण इसी प्रचार कार्य के लिये गए थे[6] और एक अरबी सिराजुद्दीन बंगाल।[7]

§१९. सुहरवर्दी सम्प्रदाय[8]—शेख शिहाबुद्दीन[9] का शिष्य शेख

१. इंडियन कल्चर भाग १ पृष्ठ ३३५

२. वही पृष्ठ ३३४
टाइटस: इंडियन इस्लाम (१९३०) पृष्ठ ११९

३. इंडियन कल्चर भाग १ पृष्ठ ३३५

४. वही

५. वही
टाइटस: इंडियन इस्लाम (१९३०) पृष्ठ ११९

६. इंडियन कल्चर भाग १ पृष्ठ ३३६

७. वही

८. इस सम्प्रदाय के लिए भी देखिये :
शुस्तरी: आउटलाइन्स ऑफ इस्लामिक कल्चर भाग २
टाइटस: इंडियन इस्लाम

जलालुद्दीन तबरीजी बंगाल १२०० ई० में पहुँचा। उसने वहां बड़ा प्रचार कार्य किया।[१] काजी हमीदुद्दीन नागौरी ने दिल्ली में अपना केन्द्र स्थापित किया। यह भी शेख शिहाबुद्दीन का शिष्य था।[२] उसके शिष्य अहमद ने बदायूं को अपना कार्य क्षेत्र बनाया।[३] मुलतान में शिहाबुद्दीन का शिष्य बहाउद्दीन ज़करिया था।[४] वह इस सम्प्रदाय में सबसे बड़ा भारतीय दरवेश है। इसका सबसे बड़ा शिष्य सैयद जलालुद्दीन सुर्खपोश था। इसने उच में अपना केन्द्र बनाया।[५] उसका शिष्य सैयद जलाल बिन कबीर था। उसने बंगाल और सिन्ध में बहुत से हिन्दुओं को मुसलमान बनाया।[६]

§२०. जुनैदी सम्प्रदाय[७]—इसका क्रमबद्ध इतिहास अभी हमें

रोज: ग्लासरी ऑफ पंजाब ट्राइब्ज एण्ड कास्ट्स भाग १

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ इस्लाम

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन्स एण्ड ईथिक्स

इंडियन कलचर भाग १

९. इंडियन कलचर भाग १ पृष्ठ ३३६

---

१. वही

२. वही

३. वही पृष्ठ ३३७

४. वही

५. वही

६. वही

७. इसके अध्ययन के लिए देखिए :

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन्स एण्ड ईथिक्स

ज्ञात नहीं है। दातागंज बख्श सबसे पहला जुनैदी दरवेश था जो भारत में आया।[१] चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में बाबा इशाक़ मग़रिबी का नाम हम फिर सुनते हैं। खट्टू में इसने अपना केन्द्र बनाया।[२] इसका उत्तराधिकारी शेख नसीरुद्दीन अहमद था। उसने भी काफी प्रचार कार्य किया। इसका कार्यक्षेत्र गुजरात था।[३] इस सम्प्रदाय के एक दरवेश बहाउद्दीन ने सरहिन्द में पर्याप्त कार्य किया।[४]

§२१. शत्तारी सम्प्रदाय[५] —चौदहवीं शताब्दी के अन्त में अब्दुल्लाह शत्तारी नामक दरवेश ने शत्तारी सम्प्रदाय भारत में संस्थापित किया।[६] उसके उत्तराधिकारियों की नामावली हमें प्राप्त नहीं है। उसने कुछ नवीन प्रथाएं चलाईं। इस कारण भारतीय जनता उसका विश्वास न कर सकी।[७] मुहम्मद गौस इस सम्प्रदाय का

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ इस्लाम
टाइटस: इंडियन इस्लाम
इंडियन कल्चर भाग १

---

१. इंडियन कल्चर भाग १ पृष्ठ ३३७
२- वही
३. वही पृष्ठ ३३८
४. वही पृष्ठ
५. इसके अध्ययन के लिए भी उपर्युक्त सामग्री की ही सहायता लेनी चाहिए।
६. इंडियन कल्चर भाग १ पृष्ठ ३३८
७. वही

दूसरा सुप्रसिद्ध दरवेश था। उसने सम्राट् (?) हुमायूं तक को दीक्षा दी थी।[१] बहाउद्दीन जौनपुरी मीर सय्यद अली क़ौसाम और शाह-पीर इस संप्रदाय के अन्य प्रसिद्ध दरवेश थे।[२] इन्होंने भी प्रचार कार्य किया किया।

§२२. क़ादिरी संप्रदाय[३]—भारत में इसका प्रवेश अब्दुल करीम बिन इब्राहीम अलजीली ने १३८८ ई० में करवाया था।[४] इसके पश्चात् शेख सैयद नियामतुल्ला नामक दरवेश भारत आया।[५] इन दरवेशों को कोई ऐसी विशेष सफलता नहीं मिल सकी। १४८२ ई० में मुहम्मद ग़ौस जीलानी भारत आया। इसे सफलता मिली। इसने उच को अपना केन्द्र बनाया था।[६]

§२३. मदारी सम्प्रदाय[७]—शाह मदार बदीउद्दीन इस सम्प्रदाय को भारतवर्ष लाया।[८] इस सम्प्रदाय का वास्तविक नाम उवैसी सम्प्रदाय था।[९] इसका बड़ा प्रचार उत्तरी भारत और विशेषकर उत्तर प्रदेश

१. वही पृष्ठ ३३९

२. वही

३. इसके अध्ययन के लिये भी उपर्युक्त सामग्री की ही सहायता लेनी चाहिए।

४. इंडियन कल्चर भाग १ पृष्ठ ३३९

५. वही

६. वही

७. इसके अध्ययन के लिए भी उपर्युक्त सामग्री ही उपादेय है।

८. इंडियन कल्चर भाग १ पृष्ठ ३४०

९. वही

में हुआ। अब्दुल कुद्दूस गंगुई तथा शाह मदारी इसके सुप्रसिद्ध शिष्य थे।[१]

§२४. नक्शबंदी सम्प्रदाय[२]—पंद्रहवीं शताब्दी के अंत में यह सम्प्रदाय भारतवर्ष में आया। इसका प्रवेश ख्वाजा बाक़ी बिल्ला ने करवाया, किंतु वह विशेष सफल न हुआ। १६०३ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।[३]

संक्षेप में पंद्रहवीं शताब्दी तक सूफी धर्म के विविध सम्प्रदायों का यही विकास है। कालान्तर में ये सम्प्रदाय भी उपसम्प्रदायों में विभक्त हो गए।[४]

§२५. हम ऊपर कह चुके हैं कि भारत के बाहर इन सम्प्रदायों में गुरु परंपरा के अतिरिक्त और कोई विशेष अन्तर न था। भारत में भी कोई अन्य विशेष अन्तर हमें नहीं मिलता।[५] समस्त सूफी इस्लाम का प्रचार अनवरत श्रम के साथ कर रहे थे। हिन्दुओं की गरदन तलवार के आगे झुक गई थी परंतु तलवार से विश्वास उत्पन्न नहीं किया जा सकता था। उस कार्य को ये सूफी कर रहे थे। सच तो यह है कि इस्लाम का वास्तविक प्रचार भारतवर्ष में इन्हीं सूफी दरवेशों के द्वारा हुआ। मुसलमानी राज्य तो बहुत ही बाहरी

१. वही

२. वही पृष्ठ ३४१

३. वही

४. आईने अकबरी में इनका कुछ वर्णन मिलता है।

५. इनमें जो अंतर है उसके लिए देखिए रोज : ट्राइब्ज़ एण्ड कास्ट्स ऑफ पंजाब भाग १, इससे स्पष्ट है कि अंतर एकमात्र बाह्याचारों का थोड़ा सा है।

तथा ऊपरी चीज़ थी। मुसलमान बादशाहों को धर्म प्रचार करने का बड़ा अवकाश ही कहाँ था।[1] अत्याचार करने की तो उनकी आदत थी जो हम देखते है कि अरब और फारस में भी थी।[2] दिल्ली की अफगान सल्तनत में कभी भी सारा भारतवर्ष एक साथ नहीं आया। बादशाह को जो प्रदेश कर दे देते थे वे उसके आधीन समझे जाते थे। कर देने के अतिरिक्त प्रान्तीय शासक लगभग स्वतंत्र से थे।[3] इस्लाम के प्रचार का प्रबंध राजा की ओर से भी कुछ न कुछ था ही परंतु वह विशेष सफल नहीं हो सकता था। इस कार्य के लिए ये सूफी दरवेश भारतवर्ष आए थे। वास्तव में इन दरवेशों में प्रचार भावना बड़ी ही उग्र थी। इन दरवेशों में कभी कभी तो बड़े बड़े मनुष्य भी होते थे। सैयद अशरफ जहांगीर नामक दरवेश इस्फहान का बादशाह था। उसने राजगद्दी का परि-

१. मध्ययुग की भारतीय राजनीति एक दूसरे स्तर की थी। सुलतान के मरते ही उपद्रव प्रारंभ हो जाते थे। प्रत्येक बादशाह को अपने प्रारंभिक वर्ष शांति स्थापित करने में लगते थे। इसके अतिरिक्त प्रत्येक बादशाह को प्रतिपद और प्रतिक्षण अपने मारे जाने का भय था। वे पर्याप्त समय अपनी रक्षा में भी देते थे। प्रारंभिक अफगान सुलतानों को शांति से राज्य करने का तो समय ही नहीं मिला। धर्म प्रचार का जो प्रबंध उन्होंने किया भी उससे अधिक महत्वपूर्ण उनके लिए अपने राज्य एवं शरीर सुरक्षा थी। देखिये ईश्वरीप्रसाद :

ए शोर्ट हिस्ट्री औफ मुस्लिम रूल इन इंडिया परिच्छेद सुसाइटी एण्ड कल्चर

२. निकल्सनः लिटेररी हिस्ट्री औफ अरब

३. ईश्वरीप्रसाद : हिस्ट्री औफ कौरूना टर्क्स (१९३६) भाग १ पृष्ठ २९४

त्याग कर सूफी धर्म स्वीकार किया। वह भी भारतवर्ष इसी प्रचार कार्य के लिए आया था।[1] इन दरवेशों का साधारण जनता पर बड़ा प्रभाव था। कभी कभी तो यह प्रभाव इतना अधिक हो जाता था कि बादशाह भी उनसे डरने लगता था। स्वयं बादशाहों पर भी इनका प्रभाव था।

उनके प्रभाव के दो कारण थे। एक तो इनकी विद्वत्ता और दूसरा इनके जादू एवं अचरज से भरे हुए कार्य। ये सूफी बड़े ही अध्ययनशील होते थे। उस युग में आज जैसे विश्वविद्यालय तो न थे परंतु ये अपने गुरुओं के पास, प्रायः एक से अधिक गुरुओं के पास, जाकर विद्याध्ययन करते थे।[2] इस पथ पर वे ही आते थे जिनके हृदय में सच्चा विद्यानुराग होता था। इनकी विद्वत्ता का प्रभाव ही भारत-वासियों पर विशेष पड़ता होगा। इनकी दूसरी विशेषता इनकी करामातें थीं। आज प्रत्येक सूफी दरवेश के साथ कुछ न कुछ करामाती कहानियां लिपटी हुई सुनाई पड़ती हैं।[3] पता नहीं इन कहानियों में कितना सत्य था। परंतु इन कहानियों के प्रचार से जनता पर उनकी महानता का प्रभाव अवश्य पड़ता होगा। ऐसी कहानियां फारसी सूफियों के विषय में भी वहाँ प्रचलित थीं।[4]

१. र्‍यू: कैटेलोग औफ परशियन मैन्युस्क्रिप्ट्स एट ब्रिटिश म्यूज़ियम भाग १ पृष्ठ ४१२

२. सैयद अशरफ जहांगीर स्वयं कई गुरुओं के पास पढ़े थे। वही पृष्ठ ४१२ तथा ग़ुलाम सरवर: खजीन तुल असफिया (१२९० हि०) पृष्ठ ३७१-७

३. ये कहानियां पुरानी हैं। इनका उल्लेख अलबदाउनी की मुन्तखिब तवारीख में भी मिलता है।

४. जुहुरुद्दीन अहमद: मिस्टिकल टेण्डेंसीज़ इन इस्लाम (१९३२) पृष्ठ १४३

§२६. भारत में सूफी सिद्धांतों में कोई विशेष उन्नति न हो सकी। दाराशिकोह और दातागंज बख्श जो इस देश के सबसे बड़े सिद्धांत निर्माता हैं, इस दिशा में कोई विशेष उन्नति न करवा सके। पिछले लेखकों एवं संतों के विचारों को ही उन्होंने प्रायः अधिक स्पष्टता के साथ लिखा है। सूफी तापसी जीवन में योग की प्रवृत्ति यहां कुछ अधिक बढ़ गई।[१] यहां पर सूफी धर्म गोरख पंथ से मिला। गोरख पंथ में योग अति प्रधान है। फारस में सूफियों के विषय में करामाती कहानियां प्रसिद्ध थीं और वैसी ही कहानियाँ यहाँ पर गोरख पंथियों के विषय में फैली हुई थीं। इन्हीं करामातों की बदौलत ये साधु एवं जोगी जनता पर प्रभाव डालते थे। सूफियों की ये प्रवृत्तियाँ भी यहाँ पर और बढ़ीं।[२] यहाँ पर योगी कुछ ऐसी बातें भी जनता से कहा करते थे कि सारा संसार इसी मनुष्य के शरीर के अन्दर है।[३] यहाँ पर जब सूफी आये तो उन्होंने यह बात भी कही।[४]

१. शेख बुरहान तो योगी ही कहलाते थे। देखिए :
अखबार अल अख्यार लखनऊ, दाराशिकोह कृत हकनामा
और अलबदाउनी कृत मुन्तखिब तवारीख भाग ३

२. देखिये अलबदाउनी कृत मुन्तखिब तवारीख भाग ३
रैंकिंग कृत अनुवाद

३. गोरखबानी (१९९९) पृष्ठ १३५

४. जायसी ने अपने आखरी कलाम में कहा है :
सुनु चेला जस सब संसारू
ओही भांति तुम कया बिचारू

जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ३७९

उस समय के सूफी धर्म एवं भारतीय धर्मों में निम्न छः समानताएं थीं :

१. अद्वैतवादी दर्शन

२. एकेश्वरवादी दर्शन

३. योग प्राणायाम आदि

४. धार्मिक सहिष्णुता के साथ साथ अपने अपने सम्प्रदाय को फैलाने का प्रयत्न

५. रहस्यवादी प्रणयमूला भक्ति

६. गुरु परम्पराएँ एवं उपसम्प्रदाय

§२७. ईसा की दसवीं शताब्दी में अद्वैतवादी दर्शन का निर्माण शंकराचार्य कर चुके थे।[1] उसका प्रचार भारत के कोने कोने में हो चुका था।[2] सच तो यह है कि मध्ययुग में प्रचारित सभी धर्म इसी दर्शन पर किसी न किसी प्रकार आधारित हैं।[3] साधारण समझ वाली जनता के लिए एकेश्वरवाद एवं अद्वैतवाद में कोई ऐसा बड़ा

जैसी अहै पिरथिमी सगरी।
तैसी जानहु काया नगरी।

जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ३६१

---

१. वेणीप्रसाद : हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता (१९३१) पृष्ठ ३३१

२. शंकर के अद्वैतवाद के आधार पर ही मध्ययुग के विविध दर्शनों का निर्माण हुआ था। शंकराचार्य ने जो ब्रह्मसूत्र का भाष्य लिखा उसके बहुत से भाष्य लिखे गये। इससे प्रमाणित होता है कि शंकर का कितना अधिक प्रचार हो चुका था।

३. विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद आदि नाम ही यह प्रमाणित कर देते हैं कि वे अद्वैतवाद के आधार पर ही चले हैं।

भेद नहीं है। मध्ययुग में यह एकेश्वरवाद भी हमें हिन्दू धर्म में मिलता है।[१] गोरखपंथी योगियों में योग का बड़ा प्रचार था।[२] अन्य शैव सम्प्रदाय भी योग में विश्वास रखते थे।[३] इसका इतना अधिक प्रचलन था कि सूरदास को अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ भ्रमरगीत में इसी योग से लोहा लेना पड़ा और अन्त में उन्होंने इसीको भक्ति से पराजित दिखाया है।[४] तुलसीदास को भी योग से घबड़ाकर लिखना पड़ा—

गोरख जगायो जोग भगति भगायो[५]

कबीर ने तो इसको प्रश्रय दिया और उसे अपने साधना पथ का एक अङ्ग बनाया।[६] ये कनफटे रमते योगी प्राणायाम आदि करते थे।[७] ये शरीर को सृष्टि का लघु संस्करण कहते थे। शरीर

१. श्रीमद्भागवत में मंगलाचरण

२. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में योगधारा, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १२, हजारीप्रसाद द्विवेदी: हिन्दी साहित्य की भूमिका (१९४०) पृष्ठ ११

३. एन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन्स एण्ड ईथिक्स (१९२०) भाग ११ शैविज्म पृष्ठ ९१

४. भ्रमरगीत सार (१९९९ वि०) पृष्ठ १४९-५० तथा पद १४, १५, ४१, ४२, ५२, ५४, ६२, ६४, ७४, ८१ आदि

५. तुलसी रचनावली, कवितावली, उत्तरकांड छंद ८४ (१९९६) पृष्ठ २५५

६. रामकुमार वर्मा : कबीर का रहस्यवाद

७. यह हठयोग के अंतर्गत आता है। गोरखपंथ हठयोग को स्वीकार करता था। गोरखनाथ ने स्वयं इस विषय पर लिखा है। देखिए गोरखबानी।

भक्ति एवं योग दोनों को अपने पथ में स्वीकार किया है।[१] दूसरी ओर शैव वैष्णव तथा इनके उपसंप्रदाय अपना अपना प्रचार भी कर रहे थे। रहस्यवादी प्रणयमूला भक्ति भी उस समय के हिन्दू धर्म में विद्यमान थी। ग्यारह आसक्तियों में कान्तासक्ति भी एक थी।[२] गोपियां कृष्ण की भक्ति इसी भाव से करती थीं। वल्लभाचार्य ने गोपी बनाना मानव जीवन का लक्ष्य माना है।[३]

§२८. सूफियों में भी अद्वैतवादी दर्शन था। फारस में इस दर्शन के संकेतों की ओर हम ऊपर इंगित कर चुके हैं। भारतवर्ष में दाराशिकोह ने ईश्वर को अद्वैतवादी माना है।[४] स्वयं मलिक मोहम्मद जायसी ने अपने सूफी सिद्धान्तों की पुस्तक अखरावट में

रावन हरन करयो सीता को
तो सुनि करुनामय नींद बिसारी
सूरस्याम सुनि उठे चाप को लछमन देहु जननि भ्रम भारी
सूरसुधा (१६६५) पृ० ८३
इससे प्रमाणित होता है कि सूर के लिए राम और कृष्ण एक ही थे।

---

१. रामकुमार वर्मा : कबीर का रहस्यवाद

२. नारदभक्ति सूत्र

३. यच्चदुःखं यशोदायां नन्दादीनां च गोकुले
गोपिकानां च यद्दुःखं तद्दुःखं स्यात् मम क्वचित्
षोडश ग्रंथ पृष्ठ २

४. दाराशिकोहः हक्नामा श्रीशचन्द्र वसु द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित, प्रकाशक पाणिनि आफिस, इलाहाबाद (१९१२)

उसे अद्वैतवादी स्वरूप दिया है।[1] किन्तु अद्वैतवाद इस्लाम के विशेष पक्ष में नहीं पड़ता। इसी कारण प्रायः एकेश्वरवाद का भी समर्थन ये सूफी करते हैं। इसकी विवेचना हमें जायसीकृत अखरावट में मिलती है।[2] योग प्राणायाम आदि इस समय भारतीय सूफियों में प्रचलित थे। शेख बुरहान तो एक सुप्रसिद्ध योगी थे। दाराशिकोह ने अपने रिसाला हक़नामा में प्राणायाम आदि के क्रियाएं दी हैं।[3] धार्मिक सहिष्णुता एवं सामंजस्यवाद इस समय के सूफियों में था। सच तो यह है कि कोई भी कट्टर व्यक्ति अच्छा प्रचारक नहीं बन सकता। सहिष्णुता एवं सामंजस्यवाद की भावना एक प्रचारक के अच्छे गुणों में गिनी जाती है। निजामुद्दीन औलिया जो कि एक सुप्रसिद्ध प्रचारक एवं सूफी था, इसी भाव से भरा था। एक बार उसने एक हिन्दू को मूर्ति-पूजा करते देखकर कहा था :

हर क़ौम रास्त राहे, दीने व क़िबला गाहे[4]

हर क़ौम का अपना रास्ता, अपना धर्म, अपना मन्दिर होता है। जायसी ने अपने अखरावट में लिखा है :

विधिना के मारग हैं तेते
सरग नखत तन रोवां जेते[5]

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृ० ३४३-६

२. वही

३. दाराशिकोह : हक़नामा (१९१२) पृष्ठ १२—२८

४. हिन्दुस्तानी, भाग १, पृष्ठ १०५ प्रो० हबीब द्वारा उद्धृत.

५. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ३६२

संभवतः इसी भावना का प्रचार पहले से सूफी दरवेश जनता के बीच करते होंगे। इससे म्लेच्छ धर्म को नीची दृष्टि से देखने वाले हिन्दू हृदय से कुछ सहिष्णु तो हो ही जाते होंगे। उसके पश्चात् ये सूफी इस्लाम धर्म को बड़ा बताकर उसका प्रचार करते होंगे। अखरावट में जायसी ने ऐसा ही किया है।[१] डिक्शनरी ऑफ् इस्लाम में सूफियों की अनेक विशेषताओं में एक यह भी विशेषता बताई गई है।[२] ये सूफी कुरान को पुरान कहने में तनिक भी संकोच नहीं करते थे।[३] ये भारतीय विशेषणों को मुसलमानों के लिए प्रयोग करते थे। रहस्यवादी प्रणयूमला भक्ति तो सूफी धर्म की रीढ़ है। परन्तु आश्चर्य यह है कि भारतीय सूफ़ियों में वह धीमे धीमे कम होती जा रही थी।[४]

§२९. इन समानताओं के अतिरिक्त एक और समानता दोनों धर्मों में गुरु की अत्यधिक महत्ता की है। हिन्दू धर्म को मानने वाले सूरदास कहते हैं :

भरोसो दृढ़ इन चरणन केरो,
श्री वल्लभ नख चंद्र छटा बिन सब जग मांझ अंधरो।[५]

तुलसीदास कहते हैं :

बंदौं गुरु पद कंज कृपा सिन्धु नर रूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु वचन रविकर निकर।

१. वही
२. डिक्शनरी ऑफ इस्लाम (१८८५)
३. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ३६२
४. जायसी के अखरावट में वह बहुत कम है
५. चौरासी वैष्णवन की वार्ता बम्बई (१९८५) पृष्ठ २८८-२८९
६. राम चरित मानस मानसांक पृष्ठ २

गोरखनाथ कहते हैं :

निगुरी पृथ्वी परलै जाती
ताते हम उलटी थापना थापी[1]

गुरु के प्रति ममत्व एवं अत्यधिक श्रद्धा सम्मान सूफियों ने भी दिखलाया है। वास्तव में मध्ययुग में यह गुरु पूजा ही प्रधान वस्तु बन रही थी। सम्प्रदाय इसी के आधार पर बन रहे थे। रामानंदी सम्प्रदाय, वल्लभी सम्प्रदाय, कबीर पंथी आदि समस्त सम्प्रदाय गुरु परम्परा पर ही आधारित थे। इनकी गुरु गद्दियाँ भी थीं। सूफी लोग गुरू की महता अत्यधिक मानते थे। एक ओर समानता इन धर्मों में ईश-कृपा तथा अनुग्रह सम्बन्धी थी। दोनों धर्म ईश्वर की कृपा पर विशेष ध्यान रखते थे। तुलसी कहते हैं :

मूक होइ वाचाल पंगु चढ़ै गिरिवर गहन
जासु कृपा सो दयाल द्रवहु कलिमलदहन[2]

तथा

जेहि सुमिरत सिधि होइ गणनायक करिवर वदन
करहु अनुग्रह सोइ बुद्धि रा.श शुभ गुण सदन[3]

सूर का पुष्टिमार्ग तो सारा का सारा अनुग्रह पर ही विश्वास रखता था।[4] सूफी सम्प्रदाय इसी अनुग्रह एवं कृपा का अवलम्ब

१. गोरखबानी (१९९९) पृष्ठ ५०
२. रामचरित मानस मानसांक पृष्ठ २
३. वही
४. देखिए: रामरतन भटनागर : सूर साहित्य की भूमिका, जनार्दन मिश्र : सूरदास, रामचन्द्र शुक्ल : सूरदास, दीनदयाल गुप्त : अष्टछाप एवं वल्लभ सम्प्रदाय, ब्रजेश्वर वर्मा : सूरदास, मुंशीराम शर्मा : सूर सौरभ

लेता था। दाराशिकोह अपने हकनामे में लिखता है :

वास्तव में अपने गुरु एवं ईश्वर को पाना उसी की कृपा पर अवलम्बित है, मनुष्य के प्रयत्न पर नहीं।[1]

इस प्रकार इस समय के सूफी धर्म तथा हिन्दू धर्म में उपर्युक्त बातें समान रूप से पाई जाती हैं। इस्लाम प्रचारक किस प्रकार इस्लाम का प्रचार करते थे, यह हमें आज ज्ञात नहीं है। परन्तु अनुमान से इतना तो कहा जा सकता है कि उपर्युक्त समानताएँ साधारण जनता में फैलाकर फिर इस्लाम को बड़ा बताते होंगे। अन्यथा प्रचार कार्य असंभव था। हिन्दू दर्शन की दृढ़ नींव पर हिन्दू धर्म निर्मित था। साधारण प्रचलित दोषों को दिखाकर निम्न अशिक्षित वर्ग में भले ही इस्लाम का प्रचार कर लिया जाता, उच्च शिक्षित वर्ग में वह असंभव था। हिन्दू समाज में एक सुधार आन्दोलन ही अवश्य संभव था और वह कबीर ने संत सुधार के रूप में चलाया।[2]

§३०. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य पर सूफी प्रभाव इन्हीं उपर्युक्त समानताओं तक ही प्रमुखतया सीमित है।

§३१. ये कवि भी ईश्वर को कहीं कहीं पर अद्वैतवादी बतलाते। जायसी कहते हैं :

१. दाराशिकोह: हक़नामा पाणिनि आफिस इलाहाबाद (१९२०) पृष्ठ २

२. इस विषय पर डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल कृत दि निरगुन स्कूल ऑफ हिन्दी पोइट्री, डा० श्यामसुन्दर दास कृत हिन्दी साहित्य और पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी कृत कबीर दृष्टव्य है।

ना ओहि ठाउं न ओहि बिन ठाऊँ
रूप रेख बिनु निरमल नाऊं [१]

*　　　*　　　*

ना वह मिला न बिहरा ऐस रहा भरपूरि
दीठवंत कहं नीयर अंध मुरख कहं दूर [२]

*　　　*　　　*

काया मरम जान पै रोगी भोगी रहे निचिंत
सब कर मरम गोसाईं जो घट घट रहै नित [३]

उसमान लिखते हैं :

सो करता सब मांह समाना
परगट गुपुत जाइ नहिं जाना [४]

*　　　*　　　*

सब वहि भीतर वह सब मांहीं ।
सबै आपु दूसर कोउ नाहीं ॥
जो सब आपु रहा भरपूरी ।
तासों कहा नेर और दूरी ॥
दूसर जगत नाम जिन पावा ।
जैसे लहरी उदधि कहावा ॥[५]

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ४
२. वही
३. वही
४. चित्रावली (१९१२) पृष्ठ १
५. वही

परगट गुपुत विधाता सोई।
दूसर और जगत नहिं कोई॥[1]

नल दमन में सूरदास के दमन ऋषीश्वर ने जो उपदेश दिए हैं वे सारे अद्वैतवादी ब्रह्म की रूपरेखा के ही हैं। नूर मोहम्मद कहते हैं :

आपुहि भोगी रूप धरि जनमो मानत भोग
आपुहि जोगी भेस होइ निसिदिन साधत जोग[2]

*　　*　　*

सिरजनहार छिपाना रहा
आपुहिं फेर चिन्हावै चहा[3]

कासिम शाह कहते हैं :

ऐसे अलख जो अहै अकेला।
परघट गुप्त सभी रंग खेला॥
नहीं अस ठांव जहां वह नाहीं।
पूर रहा चौदा गढ़ माहीं॥[4]

*　　*　　*

वह करता हरता सब मांहीं।
वह दिन धूप वही निसि छाहीं॥[5]

१. वही पृष्ठ २
२. इंद्रावती (१९०६) पृष्ठ ६
३. वही
४. हंस जवाहिर (१८९८) पृष्ठ ४
५. वही

§३२. एकेश्वरवाद भी इन आख्यानों में मिलता है। जायसी लिखते हैं :

सुमिरौं आदि एक करतारू[१]

*　　　*　　　*

कीन्ह सबै अस जाकर दूसर छाज न काहि
पहिलै ताकर नांव लै कथा करों औगाहि[२]

*　　　*　　　*

आदि एक बरनों सोइ राजा[३]

उसमान लिखते हैं :

एक जोत परगट सब ठाऊँ[४]

नूरमुहम्मद कहते हैं :

अहइ अकेल सो सिरजनहार[५]

दुखहरनदास लिखते हैं :

अस गोसाइ बड़ सिरजन हारा
तस न कोउ दूसर बरिआरा[६]

कासिम शाह भी लिखते हैं:

सिरजा गगन अनूप जिन औ विशेष मन टेक

१. जायसी ग्रंथावली (१९२५) पृष्ठ १
२. वही
३. वही पृष्ठ ३
४. चित्रावली (१९१२) पृष्ठ ४
५. इंद्रावती (१९०६) पृष्ठ १
६. पुहुपावती पृष्ठ १

तीन लोक जिन सिरज्यौ अलख नाम वह एक[1]

*    *    *

जो चाहे वह सो करै है वह आप अकेल
गगन भरे बहुतर रहै अहै सो अचरज खेल

इसके अतिरिक्त अन्य जो विशेषण हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में ईश्वर के लिए प्रयुक्त हुए हैं वे भी सूफी धर्म के प्रभावस्वरुप गिने जा सकते हैं। सूफी ईश्वर को संसार का बनाने वाला मानते थे[3] और हमारे कवि भी ईश्वर को संसार का बनाने वाला मानते हैं।[4] सूफी ईश्वर को निर्गुण, निराकार एवं सर्वव्यापक मानते है[5] हमारे कवि भी उसी को स्वीकार करते हैं।[6]

इन ईश्वर विषयक समानताओं के अतिरिक्त सूफी तथा प्रेमाख्यानक काव्यकारों ने संसार की नश्वरता तथा ईश्वर की अनश्वरता पर जोर दिया है। जामी ने लिखा है :

१. हंसजवाहिर ( १८९८ ) पृ० १
२. वही पृ० ४
३. डिक्शनरी ऑफ इस्लाम ( १८८५ ) पृ० ६०९
४. जायसी ग्रंथावली ( १९३४ ) पृ० १
   चित्रावली ( १९१२ ) पृ० १
   इंद्रावती ( १९०६ ) पृ० १६७
   हंस जवाहिर ( १८९८ ) पृ० १
   नलदमन पृ० २
   पुहुपावती पृ० १
५. डिक्शनरी ऑफ इस्लाम ( १८८५ )
६. जायसी ग्रंथावली ( १९३५ ) पृ० ३

मित्र, धन और संतान जो कुछ वह सब नाशवान है।[१]

* * *

अब मैं उस अविनाशी स्वरूप के जलवे को देखने के लिए व्याकुल हो रहा हूँ।[२]

शब्सतरी ने लिखा है :

ईश्वर के अतिरिक्त जितने नाम रूप हैं सब नष्ट होनेवाले हैं।[३]

* * *

यह बात सभी लोगों ने स्वीकार की है कि सृष्टि क्षणभंगुर है।[४]

* * *

कुल का प्रत्येक भाग जो कि नाशवान है, क्षण भर में सारे संसार से मिट जाता है।[५]

संसार ही कुल है और पलक झपकते ही नाश को प्राप्त हो जाता है और दोनों जमानों में इसका लेश मात्र भी शेष नहीं रहता।[६]

चित्रावली (१९१२) पृ० १
इंद्रावती (१९०६) पृ० १५९
हंसजवाहिर (१८९८) पृ० ४
पुहुपावती पृ० १
नलदमन पृ० १

१. जामी-लवाहे, ह्विन फील्ड एवं मिर्जा मुहम्मद कजवीनी कृत अनुवाद (१९२८) पृ० ६
२. वही पृ० ६ हिन्दी अनुवाद के लिए देखिए ईरान के सूफी कवि
३. ईरान के सूफी कवि (१९९६) पृ० २८१
४. वही पृष्ठ २७३
५. वही
६. वही

इसी प्रकार हमारे कवियों ने भी लिखा है। जायसी लिखते हैं :

सबै नास्ति वह अहथिर ऐस साज जेहि केर [1]

*   *   *

हुत पहले औ अब है सोई
पुनि सो रहै रहे नहिं कोई [2]

*   *   *

जो रे उवा सो अथवा रहा न कोई संसार [3]

§३३. योग अपने विशृंखलित रूप में इन आख्यान काव्यों में पर्याप्त मिलता है। रत्नसेन पद्मावती के प्रेम में विह्वल एवं पागल होकर योगी बनता है।

तजा राज, राजा भा जोगी।
औ किंगरी कर गहेउ वियोगी॥
तन विसंभर, मन बाउर लटा।
अरुझा प्रेम, परी सिर जटा॥
चंद्र बदन औ चंदन देहा।
भसम चढ़ाइ कीन्ह तन खेहा॥
मेखल, सिंघी, चक्र, धंधारी।
जोगबाट, रुदराछ, अधारी॥
कंथा पहिर दंड कर गहा।
सिद्ध होइ कहं गोरख कहा॥

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृ० ३

२. वही

वही पृ० ३४०

मुद्रा स्रवन कंठ जपमाला।
कर उदपान, कांध बघछाला॥
पांवरि पांव दीन्ह सिर छाता।
खप्पर लीन्ह भेस करि राता॥

चला भुगति मांगे कहं साधि कया तप जोग।
सिद्ध होइ पदमावति जैहि कर हिए वियोग॥[1]

उसमान में भी यह योग हमें मिलता है। सुजान चित्रावली को खोजने के लिए योगी का वेष धारण कर जाता है। इसके लिए उसका मार्ग प्रदर्शक उसे आज्ञा देता है।

""कुंवर अब आप सम्हारहु।
राज काज कर साज उतारहु॥
काढ़हु दगल सुहावन राता।
पहिरहु चिरकुट कंथा गाता॥
मनि कुंडल मकराकृत डारहु।
फटिक मुंदरा स्रवन संवारहु॥
धोवहु चंदन भसम चढ़ावहु।
किंगरी गहहु वियोग बजावहु॥
तजहु सेल कर लेहु धंधारी।
और सुमिरनी चक्र अधारी॥
सिंगी पूरहु जटा बरावहु।
खप्पर लेहु भीख जेहि पावहु॥
कांधे लेहु बाहि मृगछाला।

१. वही पृ० ६०

गींव पहिरहु रुद्राष क माला ।।
ऊरहु कान जनि एकहु कहै कोउ जौ लक्ख ।
पहिरि लेहु पग पांवरी बोलहु सिरी गोरक्ख ।।
कीन्ह कुंअर जो जोगी कहा ।
देखत लोग अचंभौ रहा ।।[1]

मंझन कृत मधुमालती में भी मनोहर मधुमालती को तीसरी वार योगी के वेष में ही मिलता है। इन्द्रावती में राजकुंवर इन्द्रावती के लिए योगी का वेष धारण कर जाता है :

छाडेउ कुंअर राजसुख भोगू ।
साधेउ आगमपुर को जोगू ।।
भा जोगी इंद्रावति लागी ।
लीन्हा सारंगी अनुरागी ।।
राज दुकुल सब तुरत उतारा ।
जोग कांथरा कांधे डारा ।।
राखा जटा चढ़ाएउ खेहा ।
कीन्ह सनेह सनेहिय देहा ।।
जावत जोगी रहा समाजा ।
तावत कीन्हा प्रेममय राजा ।।[2]

हंस जवाहिर में भी हंस पंछी के साथ योगी के रूप में जाता है :

छांड देश भा जोगी भेसू ।
बाढ़ें केश बिरह उपदेसू ।।

१. चित्रावली (१९१२) पृ० ८५
२. इंद्रावती (१९०६) पृ० २२

सुमिरन हाथ लीन्ह कर माला ।
कंथा पहिर लीन्ह मृग छाला ॥

मुद्रा लीन मंत्र हिय पूरी ।
खप्पर हाथ मेल सिर धूरी ॥[१]

ब्रह्मांड को घट में दिखाने की सूफी प्रवृत्ति भी हमें इन कवियों में मिलती है। रत्नसेन को शिव बतलाते हैं।

गढ़ तस बांक जैसि तोरि काया ।
पुरुष देखि ओही की छाया ॥
पाइय नाहिं जूझि हठ कीन्हे ।
जेइ पावा तेइ आपहि चीन्हे ॥
नौ पौरी तेहि गढ़ मझियारा ।
औ तहं फिरहिं पांच कोटवारा ॥
दसवं दुवार गुपुत एक ताका ।
अगम चढ़ाव, बाट सुठि बांका ॥
भेदै जाइ सोइ वह घाटी ।
जो लहि भेद चढ़ै होइ चांटी ॥
गढ़तर कुंड, सुरंग तेहि माहां ।
तहं वह पंथ कहौ तोहि पाहां ॥[२]

शिव हठयोग का उपदेश भी देते हैं—

दसवँ दुआर ताल के लेखा ।
उलटि दिस्टि जो लाव सो देखा ॥

१. हंसजवाहिर (१८६८) पृ० १६९

२. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृ० १०५

जाइ सो तहां सांस मन बंधी।
जस धंसि लीन्ह कान्ह कालिन्दी॥

तू मन नाथु मारि के सांसा।
जो पै मरहि अबहिं करु नासा॥[१]

इतना ही नहीं मलिक मोहम्मद जायसी ने तो अन्त में अत्यन्त स्पष्ट कह दिया है:—

मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूझा।
कहा कि हम्ह किछु और न सूझा॥

चौदह भुवन जो तर उपराहीं।
ये सब मानुष के घट माहीं॥[२]

और पद्मावती की सारी कहानी को मानव शरीर में ही घटित करने का प्रयत्न किया है :

तन चितउर मन राजा कीन्हा।
हिय सिंघल बुधि पदमिनि चीन्हा॥

गुरु सुआ जो पंथ दिखावा।
बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा॥

नागमती यह दुनियां धंधा।
बांचा सोई न एहि चित बंधा॥

राघव दूत सोइ सैतानू।
माया अलाउदीं सुलतानू॥

१. वही

२. वही पृ० ३४१

प्रेम कथा एहि भांति विचारहु ।
बूझि लेहु जौ बूझै पारहु ॥[१]

उसमान एक स्थल पर एक पग और आगे चले गए हैं। वे कहते हैं कि योग की बाहरी बातों को त्याग दो :

घट ही मांहि भेष जो लेखै ।
हिय के लोचन मारग देखै ॥

काया कंथा ध्यान अधारी ।
सिंगी सबद जगत धंधारी ॥

लोचन चक्र सुमिरिनी सांसा ।
माया जारि भस्म के नासा ॥

हिय जोगोट मनसा पांवरी ।
प्रेम बार लै फिरि भांवरी ॥[२]

§३४. इनकी धार्मिक सहिष्णुता पर आगे विचार किया जाएगा।

§३५. इनकी रहस्यवादी प्रणयमूला भक्ति पर भी आगे विचार किया जाएगा ।

§३६. गुरु परम्परा एवं साम्प्रदायिकता पर ये कवि भी ज़ोर देते थे। गुरु की महत्ता बतलाते हुए जायसी लिखते हैं :

बिना गुरू को निरगुन पावा[३]

* * *

१. वही

२. चित्रावली (१९१२) पृ० ८२

३. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृ० ३४१

मुहम्मद तेइ निचिंत पथ जेहि संग मुरसिद पीर
जेहि के नाव औ खेवक बेगि लाग सो तीर[1]

* * *

वै सुगुरु, हौं चेला, निति बिनवौं भा चेर
उन्ह हुत देखे पायउं दरस गोसाईं केर[2]

जायसी आदि समस्त कवियों ने अपनी अपनी गुरु परम्पराएँ दी हैं। जायसी लिखते हैं :

सैयद असरफ पीर[3] पियारा।
जेहि मोंहि पंथ दीन्ह उजियारा॥
लेसा हिए प्रेम कर दीया।
उठी जोति भा निरमल हीया॥
मारग हुत अंधियार जो सूझा।

* * *

ओहि घर रतन एक निरमरा।
हाजी सेख[4] सबै गुन भरा॥
तेहि घर दुइ दीपक उजियारे।
पंथ देह कहं दैउ संवारे॥

१. वही पृ० ६

२. वही

३. सैयद अशरफ जहांगीर के लिए देखिये
यू० पी० डिस्ट्रिक्ट गजटियर राय बरेली
र्यू : कैटेलोग ओफ परशियन मैन्युस्क्रिप्ट्स भाग १ पृ० ४११
सरवर : खजनितुल असफिया पृ० ३७१-७

४. प्रस्तुत लेखक इतिहास के पृष्ठों में इन्हें पाने में असमर्थ रहा है।

सेख मुहम्मद[१] पून्यो करा ।
सेख कमाल[२] जगत निरमरा ।।[३]

एक दूसरी गुरुपरम्परा भी जायसी ने दी है :

गुरु मोहिदी[४] खेवक मैं सेवा ।
चलै उताइल जैहि कर खेवा ।।

अगुवा भयउ सेख बुरहानू ।[५]
पंथ लाइ मोहि दीन्ह गियानू ।।

अलहदाद[६] भल तेहि कर गुरू ।
दीन दुनी रोसन सुरखरू ।।

सैयद मोहमद[७] के वे चेला ।
सिद्ध पुरुष संगम जेहि खेला ।।

दानियाल[८] गुरुपंथ लखाए ।

१. प्रस्तुत लेखक को यह व्यक्तित्व इतिहास के ग्रंथों में नहीं मिला ।
२. प्रस्तुत लेखक इसे खोज पाने में असमर्थ रहा ।
३. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृ० ८
४. सरवर : खजीनतुल असफिया (१२८० हि०) पृ० ४६७
५. अखबारुल अखयार लखनऊ
अलबदाउनी : मुन्तखबुत तवारीख भाग ३ पृ० १०
६. अखबारल अखयार लखनऊ
अलबदाउनी : मुन्तखबुत तवारीख, भाग ३, पृ० १०
सरवर : खजीनतुल असफिया १२८० हि० पृ० ४१२
७. वही पृ० ४५९
८. वही पृ० ४६७

हजरत ख्वाज खिजिर[1] तेहि पाए ॥[2]

इसी प्रकार उसमान भी अपने गुरु की प्रशंसा करते हैं :

शाह न [3] पीर सिध दाता।
दिष्ट तेज जिमि रवि परभाता ॥

नारनौलि[4] भीतर अस्थाना।
उदे अस्त लइ सब कोइ जाना ॥[5]

एक दूसरे गुरु की भी ये प्रशंसा करते हैं :

बाबा हाजी[6] पीर अपारा।
सिद्ध देत जेहि लाग न बारा ॥

जे मुख देखा ते सुख पावा।
परसि पाय तन ताप गंवावा ॥[7]

१. यह एक देवता माने जाते हैं जो कि भूलों को राह दिखलाते हैं। संभवतः यह एक उपाधि भी बन गई थी। एक ख्वाजाखिज्र का वर्णन अख्वार-अल अख्वार पृ० १९२ पर है।

२. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृ० ६

३. शाहनिजाम दो मिलते हैं। एक तो अम्बेठी के थे और दूसरे नारनोल के। नारनौल वाले निजाम के गुरु शेख खारू थे। इनकी मृत्यु ९९७ हि० में हुई।

इनके वर्णन के लिए देखिये : अलबदाउनी : मुन्तखुत तवारीख भाग ३.

४. यह आगरे के निकट है।

५. चित्रावली (१९१२) पृ० ९

६. ये स्पष्ट नहीं होते। मध्ययुग में बहुत से हाजी हुए हैं।

७. चित्रावली (१९१२) पृ० १०

इसी प्रकार कासिम शाह[1] आदि कवियों ने भी गुरु की प्रशंसा की है।

§३७. इन समानताओं एवं प्रभावों के अतिरिक्त हिन्दी सूफी प्रेमाख्यानक काव्य में भी ईश्वर की कृपा और अनुग्रह पर आस्था प्रगट की गई है। जायसी कहते हैं कि वह जो कुछ चाहता है वही करता है :

जो चाहा सो कीन्हेसि, करै जो चाहे कीन्ह
बरजनहार न कोई सबै चाहि जिउ दीन्ह[2]

उसमान भी उसीसे प्रार्थना करते हैं :

सांचा बहुरि तोर कल दोरा।
पट उघारि नट, जगत निहोरा॥
मुख दरसाव परम उजियारा।
जाहिं बिलाइ तिमिर औतारा॥[3]

* * *

पट उघारि संसार जिय संसय रहा समाय।
जब लागे सूझ न लोचनहिं अंधा नहीं पतियाय॥[4]

नूरमुहम्मद भी उसीकी दया के भिखारी हैं :

कै किरपा मोहि पार उतारो।
दया दृष्टि मोहि ऊपर डारो॥

१. हंसजवाहिर: (१८९८) पृ० ७
२. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृ० ४
३. चित्रावली (१९१२) पृ० ४
४. वही पृ० ४

है हम कहँ आलम्म तुम्हारी।
तोहि दया सो मुकति हमारी॥[१]

इसी प्रकार अन्य कवि[२] भी इसी तरह कृपा एवं अनुग्रह के आकांक्षी हैं।

§३८. हिन्दी विद्वानों ने हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य की धारा के विषय में दो विचार प्रायः दिए हैं :

१. ये मुसलमान कवि हिन्दू मुसलिम ऐक्य चाहते थे।[३]

२. ये कवि सूफी धर्म का प्रचार चाहते थे और इन्होंने लौकिक आख्यानों के माध्यम से अलौकिक सत्ता एवं रहस्यवादी प्रेम की व्यंजना इन आख्यानों में की है।[४]

विद्वानों ने ये दोनों विचार सूफी धर्म के प्रभाव स्वरूप माने हैं। इस कारण इन पर विचार इसी परिच्छेद में किया जाएगा।

§३९. पं० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में 'सौ वर्ष पहले कबीरदास हिन्दू और मुसलमान दोनों के कट्टरपन को फटकार चुके थे''''परन्तु कबीर की अटपटी बानी से भी दोनों के दिल साफ न हुए। मनुष्य

१. इंद्रावती (१९०६) पृ० २
२. हंसवाहिर (१८९८) पृ० ६
३. डा० रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (१९३८) पृ० ३०४-५
रामचन्द्र शुक्ल : जायसी ग्रंन्थावली ( १९३५ ) भूमिका पृ० ३
४. रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास ( १९३८ ) पृ० ३३३

मनुष्य के बीच जो रागात्मक सम्बन्ध है वह उसके द्वारा व्यक्त न हुआ। अपने नित्य के व्यवहार में जिस हृदय साम्य का अनुभव मनुष्य कभी कभी किया करता है उसकी अभिव्यंजना उससे न हुई। जिस प्रकार दूसरी जाति या मतवाले के हृदय है उसी प्रकार हमारे भी है....इस तथ्य का प्रत्यक्षीकरण कुतबन, जायसी आदि प्रेम कहानी के कवियों द्वारा हुआ।...कबीर ने केवल भिन्न होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी। वह जायसी द्वारा पूरी हुई'।[1]

§४०. इसके पक्ष में ये विद्वान् तर्क देते हैं कि—

'इन्होंने मुसलमान होकर हिन्दुओं की कहानियां हिन्दुओं की ही बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया। जायसी के लिए जैसा तीर्थ-व्रत था वैसा ही नमाज़ और रोज़ा। वे प्रत्येक धर्म के लिए सहिष्णु थे। इन कवियों ने कभी किसी मत के खंडन करने की चेष्टा नहीं की।[2]

§४१. प्रस्तुत लेखक के दृष्टिकोण से परिस्थिति अपना एक दूसरा इन प्रेमाख्यानों के द्वारा इस्लाम प्रचार की पृष्ठभूमि तैयार करने का पहलू भी रखती है। हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में हिन्दू मुस्लिम ऐक्य ढूंढने वाले विद्वानों के तर्क निम्न लिखित हो सकते हैं:—

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) भूमिका पृ० ३

२. रामकुमार वर्मा: हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (१९३८), पृ० ३१२

१. इन्होंने हिन्दू कहानी बड़ी सहानुभूति के साथ कही है।
२. इन्होंने हिन्दू धर्म की आलोचना नहीं की।
३. जिन जिन घरों में इनकी पोथी मिली है, वे परिवार हिन्दू मुस्लिम द्वेष से परे पाए गए हैं।

§४२. इन तीनों तर्कों का निराकरण हम इस प्रकार कर सकते हैं :

१. कहानी को सहानुभूतिपूर्वक कहने मात्र से यह नहीं कहा जा सकता कि इन्हें हिन्दू धर्म से सहानुभूति थी। संभव है कि यह सहानुभूति किसी अन्य लक्ष्य को लेकर दिखलाई गई हो। प्रायः हम किसी व्यक्ति से जब कोई अपना काम बनाने जाते हैं तो उसकी हरएक चीज से सहानुभूति दिखलाते हैं और ऐसी सहानुभूति जो कि सच्ची ही मालूम पड़े।
२. यह तर्क गलत है। इन्होंने मूर्तिपूजा आदि का खंडन तीव्र शब्दों में किया है।
३. यह तर्क निरर्थक है।

§४३. इस प्रकार इन तीनों तर्कों का निराकरण किया जा सकता है। सच तो यह है कि कवि उन सूफियों के चेले थे जो इस्लाम के प्रचारक थे। मध्ययुग में ये सूफी इस्लाम का प्रचार कितनी जोर से कर रहे थे इसका दिग्दर्शन ऊपर कराया जा चुका है। इस प्रकार की संस्था के कर्णधारों को अति आदर की दृष्टि से देखनेवाले व्यक्तियों की नियत पर प्रस्तुत लेखक के मन में संदेह उठता है। दूसरी ओर इस बात के निश्चित प्रमाण हैं कि इन कवियों की दृढ़ आस्था इस्लाम पर थी। जायसी जिन्होंने कहानी को अत्यधिक सहानुभूति से कहा है, कहते हैं :

विधिनर के मारग हैं तेते, सरग नखत तन रोवां जेते

*　　　*　　　*

तेहि महं पंथ कहौं भल गाई, जेहि दूनौ जग छाज बड़ाई
सो बड़ पंथ मुहम्मद केरा, है सुन्दर कबिलास बसेरा
लिखि पुरान विधि पठवां सांचा, भा परवान दुहूँ जग बांचा[१]

अर्थात् यद्यपि संसार में धर्मों की संख्या तो बहुत बड़ी है परन्तु इस्लाम ही भला धर्म है। कुरान दोनों जगतों में प्रमाण ग्रन्थ है।

जायसी इतना कहकर संतुष्ट नहीं हो जाते। वे और आगे बढ़कर कहते हैं:

वह मारग जो पावै सो पहुँचे भव पार
जो भूला होइ अनतहि तेहि लूटा बटपार[२]

अर्थात् जो इस्लाम का अवलंबन लेता है वह तो संसार के पार उतर जाता है और जो दूसरे धर्म को मानता है वह भूलता है और माया द्वारा लूटा जाता है।

जायसी का यह कथन प्रस्तुत लेखक के संदेह को और अधिक दृढ़ करता है। सामंजस्य चाहने वाले या सहानुभूति रखनेवाले व्यक्ति के मुख से ये शब्द नहीं निकल सकते।

इसके आगे जायसी नमाज के विषय में कहते हैं:

ना-नमाज़ है दीनक थूनी, पढ़ै नमाज सोइ बड़गूनी।[3]

अर्थात् जो नमाज़ पढ़ता है वही बड़गुनी है।

१. जायसी ग्रन्थावली (१९३५) पृ० ३६२
२. वही
३. वही पृ० ३६३

कासिम शाह भी अपने काव्य के अन्त में कहते हैं :

कासिम खोजो वोहि को नाम नित्त जग पांच[१]

इसी प्रकार इन कवियों ने मुहम्मद पर भी बड़ी ही आस्था दिखलाई है। नूर मुहम्मद अपनी नायिका इन्द्रावती के मुख से कहलाते हैं :

निसि दिन सुमिर मुहम्मद नाऊं, जासों मिले सरग मँह ठाऊं[२]

* * *

साहस देत परान हमारा, अहै रसूल निबाहन हारा[३]

जायसी कहते हैं कि मुहम्मद ने ही :

दीपक लेसि जगत कहं दीन्हा[४]

इससे भा निरमल जग मारग चीन्हा[५]

और जौ न होत अस पुरुष उजियारा,

सूझि न परत पंथ अंधियारा।[६]

मुहम्मद साहब के नाम स्मरण के बिना तो विधि जाप भी व्यर्थ है :

१. हंसजवाहिर (१८६८) पृ० ३२८

२. इंद्रावती (१९०६) पृ० ९३

३. वही पृ० ९५

४. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृ० ५

५. वही

६. वही

जो भर जनम करे विधि जापा
बिनु वोहि नाम होहि सब लापा[१]

कुरान की महिमा भी अत्यधिक है:

जो पुरान विधि पठवा सोई पढ़त गरंथ
औ जो भूले आवत सोई लागे पंथ[२]

मूर्तिपूजा का खंडन करते हुए जायसी कहते हैं:

पाहन चढ़ि जो चहै भा पारा। सौ ऐसे बूड़े मझधारा।
पाहन सेवा कहां पसीजा। जनम न ओद होइ जो भीजा।
बाउर सोइ जो पाहन पूजा। सकत को भार लेइ सिर दूजा॥[3]

नूरमुहम्मद कहते हैं:

का पाहन के पूजे लहई। पूजौ ताहि जो करता अहई।
पाहन सुनै न तेरी बातें। सुमिर जगत करता दिन रातें॥[४]

इसे पढ़ते ही कुरान की याद आती है। मूर्तिपूजा के विरोध में कुरान कहती है:

उसे छोड़कर अन्य को मत पूजो।
क्यों उसकी उपासना करते हो जो न सुनता है, न देखता है।[५]

इन कवियों ने मुहम्मद साहब, कुरान आदि पर बड़ी श्रद्धा दिखलाई है परंतु जब राम कृष्ण की याद की है तो उन्हें ये लैला

१. चित्रावली (१९१२) पृष्ठ ५
२. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ६
३. वही पृष्ठ ९९
४. इंद्रावती पृष्ठ २७१
५. राहुलः कुरानसार (१९३९) पृष्ठ १२७

मजनूं के समकक्ष रखते हैं। हिन्दू धर्म से सहानुभूति रखनेवाला व्यक्ति हिन्दुओं की अगाध श्रद्धा के पात्र राम कृष्ण को इस स्तर पर नहीं ले जाता।

ये कवि कुरान को पुरान करते है। उसका एक अर्थ यह भी हो सकता है कि हिन्दू लोग म्लेच्छों की पुस्तक कुरान को बड़ी ही नीची नजर से देखते होंगे। परंतु ये कुरान को बार बार पुरान कहकर हिन्दुओं के हृदय में कुरान के लिए वही श्रद्धा उत्पन्न करवाना चाहते थे जो कि पुरान के लिए थी।

इन मुसलमान कवियों के काव्य पढ़ने पर दिखलाई पड़ता है कि इस्लाम की बातें बड़ी सावधानी से उनमें मिलाई गई हैं। इसकी चर्चा आगे के परिच्छेदों में की जाएगी।

इन कहानियों के माध्यम से इन कवियों ने लौकिक प्रेम संबंधी तथा अन्य उपदेश दिए है। लौकिक प्रेम तथा अन्य उपदेश देने के लिए इन्होंने इन कहानियों का सहारा लिया है। ये कवि थे। इसी कारण इन्होंने कहानियां पूर्ण सहानुभूति के साथ लिखी हैं। दूसरी बात यह है कि यदि ये कवि कहानी कहने में किसी प्रकार की ढील या विद्वेष दिखलाते तो इनका भेद शीघ्र खुल जाता। एक सफल प्रचारक के लिए यह आवश्यक है कि वह विरोधियों के दल में ऐसा मिल जाए कि उनकी सहानुभूति जीत ले और पहिचाना न जाए। जो सूफी साधक इस्लाम का प्रचार भारत में कर रहे थे, वे पढ़े गुने होते थे। वे यह बात भली भांति जानते थे कि तर्कों एवं वाद विवाद के आधार पर इस्लाम हिन्दू धर्म के सामने नहीं टिक सकता। इस कारण उन्होंने संभवतः सामंजस्य एवं सहिष्णुता का जामा पहिन लिया था। एक इस्लाम प्रचारक सूफी दरवेश निजामुद्दीन औलिया की धर्म सहिष्णुता की चर्चा हम ऊपर कर आए हैं।

इस प्रकार मुसलमानों के द्वारा लिखित हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य की पद्मावती, चित्रावली, हंसजवाहिर एवं इंद्रावती को एक नए दृष्टिकोण से देखा जा सकता है। प्रश्न यह है कि इन पर मुस्लिम प्रचार का आरोप करनेवाला दृष्टिकोण क्या सही है?

इस आरोप के पक्ष में इतना कहा जा सकता है कि ये कवि इस्लाम का प्रचार करनेवाली संस्था से संबंधित अवश्य थे। इस कारण इनकी नियत पर उसका प्रभाव संभव है। उस संस्था के कर्णधारों पर इन कवियों की अटूट श्रद्धा थी जो कि प्रत्येक कवि ने अपने अपने काव्य के प्रारंभ में दिखाई है।

प्रस्तुत लेखक इस मौलिक दृष्टिकोण का उद्घाटन करते हुए भी इसके पक्ष में अति प्रबल प्रमाण देने में असमर्थ है और इस कारण इसे पूर्णरूप से सही नहीं कह सकता।

§४४. परंतु उसे यह कहने में कोई भी हिचकिचाहट नहीं है कि इन मुसलमान कवियों की अत्यंत दृढ़ आस्था इस्लाम पर थी। हिन्दू धर्म को ये न तो इस्लाम के समकक्ष रखने को तैयार थे और न उसे कोई महत्वपूर्ण धर्म ही मानते थे। जैसे हिन्दुस्तानी भाषा के कुछ उर्दूवाले समर्थक यह सोचते हैं कि हिन्दुस्तानी के प्रचार से उर्दू का कुछ न कुछ आंशिक प्रचार जनता में हो ही जाएगा उसी प्रकार संभव है ये कवि भी कुछ सोच रहे हों।

§४५. दूसरी समस्या अन्योक्ति की है।

§४६. अन्योक्ति अथवा समासोक्ति के दृष्टिकोण से सारे काव्य दो वर्गों में बँट सकते हैं:

क. वे काव्य जिनमें आध्यात्मिक चिह्न गहरे हैं और पाठक को संदेह रहता है कि कहीं वह कोई अन्योक्ति तो नहीं पढ़ रहा।

ख. वे काव्य जिनमें आध्यात्मिक संकेत हल्के हैं और किसी रूपक की भावना का जिनमें सर्वथा अभाव है।

§४७. पहले वर्ग के काव्य फिर दो भागों में बँटते हैं :

१. वे काव्य जिनको उनके रचयिताओं ने अन्योक्ति कह दिया है।

२. वे काव्य जिनको उनके रचयिताओं ने अन्योक्ति नहीं कहा है।

§४८. पहले भाग में हम जायसी की पद्मावती रख सकते हैं। जायसी ने स्पष्ट कहा है :

चौदह भुवन जो तर उपराहीं।
ते सब मानुस के घट माहीं॥
तन चितउर मन राजा कीन्हा।
हिय सिंहल बुधि पदमिनि चीह्ना॥
गुरु सुआ जेहि पंथ दिखावा।
बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा॥
नागमती यह दुनिया धंधा।
बांचा सोइ न एहि चित बंधा॥
राघव दूत सोइ सैतानू।
माया अलादीन सुलतानू॥
प्रेम कथा एहि भांति विचारहु।
बूझि लेहु जो बूझै पारहु।[1]

इसीसे पाठक के मन में यह भावना और भी दृढ़ हो जाती है कि यह काव्य एक अन्योक्ति है और उसके संकेत निम्न हैं :

| | |
|---|---|
| पद्मावती | बुद्धि |
| रत्नसेन | मन |

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ३४१

| | | |
|---|---|---|
| सिंहल | मन | |
| अलाउद्दीन | माया | |
| नागमती | माया | |
| राघवचेतन | शैतान | (माया) |
| हीरामन | गुरू | |
| चित्तौड़ | तन | |

इस सूची को देखते ही स्पष्ट हो जाता है कि यह सारा आख्यान कोई अन्योक्ति नहीं हो सकता। नागमती जो कि माया की प्रतीक है मन एवं बुद्धि के समन्वय हो जाने पर अपना अधिकार नहीं रख सकती और न रत्नसेन यह कह सकता है कि :

नागमती तू पहिल बिआही
कठिन बिछोह दहै जनु दाही[1]

मन और बुद्धि के समन्वय हो जाने पर शैतान भी शक्तिविहीन हो जाता है। उसका विरोध तो पहले ही होना चाहिए। किंतु राघव-चेतन का कार्य कवि ने काव्य के उत्तरार्द्ध में दिया है। रत्नसेन एवं सिंहल दोनों को ही कवि ने मन माना है। पता नहीं इसमें कौन सा भेद है।

कवि ने राघवचेतन को शैतान, नागमती को दुनिया धंधा और अलाउद्दीन को माया कहा है। इन तीनों का अंतर स्पष्ट नहीं होता।

इन कारणों से स्पष्ट हो जाता है कि पद्मावती कोई निश्चित अन्योक्ति नहीं है।

एक दूसरा संदेह समासोक्ति का है। विद्वानों के एक वर्ग ने इसे समासोक्ति माना भी है। पं० रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं, 'पद्मावत

१. वही पृष्ठ २१७

के सारे वाक्यों के दोहरे अर्थ नहीं हैं। केवल बीच बीच में कहीं कहीं दूसरे अर्थ की व्यंजना होती है। अतः इन स्थलों में वाच्यार्थ से अन्य अर्थ जो साधना पक्ष में व्यंग रखा गया है वह प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से अप्रस्तुत ही कहा जा सकता है और समासोक्ति ही माननी पड़ती है।[1] इन व्यंगार्थमूलक स्थलों को हम दो भागों में बांट सकते हैं :

क. वे घटनाएँ जो अपना दूसरा अर्थ रखती हैं।

ख. पद्मावती एवं रत्नसेन के व्यक्तित्व के वे वर्णन जो अपना दूसरा अर्थ रखते हैं।

प्रथम वर्ग की घटनाओं के उदाहरण स्वरूप हम सिंहलगढ़ वर्णन, लंका के राक्षस की घटना आदि को ले सकते हैं। इन घटनाओं को पढ़ते ही हमें उनके अप्रस्तुत अर्थ की स्पष्ट झांकी मिलने लगती है।

दूसरे वर्ग के विषय में परिस्थिति कुछ दूसरी है। इसमें संदेह नहीं कि कवि ने कहीं कहीं पर उनमें आध्यात्मिकता का आरोप करने का प्रयत्न किया है। कवि पद्मावती की देहयष्टि का वर्णन करते हुए कहता है :

भौंहे स्याम धनुक जनु ताना, जा सहुं हेर मार विष बाना।
हनैं धुनै उन्ह भौंहनि चढ़े, केइ हतियार काल अस गढ़े॥
उहै धनुक किरसुन महं अहा, उहै धनुक राघौ कर गहा।
ओहि धनुक रावन संघारा, ओहि धनुक कंसासुर मारा॥
ओहि धनुक बेधा हुत राहू, मारा ओहि सहस्रा बाहू।
ओहि धनुक मैं तापहं चीन्हा, धानुक आप बेझ जग कीन्हा॥

1. जायसी ग्रन्थावली (१९३५) भूमिका पृष्ठ ७५

उन्ह भौंहनि सरि केउ न जीता, अछरी छपीं, छपीं गौपीता।
भौंह धनुक, धनि धानुक, दूसर सरि न कराइ।
गगन धनुक जो उगै, लाजहि सो छपि जाइ॥[1]

प्रकार कवि पद्मावती के जन्म खण्ड में लिखता है।

पावति जो रूप संवारी, पद्मावति चाहै औतारी।

* * *

प्रथम सो जोति गगन निरमई, पुनि सो पिता माथे मनि भई।
पुनि वह जोति मातु घर आई, तेहि ओदर आदर बहुपाई॥
जस अवधान पूर होइ मासू, दिन दिन हिये होइ परगासू।
जस अंचल मंह छिपै न दीया, तस उजियार दिखावै हीया॥

* * *

भए दस मास पूरि भई घरी, पद्मावति कन्या औतरी।[2]

इन स्थलों पर ऐसा प्रतीत होता है मानो कवि पद्मावती में अलौकिकता रख रहा हो। दूसरी ओर स्त्री-भेद वर्णन, संभोग वर्णन आदि को पढ़कर पाठक को यह विश्वास होने लगता है कि यह कवि जो कि अपनी लेखनी को इतनी बेलगाम बनाए हुए है, आध्यात्मिक अन्योक्ति अथवा समासोक्ति का निर्माण नहीं कर रहा। वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने कथा का प्रारम्भ तो एक अन्योक्ति की भावना से किया था परन्तु कथा के वर्णन में वह इसको संभाल न सका और उसने अन्योक्ति को छोड़कर

१. वही पृष्ठ ४८

२. वही पृष्ठ २३

कथा को अपने उपदेश देने का सहारा बना लिया।[1] पाठक को वह अपनी कथा में उलझाए रखता है और साथ ही साथ उपदेश भी देता जाता है। स्त्री भेद वर्णन, संभोग वर्णन आदि वह इसी कारण कर रहा है जिससे पाठक को उसकी कथा में मनोरंजकता मिलती रहे। मलिक मुहम्मद जायसी ने षटऋतु वर्णन, बारहमासा आदि अपनी शैली की परंपरागत प्रवृत्तियों के कारण लिखे हैं।[2] पद्मावती के अन्त में दिए गए सांकेतिक कोष का क्या अभिप्राय है यह हम ऊपर बतला आए हैं।

एक संदेह अभी भी शेष बच रहता है। कहीं कवि ने पद्मावती में जिस प्रेम की व्यंजना की है वह तो सूफी नहीं है।

हमने ऊपर बताया है कि कवि ने अपने काव्य का प्रारम्भ तो एक अन्योक्ति की भावना से किया था परन्तु उसे वह बहुत ही थोड़ी दूर तक निभा सका और कथा जैसे उसके हाथ से छूट गई हो। इसी कारण उसने प्रारम्भ में जिस प्रेम का चित्रण प्रेमखंड में किया है वह तो सूफी व्यंजनापूर्ण प्रतीत होता है परन्तु आगे का प्रेम एक मात्र भौतिक है। उसमें किसी दिव्यता के दर्शन नहीं होते। पद्मावती का नखशिख सुनकर राजा की दशा का वर्णन कवि करता है :

सुनतहि राजा गा मुरझाई, जानौं लहरि सुरुज कै आई।

* * *

१. पहले ग्यारह खंडों तक तो अन्योक्ति की भावना मिलती है परन्तु उसके बाद यह नहीं मिलती। फिर एकाध संकेत पद्मावती के पूर्वार्द्ध में मिलते हैं और उत्तरार्द्ध में वे भी नहीं है।

२. प्रस्तुत लेखक इस परम्परा को पूरी तरह खोजने में असमर्थ रहा है।

बिरह भौर होइ भांवरि होई, खिन खिन जीउ हिलोरा लेई।

* * *

जब भा चेत उठा बैरागा, बाउर जनो सोइ उठि जागा।
आवत जग बालक जस रोआ, उठा रोइ हा ज्ञान सो खोआ।
हौं तो अहा अमरपुर जहाँ, इहां मरनपुर आइउ कहाँ।
केई उपकार मरन कर कीन्हा, सकति हंकारि जीउ हरि लीन्हा।
सोवत रहा जहाँ सुख साखा, कस न तहां सोवत विधि राखा।[1]

इस प्रेम में सूफी व्यंजना सी है परन्तु यही प्रेमी जब कि—

चौरासी आसन पर जोगी, खटरस बंधन चतुर सो भोगी।[2]

बनकर

पिय धन गही दीन्ह गलबाहीं, धनि बिछुरी लागी उरमाहीं।
ते छकि नव रस केलि करेहीं, चोका लाइ अधर रस लेहीं।
धनि नौ सात सात औ पांचा, पुरुष दस ते रह किमि बांचा।[3]

और

चतुर नारि चित अधिक चहूँटी, जहाँ प्रेम बाढ़े किमि छूटी।
कुरला काम केरि मनुहारी, कुरला जेहि नहिं सो न सुनारी।[4]

तथा

लीन्ह लंक कंचन गढ़ टूटा, कीन्ह सिंगार अहा सब लूटा।
औ जोबन मैमंत बिधांसा, बिचला बिरह जीउ जो नासा॥

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ५७८
२. वही पृष्ठ १५८
३. वही पृष्ठ १५९
४. वही

टूटे अंग अंग सब भेंसा, छूटी मांग भंग भए केसा।
कंचुकि चूर चूर भइ तानी, टूटे हार मोति छहरानी।
बारी टांड़ सलोनी टूटी, बाहूँ कंगन कलाई फूटी।[1]

करता है तो वह घोर पार्थिव है। उसका प्रेम वहाँ पर तनिक भी दिव्य नहीं है। वास्तव में आगे लेखक ने लौकिक प्रेम के ही गुण गाए हैं। लौकिक प्रेम के माध्यम से सामूहिक रूप में वह अलौकिक सूफी प्रेम का आभास नहीं दे पाया है। परंतु स्मरणीय यह है कि पद्मावती का अति विनयशील लेखक अपनी कथा की दिव्यता में फिर भी विश्वास दिलाता रहा है। अपने को पंडितों का पछलगा कहनेवाला कवि[2] अखरावट में पद्मावती की आध्यात्मिकता के विषय में अत्यंत गर्व से कहता है :

कहा मुहम्मद प्रेम कहानी, सुनि सो ज्ञानी भए धियानी[3]

और दूसरों से भी कहता है कि सूफी को चाहिए कि—

कहै प्रेम की बरनि कहानी, जो बूझै सो सिद्धगियानी[4]

वास्तव में कवि अपनी कहानी की कमजोरी को पहिचान गया है और उसे अपनी इस उक्ति के द्वारा छिपा लेना चाहता है।

§४९. दूसरे भाग के काव्य चित्रावली तथा इन्द्रावती की परिस्थिति पद्मावती से तनिक भिन्न है। पद्मावती में तो प्रारम्भ में अन्योक्ति की भावना से भरकर लेखक ने कथा प्रारम्भ की है परन्तु थोड़ी ही दूर पर कथा उसके हाथों से छूटकर अलग हो गई है।

१. वही पृष्ठ १६०
२. वही पृष्ठ १०
३. वही पृष्ठ ३७६
४. वही पृष्ठ ३८२

परन्तु इन काव्यों में अन्योक्ति प्रारम्भ ही नहीं की गई और सारे आख्यान में कवि कहानी के सहारे सहारे उपदेश मात्र ही देते चलते हैं। इनका प्रेम एक मात्र लौकिक है जिसका लक्ष्य कामशास्त्र का ज्ञान प्राप्त कर स्त्री-संभोग है।

§५०. दूसरे वर्ग में हम दुखहरनदास कृत पुहुपावती, कासिम शाह कृत हंस जवाहिर, सूरदास लखनवी कृत नलदमन काव्य तथा मंझन कृत मधुमालती रख सकते हैं। दुखहरनदास कहते हैं :

इह जग रैनि अंधिरी है जागौं कौन उपाइ।
तव इह रचना मन रची कहत सुनत निसु जाइ ॥[१]

इसे पढ़कर पाठक के मन में एक सन्देह उठता है कि कहीं लेखक ने कोई गूढ़ार्थ तो इस काव्य में नहीं रखा। आगे के वर्णन उसके इस सन्देह को और पुष्ट करते हैं। पुहुपावती के शरीर की कांति का वर्णन करते हुए लेखक कहता है :

अति सरूप पुहुपावती रानी, तेहि की जोति न जाइ बखानी।
तेहि की जोति तुम्ह देखा नहीं, परम जोति सभ जोतिन्ह माहीं।
देखहु जोति जो रवि ससि तारा, तेहि की जोति सम जोति संभारा।
ब्रह्म जोति सो लेइ जग साजै, उहं जोति सभ ठांव विराजै।

*　　*　　*　　*

दु:खहरन वह जोति निजु जैहि की उपमा नाहिं।
इह जो जोति सभ देखहु सो वोहि की परछाहि ॥[२]

भ्रकुटी वर्णन में कवि कहता है :

१. पुहुपावती पृष्ठ १६
२. वही पृष्ठ ५४

भौंह धनुक अहेइह सोई, जेहि ते बली न बांचा कोई।
रामकृष्न जो भा अवतारा, रावन कंस वोहि धनु मारा ॥[1]

कथानायक राजकुंवर के चरणों का वर्णन करते हुए लिखता है :

जवन चरन सनकादिक धोवा, जो जल जटा मांह सिव गोवा।
जो पग परसि अहिल्या नारी, चढ़ि बेवांन वैकुंठ सिधारी।
जो पग केवट अधम परिवारा, तरा सो आपु सहित परिवारा।
बलि के पीठ धरत सो पाऊं, गए पताल अमर होइ राऊं।
जो पग सेसनाग सिरचीन्हा, गरुड़ कै सेक अमर कर दीना।
जो पग सेवत कवंला रानी, सम परभइ पाट परधानी।
जो पग छुवत सो अजगर तरा, विद्याधर गंधर्व ओ तारा।
जे पग जग महं दुर्लभ, ध्यान धरत जेहि ईस।[2]

* * * *

सूरदास लखनवी ने भी दमयन्ती की भौंह का वर्णन दुखहरन-दास की ही भांति किया है। वह एक दूसरे स्थान पर लिखता है :

बहुत लोग निज अरथ दौरावा, सब काहू पै जाइ न पावा।[3]

संक्षेप में हमें इस वर्ग के काव्यों में ये ही आध्यात्मिक संकेत मिलते हैं। दुखहरनदास का यह कहना कि संसार रूपी निशा को जागते हुए पार करने के निमित्त उन्होंने इस कथा की रचना की, और सूरदास का यह कहना कि विरले ही उनकी कहानी का असली मतलब जानते हैं विशेष अर्थ नहीं रखता। मध्ययुग में कहानी कला का स्वतंत्र विकास नहीं हो पाया था। अतः कहानियाँ

१. वही पृष्ठ ६२
२. वही पृष्ठ १०२ : ३
३. नलदमन पृष्ठ १२

भाँति परीक्षा न होती। इस वर्ग के कवियों ने चली आती हुई शैली में अपने काव्यों की रचना की है और इसी के परिणाम स्वरूप कहीं पर आध्यात्मिक व्यञ्जना सो मिलती है जो कि अर्थ हीन है। कासिम शाह में इन आध्यात्मिक संकेतों का भी अभाव है। वहां तो कवि केवल अंत में संसार की नश्वरता पर कुछ ऐसी मार्मिक बातें कहता है कि पाठक के हृदय पर उसका गहरा प्रभाव पड़ता है और पाठक उसे एक पहुँचा हुआ संत मानकर उसके काव्य को एक श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगता है। वास्तव में संसार की नश्वरता पर जोर देना यद्यपि भारतीय विचारधारा के लिए न तो कोई विशेष नई वस्तु है और न विशेष महत्वशील परन्तु हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि यह कुरान का प्रभाव है।[1]

मधुमालती के लेखक मंझन ने अपने काव्य की अलौकिकता के गुण नहीं गाए हैं। वे अन्त में केवल इतना ही कहते हैं--

कथा जगत जेती कवि आई ।
पुरुष मारि ब्रज सती कराई ॥
मैं छोहन्ह येह मारि न पारे ।
मरहि हमहिं जो कलि औतारे ॥
संतन सेवा सुनि सत भाऊ ।
जो मरि जीऐ सो मौ न काऊ ॥
सकति काल नियरै नहिं आवै ।
जो जग पेम सजीवनि पावै ॥[2]

१. संसार की नश्वरता पर कुरान विशेष ज़ोर देती है और इसीके आधार पर वह मनुष्य का ध्यान दूसरे संसार की ओर खींचती है जो कि अनश्वर है।

२. मधुमालती

इस कारण—

जो जिय जानहु काल मै, पैम सरन करु नेम।
मिटै दुई जग क भै सर सार ( ? ) जग पेम ॥[1]

कथानक के बीच में भी नखशिख वर्णन कवि ने किसी आध्यात्मिकता का संकेत नहीं दिया। वैसे मधुमालती के विषय में मनोहर कहता है—

देखत ही पहिचान्यो तोही।
एहि रूप जिन छन्दरयो मोही ॥[2]

* * *

एहि रूप अब सृष्टि समाना।
एहि रूप प्रगट बहु रूपा ॥
एहि रूप जेहि भाव अनूपा।
एहि रूप सब फूलन्ह बासा ॥
एहि रूप रस भंवर बरासा।[3]

यह परंपरा का प्रभाव ही मानना चाहिए।

§५१. इस प्रकार संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सामूहिक रूप से इन कहानियों में किसी सूफी प्रेम की व्यंजना नहीं है। ये कवि किसी अन्योक्ति को इन काव्यों में नहीं रखते थे। ये कवि इन कहानियों के माध्यम से नैतिक एवं एकाध धार्मिक उपदेश देते थे। इन्हें सूफी प्रेममार्गी कहना गलत है और भक्तियुग के निर्गुण काव्य की दो शाखाएं बनाकर इन्हें दूसरी शाखा में रखना महत्वहीन है।

१. वही  २. वही  ३. वही

## २

# फारसी मसनवी का विकास

## और उसका

# हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य पर प्रभाव

§१. मसनवी फ़ारसी साहित्य की एक काव्य शैली है। इसमें छन्द अपने आप में पूर्ण होता है। वाक्य रचना के दृष्टिकोण से उसमें पूरा वाक्य होता है और उसकी दोनों अर्द्धालियाँ समान अंत्यनुप्रास रखती हैं। यह काव्य-शैली वर्णनात्मक है और इसमें कथा साहित्य ही प्रमुखतया लिखा गया है। इन साधारण नियमों के अतिरिक्त कुछ अन्य नियम रूढ़ियों के सहारे भी बनाए जा सकते हैं। इसके प्रारम्भ में ईश्वर, पैग़म्बर, पैग़म्बर के मित्र, कवि के गुरु और सामयिक राजा की प्रशंसा रहती है। इन प्रशंसाओं के पश्चात् कवि इसकी रचना का ध्येय सुस्पष्ट करता है। इसमें साधारणतया छन्द-परिवर्तन नहीं होता।[1]

§२. फ़ारसी मसनवियाँ चार वर्गों में विभक्त हो सकती हैं—

१. लम्बे लम्बे महाकाव्य
२. प्रेमाख्यानक काव्य, जिनका विस्तार साधारणतया पर्याप्त होता है।
३. साधारण आख्यानक काव्य, जिनका विस्तार साधारणतया पर्याप्त होता है।
४. किसी विशेष दृष्टिकोण से लिखी गई छोटी छोटी कहानियाँ जिनका संकलन किसी कच्चे धागे के सहारे कर दिया गया है।

१. एन्साइक्लोपीडिया ऑफ इस्लाम ( १९३६ ) भाग ३, पृष्ठ ४१०-१
ब्राउन: ए लिटरेरी हिस्ट्री ऑफ परशिया ( १९१९ ) पृष्ठ ४७३

§३. दक़ीक़ी और फ़िरदौसी का लिखा हुआ शाहनामा पहले वर्ग का उदाहरण है। फारसी में इससे पुरानी अन्य कोई भी मसनवी अपने सम्पूर्ण रूप में नहीं मिलती। किन्तु इसे मसनवी कहना इसके प्रति अन्याय करना है। इसमें मसनवी की सी समान अन्त्य-नुप्रास वाली अर्द्धालियाँ प्राप्त हैं, मसनवी शैली की अन्य प्रायः सभी विशेषताओं का इसमें अभाव है।[1] फिर भी इतिहास की प्राचीनता में गौरव माननेवाले मसनवी-प्रेमी इसे अपनत्व की दृष्टि से देखते हैं।

§४. पर्याप्त विस्तारवाली प्रेम कहानियों की कमी फारस में किसी भी प्रकार नहीं है। प्रकृति के सौतेले पुत्र अरब की संस्कृति से अतिप्रभावित देश में पार्थिव प्रेम कभी भी बुरा नहीं समझा जा सकता। इस वर्ग की कृतियों में फ़िरदौसी-कृत यूसुफ-जुलेखा प्राचीनतम प्राप्य कृति है।[2] इसका प्रारम्भ उपर्युक्त वंदनाओं और प्रशंसाओं से होता है। मसनवी के अन्य समस्त लक्षण भी इसमें मिलते हैं। फारसी प्रेमाख्यानक काव्यकारों में सबसे बड़ा निज़ामी हुआ है। उसने शीरींखुसरू, लैलामजनू तथा हफ्त-पैकर नामक तीन मसनवियाँ लिखी हैं। इनमें प्रथम दो तो एक एक कथानक वाली मसनवियाँ है, और अन्तिम सात कथानकों वाली। परन्तु उसके सातों कथानक एक मज़बूत धागे से पिरो दिए गए हैं। निज़ामी और फरदौसी के बीच में हमें एक मसनवी और मिलती है। उसके लेखक फरीदुद्दीन अत्तार कहे जाते हैं। इस प्राप्त हस्त-लिखित पोथी की प्रामाणिकता संदिग्ध है।[3] जामी एक दूसरा

१. एन्साइक्लोपीडिया ऑफ इस्लाम ( १९३६ ) भाग ३ पृष्ठ ४११

२. वही

३. वही

सुप्रसिद्ध मसनवी लेखक है। इसकी यूसुफ-जुलेखा एक अत्यन्त प्रसिद्ध कृति है। फारसी प्रेमाख्यानक मसनवियों की रचना भारतवर्ष में भी हुई है। इस क्षेत्र में अमीर खुसरो तथा अबुलफैजी अत्यन्त महत्वपूर्ण व्यक्तित्व हैं। अमीर खुसरो ने लैला मजनूं लिखी और फैजी ने नल-दमन नामक भारतीय आख्यान पर लेखनी यह कहकर चलाई कि भारतवर्ष जलवायु के दृष्टिकोण से अधिक उष्ण देश है, इस कारण यहाँ पर प्रेम का आधिक्य स्वाभाविक रूप से रहा है।[1] अवध नवाबों के पूर्वजों के एक दरबारी की यह सूझ काफी मजेदार हैं।

§५. पर्याप्त विस्तार वाले साधारण आख्यानक काव्यों के उदाहरण अमीर खुसरो की मसनवियां हैं।

§६. फारसी मसनवियों के उपर्युक्त अन्तिम वर्ग का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण जलालुद्दीन रूमी की सुप्रसिद्ध मसनवी है। इसमें बहुत सी छोटी छोटी कहानियां हैं जो एकमात्र उपदेश देने की भावना से लिखी गई हैं। उनका संकलन भी इसी कच्चे धागे से कर दिया गया है।[2]

§७. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य का सम्बन्ध एकमात्र फारसी की प्रेमाख्यानक मसनवियों से है। हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यकार प्रायः मुसलमान हैं। इसे प्रारम्भ करनेवाले तो मुसलमान ही हैं। इसकी प्रारम्भिक अवस्था में उर्दू का प्रचार न हो पाया था। इस कारण मुसलमानी शासन की एवं कट्टर मुसलमानों की भाषा फारसी थी। हमारे ये कवि भी फारसी जानते होंगे। मलिक मोहम्मद जायसी

१. नल दमन फारसी लखनऊ पृष्ठ ३६

२. वह धागा उपदेश देने की भावना है

को उजियारा पंथ दिखाने वाले सैयद अशरफ जहांगीर स्वयं सीधे इस्फहान से भारतवर्ष आए थे।[1]

उनकी फारसी की रचनाएँ आज भी प्राप्त हैं। इसके अतिरिक्त हमारे इन कवियों ने स्पष्ट संकेत दिए हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि वे इन कहानियों से परिचित थे।[2]

§८. हिन्दी तथा फारसी के प्रेमाख्यानक मसनवी काव्यों में निम्नलिखित समानताएं मिलती हैं।

कथानक—दोनों भाषाओं के प्रेमाख्यानकों के कथानकों की धुरी प्रेम है। वे सारे के सारे कथानक एकमात्र उसी धुरी पर ही घूमते हैं। उनकी क्रोड़ में प्रेम नहीं है, वरन् प्रेम की क्रोड़ में वे कथानक हैं। सच तो यह है कि इसी कारण ये काव्य प्रेमाख्यान हैं। इन दोनों प्रकार के कथानकों में पंछी पात्रों के रूप में हैं और वे कथानकों के स्वाभाविक विकास में योग देते हैं। मजनूं ने अपना पत्र एक कबूतर के द्वारा लैला के पास भेजा था। पद्मावती का संदेश लेकर हीरामन सुआ ही गया था। हंस—जवाहिर में जवाहिर का संदेश लेकर जानेवाली परी भी पंछी का वेश धरकर हंस के पास गई थी। चित्रावली में यद्यपि कोई पंछी प्रमुख पात्र के रूप में नहीं है, परन्तु फिर भी एक पंछी विद्यमान है। इंद्रावती में भी इंद्रावती का संदेश राजकुँवर के पास एक पंछी ने ही भेजा था। इस प्रकार प्रायः ये पंछी संदेशवाहक के रूप में ही इन काव्यों में आये हैं। इन पंछियों के होते हुए भी ये काव्य अमानवीय नहीं हो गये। सारे के सारे कथानक एकदम मानवी हैं। यद्यपि इन कथानकों में

१. सरवरः खजीनतुल असफिया (१२९० हि०) पृष्ठ ३७१-२

२. हंस-जवाहिर (१८९८) पृष्ठ ९६

परियों राक्षसों का वर्णन एवं योग है, परन्तु फिर भी ये कथानक मानवी ही हैं। मध्ययुग की कहानी कला की यह अति विलक्षण विशेषता है। एकमात्र मानव चरित्र वाले कथानकों को खोजना मध्ययुग के कहानी-साहित्य में तो मृग-तृष्णा होगी। ये कथानक कभी कभी ऐतिहासिक भी होते थे। किन्तु उनमें ऐतिहासिक सत्य का प्रतिपादन करने अथवा इतिहास लिखने की भावना न थी। कहा जाता है कि लैलामजनूं की कहानी अपने मूल में ऐतिहासिक वास्तविकता से अनुप्राणित है। कहा जाता है कि पद्मावती भी ऐतिहासिक है। परन्तु इन काव्यों को पढ़नेवाला कभी यह नहीं कह सकता कि वह इतिहास की घटनाएँ पढ़ रहा है। इनके कथानकों के पीछे छिपी ऐतिहासिकता को ये कवि एकदम भूल गए हैं। कवि कहानी कहता जाता है, उसे इतिहास की बात याद भी नहीं है। बीच बीच में वह नीति के उपदेश देता है। उसे कहानी के चरम विन्दु की भी परवाह नहीं है। वह जानता है कि नायक नायिका मिलन ही अपने में कथा के चरम बिन्दु को छिपाए हुए है, परन्तु फिर भी वह उसके वर्णन में अपने रंगों को गहरा नहीं करता। संक्षेप में, हिंदी और फारसी के प्रेमाख्यानक मसनवी काव्य के कथानकों में ये ही समानताएं हैं।

चरित्र चित्रण—इन आख्यानकों का नायक बड़ा ही सुन्दर युवा होता है। मजनूं, फरहाद, रत्नसेन, यूसुफ, सुजान, हंस, नल, राजकुमार आदि सभी नायक अत्यन्त सुन्दर हैं। वे सच्चे प्रेमी होते हैं। वे विलासी पशुओं की भाँति नायिकाओं के जीवन से खेलते नहीं हैं, वरन् उनसे पवित्र एवं स्थिर प्रेम करते हैं। नायिका भी प्रायः अत्यधिक रूपवती होती है। वह भी नायक से सच्चा प्रेम करती है। लैला ने मजनूं के लिए और शीरीं के अपने प्रियतम फरहाद के लिए अपने प्राण तक तज दिए थे। पद्मावती रत्नसेन

की चिता पर जौहर की जिस ज्वाला में जलकर भस्म हो गई थी उसकी याद कर आज भी प्रत्येक हिन्दू स्त्री गर्व से अपना सिर कुछ और ऊँचा उठा लेती है। दमयन्ती ने नल के लिए क्या क्या कष्ट नहीं सहे। इस प्रकार ये नायिकाएँ अपने प्रेम में सच्ची होती हैं। साथ ही साथ प्रत्येक नायिका प्रारंभ में कुमारी होती है। वह अपनी अविवाहितावस्था में ही प्रेम प्रारंभ करती है और मृत्यु पर्यन्त उसमें दृढ़ रहती है।

मुख्य संवेदना—इन सारी कहानियों की मुख्य संवेदना प्रेम है, ये सारे के सारे कथानक एकमात्र प्रेम की कीली पर घूमते हैं। सच तो यह है कि इसी कारण ये प्रेमाख्यानक कहलाते हैं।

कथोपकथन—इन दोनों धाराओं के काव्यों में मनोवैज्ञानिक कथोपकथन है।

वर्णन—वियोग-वर्णन में फारसी के कवि नायक अथवा नायिका के बाह्य वर्णन तक ही सीमित रह जाते थे। हिन्दी के कवि इस दृष्टिकोण से दो भागों में बँटते है। एक तो वे जो केवल बाह्य तक ही सीमित रहते हैं, और दूसरे वे जो अन्तर तक पैठते हैं। पहले वर्ग में कासिमशाह और दूसरे वर्ग में जायसी का नाम लेकर हम इस विभाजन को सुस्पष्ट कर सकते हैं। इस पहले वर्ग के आख्यानों तथा फारसी के वर्णनों में हम यह छोटी-सी समता पाते हैं कि दोनों बाह्य तक ही सीमित हैं।

शैली—फारसी की प्रेमाख्यानक मसनवियों की भाँति हिन्दी के प्रेमाख्यानक काव्य के प्रारम्भ में एक स्तुति-खंड होता है। उसमें ईश्वर, मुहम्मद साहब, उनके खलीफा सामयिक राजा एवं गुरु की प्रशंसा, कवि का अल्प परिचय एवं कथा की भूमिका रहती है। इसके अतिरिक्त दोनों धाराओं में अत्युक्ति, उपमा एवं उत्प्रेक्षा का प्रचुर प्रयोग रहता है।

संक्षेप में फारसी की प्रेमाख्यानक मसनवियों तथा हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में ये ही समानताएँ हैं।

§९-इन दोनों धाराओं में निम्न-लिखित असमानताएँ हम पाते हैं:—

कथानक—हिन्दी कथानकों में यत्र तत्र गूढाभिव्यंजना की भावना है। फारसी में इसका सर्वथा अभाव है। हिन्दी में कथानक को लेखक जानबूझकर बिखराता समेटता चलता है। पद्मावती में रत्नसेन के सिंहल से लौटते समय तूफान का आना, अलाउद्दीन का आक्रमण, देवपाल का दूती भेजना, चित्रावली में सुजान का कौलावती आदि के साथ विवाह, पुहुपावती में राजकुँवर के रंगीली आदि के साथ विवाह जैसी घटनाएँ अपनी अति सीमित-परिधि रखती हैं और उन्हींमें चक्कर काटती रहती हैं। साथ ही साथ जितना तीव्र नैतिकता का स्वर हिन्दी में है उतना फारसी में नहीं। यहाँ लेखक नैतिकता की शिक्षा देने के लिये भी काव्यों की रचना करता है। परन्तु फारसी में इस प्रकार का सन्देह भी नहीं उठता। फ़ारसी में तो परपुरुष-प्रेम प्रायः प्रत्येक कथानक में है। हिन्दी में वह नहीं मिलता। हिन्दी में लिखे गए कथानकों में विवाह की मर्यादा की पूर्ण रक्षा की गई है। लैला का विवाह किसीसे हुआ, परन्तु वह प्रेम मजनूं से करती थी। जुलेखा का विवाह तो किसी दूसरे से हुआ, परन्तु वह प्रेम युसूफ से करती थी। पद्मावती में यद्यपि रत्नसेन पद्मावती के लिए नागमती को छोड़ गया था, परन्तु फिर भी नागमती पर-पुरुष का ध्यान तक नहीं करती। पद्मावती देवपाल एवं अलाउद्दीन की दूतियों को कैसा कड़ा उत्तर देती है। कासिमशाह ने इस विषय में बड़ी चतुराई दिखाई है। जवाहिर का विवाह एक दूसरे पुरुष से हुआ जाता था। कवि ने वहाँ परि परियों की सहायता लेकर हंस को उस व्यक्ति के स्थान में भिजवा दिया, और उस व्यक्ति को गायब करवा दिया। इस प्रकार उसने विवाह की मर्यादा

बचा ली। यहाँ पर यह भी स्मरणीय है कि हिन्दी के कवि वातावरण पर विशेष ध्यान रखते हैं। वे प्रायः यह बात याद रखते हैं कि वे भारतीय परिवार और विशेषकर हिन्दू परिवार की कहानी कह रहे हैं। इसी कारण वे बराबर कहानी में हिन्दू वातावरण रखते हैं परन्तु फारसी के कवियों ने अपनी कहानियों को मुसलमान नहीं बनाया है। इन असमानताओं के अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण असमानता दृष्टांत के रूप में कही गई कहानियों की हैं। फारसी के कथानकों के बीच बीच में प्रायः दृष्टांत के रूप में कहानियाँ कही जाती हैं, परन्तु हिन्दी में यह कथा केवल इंद्रावती में है। अन्य काव्यों में व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ देकर उनकी ओर संकेत कर दिया जाता है। इससे फारसी के कथानकों के स्वाभाविक विकास में बाधा पड़ती है, और हिन्दी के कथानक अपनी उसी स्वभाविक गति से आगे बढ़ते जाते हैं। फारसी के कथानक अपनी मुख्य संवेदना के दृष्टिकोण से दुःखांत हैं, परन्तु हिन्दी के नहीं हैं। फारसी में नायक नायिका का विवाह आवश्यक नहीं है, परन्तु हिन्दी में है।

चरित्र चित्रण—फारसी में लिखे गए आख्यानों का नायक प्रायः कोई साधारण पुरुष ही होता था। मजनूं एक साधारण व्यक्ति था। फ़रहाद एक अत्यन्त साधारण व्यक्ति था। यूसुफ भी एक साधारण श्रेणी का नायक था। परन्तु हिन्दी में लिखे गए आख्यानों का नायक सदा कोई न कोई राजकुमार होता है। पद्मावती का रत्नसेन चित्तौड़ का राजा था। चित्रावली का नायक नेपाल के राजा का पुत्र सुजान था। नलदमन का नायक उज्जैन का राजा नल था। ये समस्त नायक या तो विवाहित थे या इनका नायिका के अतिरिक्त अन्य किसी न किसी स्त्री से विवाह आगे हुआ है। फारसी में ये समस्त नायक अविवाहित थे। फारसी की नायिका आवश्यक रूप से सुन्दर नहीं होती है। लैला की वदसूरती तो काफी प्रसिद्ध है,

परन्तु हिन्दी में नायिका अभूतपूर्व सुन्दरी होती ह। फारसी में उसका विवाह नायक से होकर किसी अन्य व्यक्ति से आवश्यक रूप से होता है, परन्तु हिन्दी में यह कभी नहीं होता यहाँ तो नायिका का विवाह केवल कथानायक से ही होता है। प्रतिनायक की परिस्थिति में भी दोनों धाराओं में महान् अन्तर है। पद्मावती का अलाउद्दीन और शीरीं व खुसरो का खुसरो दो विभिन्न कोटि के प्रतिनायक हैं। एक के सम्मुख दूसरे की पत्नी पर अधिकार कर लेने का प्रश्न है और दूसरे के सामने अपनी पत्नी दूसरे को देने का प्रश्न है। इस प्रकार हिन्दी तथा फारसी के प्रतिनायक की परिस्थिति में भी बड़ी ही असमानता है।

कथोपकथन—फारसी के कथोपकथन प्रायः बड़े लम्बे हैं और प्रायः हिन्दी के छोटे छोटे। शीरीं व खुसरो तथा खुसरो व शापूर के से लम्बे लम्बे कथोपकथन हिंदी में नहीं मिलते। नागमती की वियोग-गाथा का कथोपकथन हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य में अपवाद है।

वर्णन—वियोग-वर्णन में फारसी और हिन्दी के आख्यानकों में जो अन्तर है, उसकी ओर ऊपर संकेत कर दिया गया है। उसके अतिरिक्त नगर वर्णन, उपवन-वर्णन, सरोवर-वर्णन, स्त्री-भेद-वर्णन, कामशास्त्र वर्णन, बारात-वर्णन, भोज-वर्णन आदि हिन्दी प्रेमाख्यानकों में ही मिलते हैं। फारसी में जो एकाध वर्णन कहीं कहीं पर मिलते भी हैं वे हिन्दी से अति भिन्न है। इन वर्णनों के अतिरिक्त हिन्दी आख्यानों में प्रयुक्त उपमान हिन्दी के हैं और फारसी मसनवियों में प्रयुक्त उपमान फारसी के।

शैली—हिन्दी के प्रेमाख्यान यद्यपि मसनवी शैली में ही लिखे गए हैं, परन्तु फिर भी वे फारसी से भिन्न हैं। हिन्दी के आख्यानों का स्तुति-खण्ड बाह्यरूप से तो फारसी के समान ही है, परन्तु अन्तर में विभिन्नता रखता है। हिन्दी में ईश्वर के कर्ता-रूप पर

अत्यधिक जोर दिया जाता है और साथ ही साथ उसका बड़ा ही सधा हुआ वर्णन किया जाता है। परन्तु फारसी में वैसा सधा वर्णन नहीं मिलता। वहाँ पर तो लेखक प्रायः 'कुन' में ही पड़े रहते हैं[1]। इसके अतिरिक्त फारसी मसनवियों में गजल का भी प्रयोग बीच-बीच में होता है। हिन्दी में यद्यपि कहीं कहीं पर एकाध लेखक ने[2] दूसरे छन्दों का प्रयोग किया अवश्य है, परन्तु वह एक तो अति सीमित है और दूसरे हिन्दुओं द्वारा हुआ है। हिन्दू लेखक फारसी पढ़े थे, यह अति संदिग्ध है।

संक्षेप में फारसी मसनवी और हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में ये समानताएँ तथा असमानताएँ हैं। समानताओं पर दृष्टिपात करते ही यह स्पष्ट हो जाता है कि वे बाह्य हैं और विशेष महत्व की नहीं हैं। यदि दोनों काव्यों में नायिका अति रूपवती है, तो यह बात विशेष महत्व की नहीं कही जा सकती। यदि दोनों धाराओं के कथानक प्रेम के ही क्रोड़ में हैं तो यह भी कोई महत्वपूर्ण समानता नहीं कही जाएगी। इसके विपरीत जितनी भी असमानताएँ इन आख्यानों में पाई जाती हैं वे महत्वपूर्ण हैं। कहीं पर भी दोनों धाराओं में वर्णन नहीं मिलते। विवाह संबधी आदर्श तथा कथा-नक का उतार चढ़ाव दोनों धाराओं में विभिन्न है, यह भी महत्व की बात है। उपमानों की विभिन्नता भी द्रष्टव्य है। इसके अतिरिक्त फारसी प्रेमाख्यानों की रचना का मूल कारण प्रायः रुपया पाना था,

१.—'कुन' इस शब्द से कहा जाता है कि खुदा ने संसार को बनाया।

२. दुखहरनदास ने अपनी पुहुपावती में अरिल्ल छंद का प्रयोग किया है

और हिंदी में पाठक को उपदेश देना।[1] ये दोनों लक्ष्य ही दो विभिन्न दिशाओं की ओर जाने वाले हैं।

इस प्रकार दोनों में आन्तरिक असमानता है। फारसी मसनवी का बहुत ही कम प्रभाव हिंदी पर पड़ा। स्तुति-खंड मात्र ही फारसी प्रभाव स्वरूप लिखा गया समझा जा सकता है। इसके अतिरिक्त कोई विशेष प्रभाव नहीं। अन्य समानताएँ तो बाह्य हैं और मध्ययुगीन प्रेमाख्यानों की बाह्य रूपरेखा तो प्रायः सभी देशों में कुछ न कुछ समान है।

---

१. अमीर खुसरो आदि कवि अपनी मसनवियों के प्रारम्भ में इसका स्पष्ट उल्लेख कर देते हैं।

३

# भारतीय आख्यानकों का विकास

और उसका

# हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य पर प्रभाव

§१. भारतीय कथा साहित्य के उद्‌गम तीन हैं :

१. वैदिक तथा उससे सम्बन्धित साहित्य

२. जैन-बौद्ध साहित्य

३. अन्य साहित्य

§२. इन तीनों में वैदिक साहित्य अपेक्षाकृत पुराना है। नीतिशास्त्र एवं धार्मिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिए तथा उनका आकर्षक एवं सर्वग्राह्य बनाकर उनके प्रचार के लिए इतिहास से उदाहरण देकर उन्हें सजीव बनाना स्वाभाविक ही था। इतिहास के अभाव में काल्पनिक इतिहास (mythology) का आश्रय लिया गया। भारतीय कथा साहित्य का मूल उद्‌गम इसी में है।

§३. वैदिक साहित्य में अश्विनी कुमारों के विषय में कुछ कथाएं हैं। पुरुरवा उर्वशी तथा यम यमी संवाद में भी कथा के बीज मिलते हैं। उर्वशी की कथा बाद में बहुत अधिक लोकप्रिय बनी।

§४. ब्राह्मण ग्रंथों में पुरुरवा उर्वशी, हरिश्चन्द्र तथा शुनश्शेष की कथाएं हैं। उर्वशी की कथा प्रेम की है।

§५. उपनिषदों में गार्गी याज्ञवल्क्य संवाद, सत्यकाम जाबाल की कथा और प्रवाहण तथा अश्वपति की कथा मिलती है।

§६. इस साहित्य के उपरांत इस धारा में कथा साहित्य के तीन अनुपम ग्रंथ लिखे गए :

१. बृहत्कथा

२. रामायण

३. महाभारत

बृहत्कथा गुणाढ्य ने लिखी थी। इसकी भाषा संस्कृत न होकर पैशाची प्राकृत थी। यह महान ग्रंथ खो गया है और आज तक अप्राप्य है। रामायण की भाषा संस्कृत है। प्रधान रूप से इसमें राम रावण की कथा है। परन्तु अन्तिम भाग में ययाति, नहुष, वशिष्ठ, अगस्त्य, शम्बूक आदि की भी कथाएं संक्षेप में दी गई हैं। महाभारत में कौरव पांडवों की कथा प्रमुख तथा अन्य बहुत सी कथाओं का संग्रह है। रामायण तथा महाभारत ने भारतीय कथा साहित्य पर अपना बड़ा प्रभाव डाला है।

§७. पुराणों में भी कथाएँ ही संग्रहीत हैं। इन अठारह पुराणों में ६ में ब्रह्म ६ में विष्णु तथा ६ में शिव की कथाएँ हैं।

§८. रामायण तथा महाभारत के आधार पर बहुत से साहित्यिक प्रबन्ध काव्य संस्कृत में लिखे गए। रघुवंश, भट्टी काव्य, रावण वहो, जानकी हरण आदि का सम्बन्ध रामकथा से है। किरातार्जुनीय, शिशुपालवध, नैषध आदि का सम्बन्ध महाभारत से है।

§९. कुछ साहित्यिक नाटक भी लिखे गए जिनमें अधिकांश का सम्बन्ध तो रामायण एवं महाभारत से है परन्तु मुद्राराक्षस और मालती माधव का सम्बन्ध रामायण एवं महाभारत से नहीं है। मुद्राराक्षस तो ऐतिहासिक प्रतीत होता है। और मालती माधव संभवतः अपने कथानक के लिए गुणाढ्य का कृतज्ञ हो।

§१०. बौद्ध-जैन कथा साहित्य दो वर्गों में विभक्त हो सकता है:

१. बौद्ध कथा साहित्य
२. जैन कथा साहित्य

§११. बौद्ध कथा साहित्य तीन वर्गों में विभक्त हो सकता है:

१. पिटक साहित्य
२. जातक साहित्य
३. अपदान साहित्य

§१२. पिटक साहित्य में प्राय: सिद्धान्तों को सरल एवं ग्राह्य बनाने के लिए सारिपुत्त, मोग्गल्लान, महापजापति, उपालि, जीवक आदि की कहानियाँ हैं। जातक साहित्य बुद्ध के पूर्व जन्मों की कथाएँ हैं। इस साहित्य पर कुछ प्रभाव रामायण महाभारत का भी है। इनकी कथाओं को तोड़ मोड़कर लिखा गया है। अपदान साहित्य में नायक अथवा नायिका के जन्म जन्मातरों की कथाएँ रहती हैं जिनमें भले कृत्यों के परिणाम और बुरे कृत्यों के परिणाम आदि दिए जाते हैं और बौद्ध धर्म के अहिंसा, दया, करुणा आदि के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाता है। स्मरणीय यह है कि बौद्ध कथा साहित्य की भाषा संस्कृत न होकर पाली है।

§१३. जैन कथा साहित्य का लक्ष्य बौद्ध साहित्य के समान अपने सिद्धान्तों का प्रचार था। यह दो वर्गों में विभक्त हो सकता है :

१. तीर्थांकरों के जीवन से संबंधित कहानियाँ
२. स्वतंत्र कहानियाँ

§१४. पहले वर्ग का कथा साहित्य अधिकतर नेमिनाथ, पार्श्वनाथ तथा महावीर के जीवन से ही संबन्धित है। संख्या के दृष्टिकोण से सबसे अधिक कहानियों का संबंध महावीर से है और सबसे कम का पार्श्वनाथ से। नेमिनाथ से संबंधित कहानियों में कृष्ण वासुदेव सर्वत्र आते है। महावीर से संबंधित कहानियां अर्द्ध ऐतिहासिक हैं। स्वतंत्र कहानियां लोक प्रचलित कथाओं के जैन संस्करण हैं।

§१५. तीसरा उद्गम स्वतंत्र कहानियों का है। यह दो वर्गों में विभक्त होता है :

१. अति नैतिक कहानियाँ
२. साहित्यिक कहानियाँ

§१६. अति नैतिक कहानियों के उदाहरण स्वरूप हितोपदेश,

पंचतंत्र को हम रख सकते है। साहित्यिक कहानियों के उदाहरण-स्वरूप हम कादम्बरी, कथा सरित् सागर आदि को ले सकते हैं।

इन कहानियों में कुछ तो लोक प्रचलित कथाएँ होंगी और कुछ कथा लेखकों द्वारा कल्पित।

§१७. इस समस्त भारतीय कथा साहित्य की परंपरा में जहाँ तहाँ प्रेम कथाएँ भी थीं। परंतु उनकी किसी विशेष धारा को खोज सकने में प्रस्तुत लेखक असमर्थ रहा है। गुजराती साहित्य में एक साहित्यिक धारा रास ग्रंथों की रही है।[1] इस धारा में दोहा चौपाइयों में प्रेम कथा लिखी जाती थी। नव तव भाष्य (१११८ ई०) में तो यहाँ तक कहा गया है कि यह रास परंपरा अपभ्रंश से आई है।[2] गुजराती में भरतेश्वर बाहुबली रास (११४५ ई०) इस धारा का परिचायक है।[3] संभव है इसी प्रकार की कोई धारा मध्यदेश के अर्द्धमागधी प्रांत में हो और उसी से हमारे प्रेमाख्यानक काव्य का संबंध हो।

§१८. भारतीय आख्यानकों का निम्नलिखित प्रभाव हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य पर दिखलाई पड़ता है।

§१९. कथानक :

हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में पद्मावती का कथानक मौलिक नहीं है। जायसी से पहले पाठक राज वल्लभ ने १४६७ ई० में इसे

१. देखिए: क० मा० मुंशी: गुजरात एन्ड इट्स लिटरेचर (१९३५) पृष्ठ ८८

२. वही

३. वही पृष्ठ ६

संस्कृत में लिखा था।[1] प्रस्तुत लेखक उस ग्रंथ को प्राप्त नहीं कर सका। परंतु उसकी जो भी रूपरेखा उसे मिली है उससे यह निश्चित है कि पाठक राजवल्लभ कृत पद्मावती चरित्र में पद्मावती रत्नसेन की प्रेम कथा है। संभव है कि जायसी ने पद्मावती का कथानक पाठक राजवल्लभ से न लिया हो परंतु इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पद्मावती की कहानी मौलिक नहीं है और उसका स्रोत भारतीय ही है।

नलदमन का कथानक महाभारत से लिया गया है। सूरदास लखनवी ने स्पष्ट कहा है:

एक दिवस मोरे मन आई।
भारत पढ़े लाग चित लाई।
नेह को परब पढ़त जब आवा।
नल की कथा खींच हिय लावा।[2]

और

भारथ महं जो कथा बखानी।
आदि अंत बानी महं आनी।[3]

१. ग्युरिनाट: एसाइ दे बिब्लिओग्रेफी जैन (१९०६) पृष्ठ १७२
बेलवंकर: जिन रत्नकोष (१९४४) पृष्ठ २३५
पीटरसन: ए थर्ड रिपोर्ट ऑफ आपरेशन्स इन सर्च ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन बाम्बे सर्किल अप्रैल १८८४, मार्च १८८६, १८८७ पृष्ठ २१५ इसमें चित्रसेन पद्मावती चरित्र का उल्लेख है। एक चित्रसेन पद्मावती चरित्र लाहौर से प्रकाशित हुआ है परंतु वह दूसरा है।

२. नलदमन पृष्ठ ११

३. वही पृष्ठ १२

द्रष्टव्य यह है कि सूरदास लखनवी के नलदमन की कहानी में और महाभारत की कहानी में अंतर है। प्रारंभ में सूरदास ने जिस भाटिन का वर्णन किया है वही महाभारत में नहीं है। महाभारत का हंस भी नलदमन में नहीं मिलता। इन परिवर्तनों के मूल में प्रायः प्रेम पंथ की विवेचना थी। हंस को निकाल देने पर लेखक यह दिखला सका कि प्रेम में जादूभरी वह शक्ति होती है कि प्रेमी प्रेमिका को बिना संदेश भेजे अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।[1]

इन दो कथानकों के अतिरिक्त शेष कथानक मौलिक प्रतीत होते हैं।[2] परन्तु वे सारे कथानक अपने ढाँचे में विशुद्ध भारतीयता का परिचय देते हैं। कथानक का विकास सामी नहीं है। उनमें न तो तहखाने है और न जादू। न सुन्दरियों को उड़ा ले जाने वाले राक्षस हैं और न नित नवीन पुरुषों की आकांक्षा रखनेवाली सुन्दरियाँ।[3]

§२०. चरित्र चित्रण—इन काव्यों के समस्त पात्रों के चरित्र भारतीय हैं। रत्नसेन, पद्मावती, चित्रावली, सुजान, इन्द्रावती, राजकुँवर आदि सभी भारतीय आदर्शों से भरे हैं। हंस जवाहिर अभारतीय होते हुए भी चरित्र चित्रण में अभारतीय नहीं मालूम पड़ते। आशिक माशूकों के नखरे इनमें नहीं हैं।

§२१. मुख्य संवेदना—मुख्य संवेदना में सार्वभौमिकता के तत्व ही अधिक हैं। हाँ प्रेम और विवाह की समस्या जहाँ पर उठ खड़ी होती है वहाँ पर हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य भारतीय हो उठते हैं।

१. वही पृष्ठ ५८

२. देखिए प्रस्तुत निबंध का 'कथानक' शीर्षक अंश

३. ये विशेषताएं अलिफलैला में मिलती हैं

§२२. नखशिख वर्णन—नखशिख वर्णन, स्त्री भेद वर्णन, बारहमासा, षड्ऋतु वर्णन विशुद्ध भारतीय हैं। शेष वर्णन भी भारतीय ही प्रतीत होते हैं। फारसी शैली में उनके मूल के दर्शन नहीं होते।

§२३. कथोपकथन—कथोपकथन के विषय में प्रस्तुत लेखक कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कह सकता।

§२४. छंद—दोहा चौपाई छंद भारतीय हैं। अपभ्रंश में स्वयंभू की रामायण[१] इससे मिलते जुलते छंद में है। पुष्पदंत कृत महापुराण तथा जसहर चरिउ की घत्ता वाली शैली का विकास संभवतः दोहा चौपाई वाली शैली में हुआ है। गोरखनाथ में चौपाई हमें मिलती है। कबीरदास की रमैनी में दोहा चौपाई का प्रयोग है। ईश्वरदास कृत सत्यवती कथा भी दोहा चौपाई छंद में है।

इस प्रकार हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में व्यवहृत छंद न तो अभारतीय है और न मौलिक।

§२५. संक्षेप में हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य पर भारतीय आख्यानों का यही प्रभाव है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि यह धारा भारतीय ही है।

———

१. लोकयुद्ध (१९४४) में इसका कुछ अंश प्रकाशित हुआ है। यह ग्रंथ राहुलजी का खोजा हुआ है।

भाग ३

# धारा

साहित्यपथ

१

कहानी कला

कथानक:—

§१. मध्ययुग में जब कि कहानी कला का स्वतंत्र विकास नहीं हो पाया था, छोटी बड़ी कहानियाँ आज से भिन्न अपना कोई दूसरा लक्ष्य रखती थीं। इन प्रेमाख्यानक काव्यों का लक्ष्य उपदेश देना है। ये उपदेश तीन वर्गों के हैं :

१. प्रेम पंथ सम्बन्धी
२. साधारण
३. इस्लाम सम्बन्धी

इनमें प्रेम सम्बन्धी उपदेश ही सबसे अधिक हैं। उनका प्रभाव इनके कथानकों पर है। शेष दो का नहीं। इस परिच्छेद में हम हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य के कथानकों की इसी दृष्टिकोण से विवेचना करेंगे।

§२. इन आख्यानों की कथावस्तु प्रेम की कीली पर ही घूमती है। प्रेम के कारण ही इन कथानकों में गति आती है और जीवन आता है।

§३. पद्मावती में पद्मावती और रत्नसेन के प्रेम की कथा है। इस कथा वस्तु से प्रेम को निकाल देने पर कुछ भी शेष नहीं बचता। पद्मावती के पूर्वार्द्ध में रत्नसेन, पद्मावती, नागमती और सुआ, नायक, नायिका, प्रतिनायिका और दूत के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। उत्तरार्द्ध की सारी कथावस्तु मानों इन दोनों प्रेमियों के प्रेम की परीक्षा सी ले रही है। पहले लक्ष्मी परीक्षा लेती है और रत्नसेन सफल होता है[1] फिर मानो अलाउद्दीन परीक्षा लेता है और पद्मावती

१. जायसी ग्रंथावली ( १९३५ ) पृष्ठ २०१-१३

गोरा बादल की सहायता से एक स्त्री होकर भी बल और बुद्धि दोनों से अलाउद्दीन को हराकर अपनी दृढ़ता प्रमाणित करती है। सारे कथानक का सार जैसे अन्त में यही निकलता है कि नायक और नायिका दोनों अनन्य प्रेमी थे और मृत्यु के अन्तिम क्षण तक परस्पर एक दूसरे को प्रेम करते रहे। उनका प्रेम भोग लिप्सा तक ही सीमित नहीं था। पद्मावती के शब्दों में :

औ जो गांठ कंत तुम जोरी।
आदि अंत लहिं जाय न छोरी॥
यह जग काहि जो अछहि न आथी।
हम तुम नाथ दुहूँ जग साथी॥[१]

§४. मधुमालती का प्रेम प्रत्यक्ष दर्शन पर आधारित है। प्रथम मिलन के पश्चात् ही दोनों अलग हो जाते हैं और लेखक उनके प्रेम की परीक्षा सी हमारे सामने ले रहा है। मनोहर तो अपना सारा राजपाट छोड़कर वन वन भटकता है और मधुमालती को मनोहर के लिए शाप तक सहना पड़ता है। उसकी जननी उसे पंछी बना देती है। फिर भी वह अपने प्रेम में दृढ़ है और वन वन घूमती है। इस प्रकार दोनों की प्रेम परीक्षा लेकर लेखक ने दोनों का विवाह करवा दिया है।

प्रेमा की कथा में प्रारम्भ में तो मनोहर की वीरता का परिचय मिलता है और बाद में मनोहर के प्रेम-विषयक संयम का। लेखक दिखलाना चाहता है कि मनोहर मधुमालती से प्रेम करने के कारण मधुमालती का उद्धार करके भी उससे विवाह या प्रेम नहीं करता।

१. वही पृष्ठ ३१२-३३
२. वही पृष्ठ ३४०

§५. चित्रावली का कथानक सुजान और चित्रावली के प्रेम के चारों ओर ही रमा है। इसके लेखक उसमान ने एक दूसरे ढंग से प्रेम की पीर दिखाई है और कथानक का विकास बदल गया है। रत्नसेन का विवाह नागमती से पहले ही हो चुका था उसके पश्चात् वह पद्मावती की चर्चा सुनता है। नागमती काली थी और यदि रत्नसेन गुण श्रवण मात्र से पद्मावती पर आसक्त हो गया तो कोई आश्चर्य की बात न थी। प्रेम की व्यंजना जायसी ने अपने कवि हृदय के द्वारा निस्संदेह अत्यंत तीव्र दिखलाई है। चित्रावली के कथानक में सुजान चित्रावली के चित्र-दर्शन कर प्रेम पंथ का पथिक बन जाता है।[१] जब वह उस पथ पर आरुढ़ है तब उसे नागमती सी काली स्त्री बाधक नहीं बनती वरन् कंचन की बेल और कपूर की कली और अनन्य प्रेमिका कौंलावती मिलती है।[२] यहाँ पर कथानक के नायक के सम्मुख लेखक ने एक गहरी समस्या उत्पन्न कर दी है और प्रेम पंथ के पथिक के लिए एक आदर्श का सृजन किया है। सुजान कौंलावती को भी अपना लेता है परन्तु:

> कुंवर जैस पींजर सुआ छिन छिन मन अकुलाइ।
> गाढ़े बन्धन वचन के निकस न सकै न जाय॥[३]

परंतु वह आदर्श नायक अपने को नीचे तनिक भी नहीं गिराता। वह कौंलावती से सुस्पष्ट रूप से कह देता है कि:

१. चित्रावली, (१९१२) पृष्ठ ३३

२. वही पृष्ठ १२१

उर अंगिरात भांति अति भली

कंचन बेल कपूर की कली

३. वही पृष्ठ १५७

हम तुम मानहिं सबै रस जहं लहु प्रेम सुभाउ
एक प्रेम रस होइ तब जब चित्रावलि पाउ[1]

यहां पर कथानक में कौंलावती की प्रासांगिक कथावस्तु के द्वारा लेखक ने पद्मावती से भिन्न एक नया आदर्श रखा है कि यदि ऐसी परिस्थिति आ जाए तो इस प्रकार आचरण करना चाहिए। वास्तव में लक्ष्मी ने जो परीक्षा रत्नसेन की ली थी वह तो एक साधारण वस्तु थी परंतु सच्ची व्यवहारिक परीक्षा कवि उसमान ने सुजान की कथानक को एक दूसरी भाँति घुमाकर ली है। लेखक ने अपनी इस परीक्षा को सुस्पष्ट कर दिया है। सुजान कौंलावती को पाकर चुप नहीं रह जाता। वह प्रयत्न करता है और अंत में चित्रावली को प्राप्त भी कर लेता है। इस घुमाव का प्रभाव प्रेम पंथ में आकर यह पड़ा कि नायक को उलाहना पहले प्रतिनायिका ने न देकर नायिका ने ही दिया है। और जब चित्रावली उसे इस बात का उलाहना नागमती की भाँति देती है तो सुजान रत्नसेन की भांति कोई बनावटी उत्तर नहीं देता। वह स्पष्ट कहता है :

मन राखै तै अपने बारा।
छूंछी कथा फिरै संसारा।
देखहु पैठि हृदि मम हीया।
सूरज आगे जोत न दिया।[2]

§६. सूरदास लखनवी कृत नलदमन काव्य में सुप्रसिद्ध महाभारत के नलोपाख्यान से कथावस्तु पर्याप्त परिवर्तनों के साथ ले ली गई है। इसमें नल और दमयंती की प्रेम कथा है। नल गुण

१. वही पृष्ठ १५५
२. वही पृष्ठ २०४

श्रवणकर दमयंती से प्रेम करने लगता है।[1] महाभारत में तो दमयंती भी गुण श्रवण कर नल से प्रेम करती है[2] और फिर हंस द्वारा नल का प्रणय संदेश पाती है।[3] परंतु नलदमन का प्रेम पंथी कवि इस दिशा में कई पग आगे बढ़ गया है। नल दमयंती के गुण श्रवण कर उससे प्रेम करने लगा, सूरदास लखनवी के लिए इतना ही पर्याप्त था। दमयंती के हृदय में नल के इस गहरे अनुराग की प्रतिध्वनि हुई और वह इसी कारण नल से प्रेम करने लगी और हंस को लेखक ने व्यर्थ समझकर कथा से बिलकुल ही निकाल दिया है।[4] प्रेम के जादू भरे जगत में भी दमयंती का प्रेम यों तो असंभव सा प्रतीत होता है परंतु लेखक ने एक तर्क उपस्थित कर पाठक को शांत कर दिया है :

जो कोऊ जाके रंग राते।
सोऊ पुनि ताके मदमाते ॥[5]

प्रेम की स्वर्गिकता में विश्वास करनेवाला पाठक अपने कुतूहल को शांत कर लेता है। इस काव्य में लेखक ने विवाह के पश्चात्

१. नल दमन पृष्ठ ३७-४५

२. महाभारत अरण्य पर्व ४५-१६

३. वही अरण्यपर्व ४५-२८-३१

४. कुछ ऐसी ही बात जायसी ने पद्मावती में भी कही है। राजा रत्नसेन पद्मावती के लिए योगी होकर निकल पड़ा है और :

पद्मावति तेहि जोग संजोगा
परी पेम बस गहे बियोगा

जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ८२

जायसी इस प्रतिध्वनि को प्रेम की न मानकर योग की मानते हैं।

५. नल दमन पृष्ठ ५

महाभारत के कथानक के ढांचे को पर्याप्त अंश में ज्यों का त्यों ले लिया है। राजा और रानी दोनों वन-वन मारे मारे फिरते हैं। यद्यपि लेखक ने वहाँ पर कहा है कि—

भूखै पैमी पैम विसारहं
भूखै सती लोग सत हारहं[1]

परंतु लेखक ने आगे इस आर्थिक अभाव को प्रेम के आगे महत्वहीन माना है। नल और दमयंती का प्रेम वहाँ पर पूर्णरूप से दृढ़ एवं स्थिर है। नल के कष्टों की सीमा नहीं परंतु वह पीछे कदम नहीं हटाता। अंत में लेखक ने कथानक को यहाँ वहाँ घुमाव देकर प्रेम पंथ की विजय दिखलाई है।

§७. दुखहरनदासकृत पुहुपावती में राजकुँवर एवं पुहुपावती की प्रेम कथा है। राजकुँवर को लेखक एक बहाने से पुहुपावती के नगर पहुँचाता है और पुहुपावती तो प्रत्यक्ष दर्शन के द्वारा अनुरक्त होती है[2] और राजकुँवर गुण श्रवण के द्वारा।[3] पद्मावती में नायक नायिका दोनों गुण श्रवण के द्वारा एक दूसरे पर अनुरक्त हुए थे और चित्रावली में चित्रदर्शन अनुराग का हेतु है। हंस जवाहिर और इन्द्रावती में स्वप्नजनित प्रेम है। नल दमन में तो जादू का तमाशा सा है। परन्तु पुहुपावती का कथानक एक नई दिशा में अपने चरण बढ़ाता है। यहाँ पर एक के अनुराग का मूल एक है और दूसरे का दूसरा। लेखक ने प्रासंगिक कथावस्तु के सहारे प्रेमी और प्रेमिका की पर्याप्त परीक्षा ली है। पुहुपावती

१. वही पृष्ठ ११०
२. पुहुपावती पृष्ठ ४२
३. वही पृष्ठ ५३

इह सम मन गुनि कै अस भाखा।
जौ न सवति कै मानहु माखा।
वौ तुम्ह हम्हरे संग चलहु कै वैरागी भेस।
मन सकुच जनि आनहु जात विराने देस।[१]

और प्रेम पंथ की पथिक रंगीली अपने प्रियतम के इस आदेश को मान लेती है। वह कहती है :

औ तेहि सवति की मैं बरिहारी।
जेहि पर प्रीतम रीझि तुम्हारी।
वह रानी मैं वोहिकर चेरी।
जेहि पर बहुत प्रीति पिव केरी।[२]

और कुँवर वहाँ से चल पड़ता है। इस प्रकार पुहुपावती में भी प्रेम पंथ की ही विवेचना कथानक का लक्ष्य है और आधिकारिक तथा प्रासंगिक दोनों प्रकार की कथावस्तु एकमात्र प्रेम की कीली पर ही घूम रही हैं।

§८. कासिमशाह दरियावादी कृत हंस जवाहिर में भी हंस और जवाहिर के प्रेम की कहानी है। यह प्रेम इंद्रावती की भाँति स्वप्न दर्शन पर आधारित है।[3] स्वप्न तथा प्रत्यक्ष दर्शन के पश्चात् हंस के प्रेम की परीक्षा होती है और वह सफल है[४] और उसके पश्चात् जवाहिर की।[५] प्रेम पंथ पर आरूढ़ ये दोनों प्राणी अडिग है। इस काव्य

१. वही पृष्ठ २४१
२. वही
३. हंस जवाहिर (१८९८) पृष्ठ ३६
४. वही पृष्ठ १२१
५. वही पृष्ठ १६९

का प्रारम्भिक अंश जिसमें हंस की माँ उसे लेकर अपने वजीर के चंगुल से बचाती है, मुख्य संवेदना को देखते हुए बहुत कुछ व्यर्थ सा प्रतीत होता है। वास्तव में लेखक ने उसे भूमिका के रूप में मनोरंजकता बढ़ाने तथा पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए रखा है।

§९. इन्द्रावती का कथानक इस प्रकार प्रेम पंथ की घटनाएँ हमारे सामने नहीं रखता। सच तो यह है कि इन्द्रावती में चार कथानक हैं। उनमें एक तो आधिकारिक है और तीन प्रासंगिक, चारों कथानक प्रेम पंथ के हैं। आधिकारिक कथावस्तु में प्रेम स्वप्न दर्शन पर आधारित है।[1] प्रासंगिक कथावस्तु जबर्दस्ती जोड़ दी गई है। नायिका विरह में घबड़ा रही है तो उसे धीरज एवं विश्वास बँधाने के लिए दो प्रेम कहानियाँ सुनाई गई और उनसे दो कथानकों का निर्माण हुआ।[2] प्रतिनायिका राजकुँवर की पहली पत्नी भी जब अपने पति के न लौटने पर व्यग्र हो उठती है तो उसे एक कहानी सुनाई गई और इस प्रकार तीसरे प्रासंगिक कथानक का निर्माण हुआ।[3] आधिकारिक कथावस्तु के विकास में इन प्रासंगिक कथानकों का कोई हाथ नहीं है परन्तु प्रेमपंथ का स्पष्टीकरण इस प्रासंगिक कथावस्तु से पर्याप्त हो जाता है। कहानी कला के दृष्टिकोण से कथावस्तु कमजोर है परन्तु कवि के लक्ष्य को ध्यान में रखकर देखने पर वह महत्वपूर्ण हो जाती है।

इन्द्रावती में आधिकारिक कथावस्तु से दृढ़ रूप में बँधी हुई एक प्रासंगिक कथावस्तु दुर्जन की है।[4] दुर्जन का उपाख्यान प्रेमपंथ

१. इंद्रावती (१९०६) पृष्ठ १०

२. वही पृष्ठ १००

३. वही पृष्ठ ६२

४. इंद्रावती ( १९०६ ) पृष्ठ ८१

की तीव्रता दिखलाने के लिए ही रचा गया है। दुर्जन की पत्नी ने कथानायक राजकुँवर के प्रेम की परीक्षा ली है।[1] वास्तव में यह परीक्षा अत्यन्त हल्की है। प्रेमपंथ का पथिक उस परीक्षा में सफल हो गया और लेखक ने संतोष की एक सांस ले ली। इस कथानक में और चित्रावली के कथानक में भी नायिका की अपने प्रणय में दृढ़ता तो अवश्य दिखलाई गई है परन्तु उसके प्रेम की परीक्षा नहीं ली गई।

§१०. यदि इन समस्त हिन्दी प्रेमाख्यानकों की मुख्य संवेदना पूछी जाय तो यही कहा जाएगा कि सच्चा प्रेम स्वर्ग है, वह कभी निष्फल नहीं जाता। उसका हेतु कुछ भी हो परन्तु प्रेम सदा प्रेम ही रहता है। वह बड़ी से बड़ी आपत्ति का सामना सफलता से कर सकता है। यदि समस्त हिन्दी प्रेमाख्यानक की शिक्षा पूछी जाए तो हम कह सकते हैं कि मनुष्य और स्त्री को सच्चा प्रेम करना चाहिए। संक्षेप में इन कथानकों का सारांश यही है।

§११. इसी कारण ये सारे के सारे कथानक घटना प्रधान न होकर चरित्र प्रधान हैं। पद्मावती में रत्नसेन और पद्मावती का चरित्र दिखलाया गया है। रत्नसेन पद्मावती से प्रेम करता है। उसका प्रेम कितना महान् है इसी बात की परीक्षा से कथानक का विकास होता है। पहले राजा चित्तौड़ से सर्वस्व त्यागकर चलता है। पद्मावती के लिए सर्वस्व त्याग उसके प्रेम की पहली परीक्षा है। उसके पश्चात् एक बाधा के रूप में सात समुद्र आते हैं। गजपति उसे समझाता है:

.... .... ....

मारग कठिन जाब केहि भाँती।
सात समुद्र असूझ अपारा।

1. वही पृष्ठ ८२

मारहिं मगर मच्छ बरियारा ।
उठै लहर नहिं जाइ संभारी ।
भागहि कोइ निबहै बैयारी ।[1]

तो प्रेमपंथ का पथिक राजा अपनी स्वाभाविक दृढ़ता से उत्तर देता है :

हौं पद्मावति कर भिखमंगा ।
दीठि न आव समुद औ गंगा ।
जेहि कारन जिउ काधरि कंथा ।
जहाँ सो मिलै जावँ तेहि पंथा ।[2]

और आगे बढ़ जाता है। उसके पश्चात् अन्य बाधाएँ आती हैं। उनको राजा कितने धैर्य और कितनी स्थिरता से पार करता है इसीमें कथावस्तु का विकास होता है। लेखक की कहानी कला कमजोर है। इस कारण वह कहीं कहीं पर घटनाएँ जोड़ने में चरित्र चित्रण को भूल गया। लेखक चाहता है कि रत्नसेन नागमती का संदेश सुनकर घर लौट आए। लेखक यह भी चाहता है कि गंधर्व-सेन को यह पता न चल सके कि रत्नसेन का विवाह नागमती से पहले हो चुका है और वह उसका संदेश सुनकर चित्तौड़ लौट रहा है। और वह चित्तौड़ लौट भी जावे। इसी कारण कथानक के इस विकास में वह रत्नसेन से झूठ बुलवाता है। यहाँ पर कथानक के एक घुमाव के लिए लेखक चरित्र चित्रण में एक बड़ी भूल कर गया और ऐसा प्रतीत होने लगा है मानो लेखक का उद्देश्य कथानक का विकास करवाना ही है। परन्तु एक स्थल को लेकर कोई विशेष

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ६७

२. वही पृष्ठ ६८

बात नहीं कही जा सकती। पद्मावती का वह स्थल अपवादस्वरूप ही माना जा सकता है। चित्तौड़ लौटने में तो स्पष्ट ही राजा का चरित्र छिपा है। राह में राजा को जो जो कष्ट हुए हैं उनमें और लक्ष्मी वाली घटना में लेखक का लक्ष्य रत्नसेन के चरित्र का चित्रण है। पद्मावती और नागमती के वाद विवाद में लेखक का कोई दूसरा लक्ष्य नहीं है। उसके बाद पद्मावती के चरित्र को चित्रित करने में लेखक लीन हो जाता है। अलाउद्दीन राजा को बन्दी बनाकर दिल्ली ले गया परन्तु रानी पद्मावती उसी प्रकार दृढ़चित्त है। देवपाल और अलाउद्दीन की दूतियों को फटकारकर वह निकाल देती है। अलाउद्दीन को रानी अपनी बुद्धि से हरा देती है। अन्त में देवपाल युद्ध फिर हमें राजा के चरित्र की मनोरम झाँकियाँ दिखा रहा है। यहाँ पर कथानक समाप्त हो गया परन्तु जौहर खंड की अलग रचना कर लेखक पद्मावती और नागमती के चरित्र को और स्पष्ट हमारे सामने कर देता है।

इस प्रकार पद्मावती का कथानक घटना प्रधान न होकर चरित्र चित्रण प्रधान है। यदि घटना प्रधान कथानक लेखक रखना चाहता तो मान सरोदक खंड[1] राजा गजपति संवाद खंड,[2] पार्वती महेश खंड,[3] रत्नसेन साथी खंड,[4] नागमती वियोग खंड,[5] नागमती पद्मा-

१. वही पृष्ठ २७-३०

२. वही पृष्ठ ६७-६

३. वही पृष्ठ १०२-६

४. वही पृष्ठ १६६

५. वही पृष्ठ १७२-८०

वती विवाद खंड, बादशाह दूती खंड[२] और पद्मावती नागमती सती खंड[३] न होते। पद्मावती नागमती सती खंड की घटना एक ही वाक्य में लेखक राजा रत्नसेन बैकुंठवास खंड में कह देता और अन्य कई खंड भी इतने विस्तृत न होकर छोटे हो जाते।

§१२. मधुमालती का कथानक भी घटना प्रधान न होकर चरित्र प्रधान है। नायक नायिका के प्रत्यक्ष दर्शन कर परस्पर एक दूसरे से प्रेम करने लगने पर दोनों का वियोग करवाकर लेखक ने कथानक को विकसित करवाया है, दोनों अपने अपने प्रेम में दृढ़ हैं, इसीमें कथानक आगे बढ़ता है। माँ श्राप देती है। मधुमालती उसे सहती है, वह प्रेम नहीं छोड़ती। प्रेमा उद्धार की कथा प्रारम्भ में मनोहर की वीरता एवं आदर्शवादिता के प्रदर्शन के लिए और फिर मनोहर के चरित्र की परीक्षा के लिए है।

§१३. चित्रावली के कथानक के विकास में भी लेखक ने चरित्र चित्रण को ही प्रधान रखा है। सुजान ने चित्रावली का चित्र देखा है। वह सच्चा प्रेमी है। इस कारण उसे पाने का प्रयास करता है। इसी प्रयास में कथानक का विकास होता है। लेखक घटनाएं सुजान के चरित्र चित्रण के लिए तोड़ता-मोड़ता चलता है। अजगर खंड तो एकमात्र इसी लक्ष्य से लिखा गया है। लेखक यह दिखलाना चाहता है कि :

.... .... ....

१. वही पृष्ठ २२०-६

२. वही पृष्ठ ३१२-५

३. वही पृष्ठ ३३९-४०

४. चित्रावली (१९१२) पृष्ठ ११४-७

उठी खात ओहि ओदर आगी।
परयौ उलटि भा उदर दुहेला।
डारिसि उगिलि जेत हुत लीला।

भाजा अजगर जीउ ले परा कुँअर बिसंभार।
जे तापे बिरहा अगिन तेहि को निजवै पार।[1]

उसके पश्चात हस्ती खंड[2] तथा कौंलावती खंड[3] की रचना फिर सुजान के चरित्र को सुस्पष्ट करने के लिए हुई है।

§१४. सूरदास लखनवी के नलदमन काव्य में भी नल और दमन के चरित्र की ही प्रधानता है। यदि एकमात्र घटना प्रधान काव्यों की रचना करना हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य का लक्ष्य होता तो समस्त काव्यों की रूपरेखा ही दूसरी होती और कथानकों का कम से कम आधा भाग निकाल दिया गया होता।

§१५. दुखहरनदास कृत पुहुपावती के कथानक में भी लेखक ने राजकुँवर एवं पुहुपावती के चरित्र को ही प्रधानता दी है घटनाओं को नहीं। सारी की सारी प्रासंगिक कथावस्तु चरित्र चित्रण के लिए ही रची गई है। रंगीली एवं रूपवंती दोनों ही राजकुँवर के चरित्र को हमारे सामने स्पष्ट करती हैं।

§१६. इंद्रावती के कथानक का विकास भी चरित्र चित्रण के ही हेतु हुआ है। यदि घटना प्रधान काव्य रचना नूर मुहम्मद का लक्ष्य होता तो वह प्रारम्भ में ही न कहता :

१. वही पृष्ठ ११६

२. वही पृष्ठ ११९-२०

३. वही पृष्ठ १२१-३०

एक रात सपना मैं देखा।
सिन्धु तीर वह तपिय सरेखा।
अहै ठाढ़ मोहि लीन्ह बुलाई।
कहेसि कि सिन्धु महँ बूड़हु आई।
संसा छांडि पोढ़ि कै हीया।
मोती काढ़हु होइ मरजीया।[1]

इस कथन से स्पष्ट है कि कथानक संशय को छोड़कर और हृदय को दृढ़ बना मोती निकालने का है केवल यों ही मोती निकालने का नहीं। कथानक की दुर्जन संबंधी प्रारंभिक कथावस्तु राजकुँवर के चरित्र चित्रण के लिए ही रची गई है।

§१७ ये चरित्र प्रधान काव्य अपने अंत के दृष्टिकोण से दो वर्गों में बंटते हैं:—

सुखांत
दुखांत

§१८ सुखांत काव्यों में हम मधुमालती, चित्रावली और पुहुपावती को ले सकते हैं। ये काव्य स्पष्ट रूप से सुखांत है।

§१९ दुखांत काव्य दो वर्गों में बंटते हैं:—

वे काव्य जो स्पष्ट रूप से दुखांत है।

वे काव्य जो वास्तव में तो सुखांत हैं परन्तु दुखांत जैसे दिखलाई पड़ते हैं।

§२० पहले वर्ग में पद्मावती को ले सकते हैं। अंत में रत्नसेन प्राण दे देता है और नागमती एवं पद्मावती दोनों ही जौहर की ज्वाला में अपना शरीर भस्म कर देती हैं और कवि गहरे विषाद के साथ कहता है:—

१. इंद्रावती ( १९०६ ) पृष्ठ ४

रातीं पिउ के नेह गईं सरग भएउ रतनार ।
जो रे उवा सो अथवा रहा न कोई संसार ।
वे सहगवन भईं जब जाई ।
बाद साह गढ़ छेंका आई ।
तौ लगि सो अवसर होइ बीता ।
भए अलोप राम औ सीता ।
आइ साह जौं सुना अखारा ।
होइगा रात दिवस उजियारा ।
छार उठाइ लीन्ह एक मूठी ।
दीन्ह उड़ाइ पिरथिमी झूठी ।[1]

किन्तु

जौं लहि ऊपर छार नहिं परै ।
तौ लहि यह तिस्ना नहीं मरै ।

इसी कारण

भा धावा, भइ जूझ असूझा ।
बादल आइ पवँरि पर जूझा ।[3]

और

जौहर भईं सब इस्तिरी पुरुष भए संग्राम ।
बादसाह गढ़ चूरा चितउर भा इस्लाम ।[4]

१. जायसी ग्रंथावली ( १९३५ ) पृष्ठ ३४०
मुहम्मद साहब ने भी बदर के युद्ध के समय एक मुट्ठी मिट्टी शत्रुओं पर फेंकी थी । पीछे विजय प्राप्त की । कुरान सार ( १९३९ ) पृष्ठ १५१
२. जायसी ग्रंथावली ( १९३५ ) पृष्ठ ३४०
३. वही
४. वही

पाठक की कोई भी सहानुभूति अलाउद्दीन के साथ नहीं है। इस कारण जौहर का अमानुषिक कार्य भी पाठक को एक नाटकीय शांति एवं संतोष देता है और भए अलोप राम औ सीता [१] पढ़कर पाठक के चित्त को चैन मिल जाता है। अलाउद्दीन की विजय पाठक को कोई प्रसन्नता नहीं देती और कथानक दुखांत हो जाता है। स्मरण यह रखना चाहिए कि फारसी प्रेमाख्यानक मसनवियों की भाँति ये काव्य दुखांत न थे। इनमें नायक नायिका विवाह एवं मिलन हो जाते हैं। प्रेम पंथी कवि अलाउद्दीन के लिए कोई भी सहानुभूति नहीं दिखला सकता है। पद्मावती के दुखांत होने के मूल में पाठक की सारी सहानुभूति जीतनेवाले पात्रों की मृत्यु है।

§२१ दूसरे वर्ग में हम इन्द्रावती, नलदमन एवं हंस जवाहिर को रख सकते हैं। इन आख्यानों में लेखक ने नायक नायिका मिलन दिखा दिया है। नलदमन में कथा और आगे बढ़ाई गई है और नल एवं दमयन्ती दोनों बड़े बड़े कष्टों को पार करते हैं और फिर मिल जाते हैं। परंतु लेखक इतने पर संतोष नहीं करता। वह नल और दमयंती को वयोवृद्ध बनाकर उनकी मृत्यु दिखलाता है। यही परिस्थिति इन्द्रावती एवं हंस जवाहिर में है। कुरान को पढ़ने वाले कवि संसार की नश्वरता को अधिक चित्रित करते हैं और और इसी कारण प्रायः मृत्यु में ही अपनी कहानी को समाप्त करते हैं।

§२२ इन समस्त सुखांत एवं दुखांत कथानकों में समय के क्रम से कहानी कही गई है। नायक नायिका के जन्म से प्रायः कथानक प्रारंभ किए गए हैं और प्रायः उनकी मृत्यु पर ही परिसमाप्ति की गई है।

१. वही

पद्मावती के कथानक का प्रारंभ यह है:—

सिंघलदीप कथा अब गावौं।
औ सो पदमिनि बरनि सुनावौं ॥[1]

इस प्रकार प्रारम्भ कर लेखक प्रत्येक घटना को काल के क्रम से कहता गया है और अन्त में जाकर उसने कथानक को समाप्त इन शब्दों में किया है :

जौहर भई सब इस्तिरी पुरुष भए संग्राम।
बादशाह गढ़ चूरा चितउर भा इस्लाम ॥[2]

चित्रावली का लेखक भी प्रारम्भ में कहता है :

आदि नगर नैपाल अनूपा।
तहाँ राउ धरनीधर भूपा ॥[3]

और आगे लेखक प्रत्येक घटना को एकमात्र काल-क्रम से वर्णित कर अन्त में समाप्त करता है :

कुंवरहि राजपाट बैसाई।
बैठे नृप विधिना लौ लाई ॥
राउत राना आइ जोहारे।
दे पहिरावरि सब प्रतिपारे ॥
मन्दिर मन्दिर भयउ बधावा।
घर आंगन सब भएउ सुहावा ॥[4]

१. वही पृष्ठ १२
२. वही पृष्ठ ३४०
३. चित्रावली (१९१२) पृष्ठ १५
४. वही पृष्ठ २३६

और

चित्रावलि कौलावति बारी।
बिलसहि अपनी अपनी पारी॥
निसि बासर आनंद सुख होई।
दुख की चरचा करै न कोई॥
देख तिया सब उचक रहाई।
जनहु दुओ एक जननि की जाई॥
धन माता धन पिता सबाई।
मानुख कोख अपसरा आई॥

पान फूल सुख भोग लै चन्दन बास बसाहिं।
सुख सर कुरलहि हंस ज्यों निसि दिन केलि कराहिं॥[१]

और फिर कथा समाप्त हो जाती है।

पुहुपावती की कथा भी इस प्रकार प्रारम्भ होती है :

बसै राजपुर उत्तम देसा।
परजापति तहं आदि नरेसा॥
महाराज सकबन्धी राजा।
अगिनति सभ दल बादर साजा॥[२]

और आगे घटनाएँ कालक्रम से लिखी गई हैं।

इन्द्रावती का प्रारम्भ है :

राजा एक कलिंजर ठाऊँ।
रहा सो निर्प को भूपति नाऊँ॥

१. वही

२. पुहुपावती पृष्ठ १६

तेहि घर पुत्र लीन्ह अवतारा।
दीपक सोभा घर उजियारा॥[1]

और अन्त है :

राज करत वह प्रेमी राजा।
दुखी भएउ दुख सौं सुख भाजा।
हारे बहुत चिकित्सक लोगै।
औषद कहाँ मृत्यु के जोगै।[2]

और

वह दुख कुंवर तजा संसारा।
गयउ न कोऊ संग पियारा।
इन्द्रावति औ सुंदर रानी।
पिय को मृत्यु दोउ कुम्हिलानी।
अन्त प्रान दोऊ सो छूटा।
छार भई जग नाता टूटा।
लम्म ग्रीव है हस्ती गए न सेवक साथ।
रहा दरब सब ढाबै गए झार दोउ हाथ।[3]

§२३. यही विशेषता इन समस्त कथानकों में समान रूप से पाई जाती है इसके मूल में दो कारण प्रतीत होते हैं :

१. मध्ययुग की अविकसित कहानी कला
२. हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य का ध्येय

मध्ययुग में लेखक का ध्यान घटनाओं की व्यंजना एवं ध्वनि

१. इंद्रावती ( १९०६ ) पृष्ठ ७
२. इंद्रावती पृष्ठ ३०२
३. वही

पर नहीं रहता था। लेखक इस बात की कदापि परवाह नहीं करता कि कौन सी घटना को किस प्रकार रखने से कैसा प्रभाव उत्पन्न होगा और किस घटना को कहाँ पर रखने से सबसे अधिक प्रभा-वशाली कथानक हो जाएगा। वह तो नानी की कहानी की भाँति ही कथानक को हमारे सामने बिखेरता चलता है। फलतः आज के पाठक के लिए मध्ययुग का कथा साहित्य एक प्रकार से मनोरंजन विहीन सा लगता है।

§२३. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य का ध्येय प्रेमपंथ का निरूपण था। कथानक में कवियों ने प्रेम की व्यंजना दी है। इसी कारण कथानक की कला पर लेखकों का ध्यान न था। सच तो यह है कि मध्ययुग में स्वतन्त्र कहानी-कला का विकास नहीं हो सका था। उस समय कथा का लक्ष्य मनोरंजन से कुछ ऊँचा होता है। इस कारण कहानी कला पर इनका ध्यान ही न था।

§२४. इन प्रेमपंथ के स्पष्टीकरण करने के निमित्त लिखे गए कथानकों के संघर्ष का प्रारंभ नायक नायिका के अनुराग से होता है। और उस संघर्ष का विकास भी अनुराग से ही होता है। कहीं पर भी प्यार का उत्तर घृणा अथवा उपेक्षा में नहीं दिया गया। रत्नसेन पद्मावती से अनुराग करता है, पद्मावती उसका उत्तर अनुराग में ही देती है। सुजान चित्रावली से अनुराग करता है, चित्रावली ने उसका उत्तर अनुराग में ही दिया है। राजकुंवर इंद्रावती से प्रेम करता है, इंद्रावती उसका उत्तर प्रेम में ही देती है। हंस जवाहिर से प्रणय करता है, उसका उत्तर भी प्रणय में ही मिलता है। नल दमन में तो कवि एक पग आगे और बढ़ गया है। वह कहता है कि—

जो कोऊ जाके रंगराते।
सोऊ पुनि ताके मदमाते।[1]

और इसी सिद्धांत के सहारे दमयन्ती के हृदय में नल के लिए अनुराग अपने आप उत्पन्न हो जाता है। प्रेमपंथी कवियों से दूसरी आशा हो ही क्या सकती थी।

§२५. ये प्रेम के कथानक सारे के सारे राजदरबारों के हैं।

पद्मावती का नायक रत्नसेन चित्तौड़ का राजा है और पद्मावती सिंहल की राजकुमारी। मधुमालती का नायक कनेसर के राजा का पुत्र है और नायिका महारस देश की राजकुमारी। चित्रावली का सुजान नैपाल नरेश धरनीधर का पुत्र है और चित्रावली रूपनगर के राजा चित्रसेन की कन्या। हंस रूम के बादशाह का पुत्र है और जवाहिर चीन की राजकुमारी। पुहुपावती में राजकुँवर राजपुर नरेश प्रजापति का पुत्र था और पुहुपावती अनूपगढ़ के अधिपति अंबरसेन की राजकन्या। नल उज्जैन के राजा थे और दमयंती कुन्दनपुर नरेश भीमसेन की राजकुमारी। इन्द्रावती में राजकुँवर कालिंजर के राजा भूपति का पुत्र था और इन्द्रावती आगमपुर की राजकुमारी थी। इसी कारण इनमें युद्ध संबंधी घटनाएँ हैं।

§२६. इन सारे राजकुमारों एवं राजकुमारियों वाले काव्य न तो कथानक से प्रारंभ ही होते हैं और न उनकी परसमाप्ति ही कथानक से होती है। प्रत्येक के प्रारम्भ में एक स्तुति खंड रहता और अंत में कथा समाप्त कर कवि कुछ अपनी बात कहने लगता है। कथानक की इस उपेक्षा के मूल में भी उपर्युक्त मध्ययुग की कहानी कला एवं इन कवियों का लक्ष्य विशेष दोनों कारण ही हैं।

१. नल दमन पृष्ठ ५८

§२७. मध्ययुग के कथानकों की भाँति इन कथानकों में भी पशु-पंछी एवं अमानुषिक शक्तियाँ यत्र तत्र भाग लेती हुई दिखलाई पड़ती हैं। पद्मावती में हीरामन, नागमती का पंछी, राक्षस, शिव, पार्वती और लक्ष्मी हैं। चित्रावली में पंछी, दानव, शिव और पार्वती हैं। हंस जवाहिर में परियां भी हैं। इन्द्रावती में भी पंछी है और पुहुपावती में राक्षस। नल दमन में इंद्र, वरुण, कलियुग, अग्नि, एवं सर्प हैं। मध्ययुग के कथानकों की वे अपनी विशेषता है कि वह मानवी एवं अमानवी दोनों प्रकार के पात्रों के सहारे विकसित होते हैं। वहाँ पशु पंछियों में कोई भेद नहीं है। हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में भी ये पंछी एवं अमानवी पात्र एकदम मानवीय आचरण करते हैं। इनकी उपस्थिति से कथानक के विकास में बड़ी सहायता मिलती है। पद्मावती में सुआ ही सारे प्रेम व्यापार के मूल में है। यदि सुआ न होता तो रत्नसेन के हृदय में प्रेम का प्रारम्भ ही न होता। इसी कारण जायसी ने अन्त में हीरामन के महत्व को स्पष्ट घोषित कर दिया है :

गुरू सुआ जेई पंथ दिखावा
बिना गुरू को निरगुन पावा[1]

हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यकार नायक नायिका के बीच दूत कार्य इन पंछियों से प्रायः लेते हैं। परन्तु नलदमनकार सूरदास इस नियम के एक गहरे अपवाद हैं। महाभारत में जहाँ से उन्होंने यह कहानी ली है, हंस पक्षी दूत के रूप में विद्यमान है। परन्तु कवि ने उसे निकाल दिया है। उसके मत के अनुसार प्रेम स्वतः पल्लवित होता है।

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ३४१

§२८. हिन्दी के ये प्रेमपंथी कवि प्रेम से अपने कथानकों को भरते रहे और जीवन की एक दूसरी गहरी समस्या रोटी को भूल गए। यद्यपि सूरदास लखनवी ने स्वीकार किया है कि बिना भोजन के प्रेम नहीं हो सकता[1] परन्तु हमारे अन्य कवि इसको भूल गए हैं। सच तो यह है कि विश्व के यथार्थ से कुछ दूर ये कवि अपने प्रेमपंथ का निर्माण कर रहे थे। इस कारण इस समस्या को विस्मृत कर बैठे। और यह भी संभव है कि वह उस युग में बड़ी समस्या ही न हो।

§२९ इन सारे कथानकों का एक ही लक्ष्य होने के कारण लगभग एक समान ही विकास होता है। नायक तथा नायिका दोनों गुण-श्रवण, चित्र-दर्शन, स्वप्न-दर्शन अथवा प्रत्यक्ष-दर्शन के द्वारा एक दूसरे से गहरा प्रेम करने लगते हैं। उनका यह प्रणय व्यापार उनके अभिभावकों से छिपा रहता है और गुप्त रूप से दोनों मिलते हैं। फिर अभिभावकों की सम्मति भी प्राप्त हो जाती है। किसी किसी आख्यान में तो इसी स्थल पर विवाह हो जाता है और किसी किसी में नायिका एवं नायक बिछुड़ जाते हैं और कुछ संकटों के पश्चात् दोनों का मिलन होता है। प्रायः कहानी यहीं पर समाप्त हो जाती है। जिन काव्यों में विवाह शीघ्र हो जाता है उनमें नायक एवं नायिका फिर बिछुड़ जाते हैं और अंत में फिर मिलते हैं।

§३०. प्रेम की पीर से भरा हुआ पद्मावती का कथानक दो भागों में बँटता है :

१. पूर्वार्द्ध षटऋतु वर्णन खंड तक
२. उत्तरार्द्ध नागमती वियोग खंड से आगे तक

१. नल दमन पृष्ठ ११०

पूर्वार्द्ध में प्रेम की पीर एवं प्रेम पंथ की यात्रा का वर्णन है। उसे पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है मानो हम कोई परियों की कहानी पढ़ रहे हों, रत्नसेन एक योगी का वेश धरकर पद्मावती को प्राप्त करता है, इसमें रत्नसेन की दृढ़ता वर्णित है। उत्तरार्द्ध फिर दो भागों बँटता है:

१. राघवचेतन देश निकाला खंड से पूर्व
२. राघवचेतन देश निकाला खंड के पश्चात्

पहले भाग में कथानक अत्यन्त शिथिल है। प्रेम पंथ के दृष्टिकोण से उसका अत्यधिक महत्व है इस कारण लेखक ने उसको पर्याप्त विस्तार से दिया है। दूसरा भाग कथानक की द्रुत गति से भरा हुआ है। वह फिर दो उपभागों में बँटता है:

१. पद्मावती मिलन खंड तक
२. उससे आगे

पद्मावती मिलन खंड तक पद्मावती रत्नसेन मिल गए हैं और उसके पश्चात् फिर सदा के लिए बिछुड़ गए हैं।

पद्मावती का पूर्वार्द्ध जैसा कि हमने ऊपर बतलाया है प्रेम पंथ के दृष्टिकोण से अधिक महत्वपूर्ण है। उसमें उत्तरार्द्ध की अपेक्षा घटना कम है। लेखक ने फिर भी उसके महत्व को दृष्टिकोण में रखते हुए पर्याप्त विस्तार दिया है। उत्तरार्द्ध में घटनाएं अधिक हैं इसी कारण वह भागों तथा उपभागों में बँट गया है। प्रेमपंथ की व्यञ्जना जैसी पूर्वार्द्ध में संभव थी वैसी यहाँ पर संभव नहीं है। यहाँ पर तो प्रेमियों की परीक्षा ली जा रही है। पहले अलाउद्दीन पद्मावती को भय दिखाते हुए माँगता है। उसका क्रोधिभिभूत रत्नसेन से दूत स्पष्ट कहता है:

> जिनि जानसि यह गढ़ तोहि पाहीं।
> ताकर सबै तोर कछु नाहीं।

जेहि दिन आइ गढ़ी कहँ छेकहि ।
सरबस लेइ हाथ को टेकहि ।[1]

परन्तु राजा भयभीत नहीं और सुल्तान को युद्ध के लिए आमंत्रित करता है। इसीसे उत्तरार्द्ध के दूसरे भाग का विकास हुआ है। बादशाह चढ़ाई करता है। जब चढ़ाई में असफल होकर केवल धन मात्र पाकर शांत होने की शर्त को वह भेजता है तो रत्नसेन स्वीकार कर लेता है। यहाँ पर कथानक आगे बढ़ाकर पद्मावती की विवाहोपरान्त परीक्षा लेने के निमित्त लेखक ने प्रेमी रत्नसेन के चरित्र को कुछ हलका सा दिखलाया है। वह उस शर्त को स्वीकार कर लेता है। फिर पद्मावती की परीक्षा होती है। वह स्त्री होकर बलबुद्धि दोनों में अलाउद्दीन को हरा देती है। उसके पश्चात् फिर राजा के सत् की परीक्षा होती है और वह देवपाल युद्ध में मारा जाता है। उसके पश्चात् जौहर खंड में लेखक ने पद्मावती एवं नागमती के प्रेम की सच्चाई हमारे सामने रखी है। प्रेम-पंथ की व्यंजना जैसी अपूर्व इस घटना में हुई है वैसी समस्त हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में अन्यत्र एकदम दुर्लभ है। पद्मावती के शब्द

औ जो गाँठ कंत तुम जोरी
आदि अन्त लहि जाय न छोरी[2]

प्रेमपंथ की महानता पाठक के सामने अत्यन्त स्पष्ट कर देते हैं। पद्मावती का कथानक इस दृष्टिकोण से अत्यन्त सफल है। इतनी सफलता अन्य किसी भी हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य को नहीं मिल सकी है।

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ २५१
२. वहीं पृष्ठ ३४०

§३१. मधुमालती में तो कथानक के दो हिस्से हैं। एक तो मनोहर मधुमालतीवाला और दूसरा प्रेमा एवं ताराचन्दवाला। पहला आधिकारक है और दूसरा प्रासंगिक। आरम्भ में तो यह ज्ञात नहीं होता कि दोनों दो कथानक हैं परन्तु अंत में दोनों का द्वैत स्पष्ट होने लगता है।

मधुमालती में घटना वैचित्र्य कम है। घटनाओं को संजोया नहीं गया और न कौतूहल का तत्व बढ़ाने के लिए विशेष रूप से उलझाया ही गया है। वह अपनी साधारण गति से चलता है। मनोहर घर से निकला तो उसे प्रेमा मिली। उसने सारा रास्ता साफ कर दिया। वहाँ पर मनोहर फिर मधुमालती से मिला। फिर तो जैसे वह प्रयत्न करना एकदम छोड़ देता है। भाग्यवश मधुमालती पंछी के रूप में आकर उसके जाल में फँस जाती है और फिर प्रेमा दोनों का विवाह करवा देती है।

इस प्रकार मधुमालती का कथानक एक चौरस मैदान की भाँति है।

§३२. उसमान गाजीपुरी कृत चित्रावली का कथानक पद्मावती के कथानक की भाँति इस प्रकार विभक्त नहीं हो सकता। कथानक के ढाँचों की चर्चा करते हुए हमने ऊपर दो प्रकार के ढाँचे बतलाए हैं और यह दूसरे प्रकार के ढाँचों में है। इस कथानक में उत्तरार्द्ध एवं पूर्वार्द्ध जैसे दो सुस्पष्ट भाग नहीं होते। उसे हम निम्नलिखित भागों में विभक्त कर सकते हैं :

१. सुजान जन्म सम्बन्धी कथा भाग
२. सुजान चित्रावली परस्पर आसक्ति सम्बन्धी कथा भाग
३. सुजान चित्रावली मिलन प्रयत्न सम्बन्धी कथा भाग
४. कौलावती सुजान सम्बन्धी कथा भाग
५. सुजान स्वदेश गमन सम्बन्धी कथा भाग

इनमें सुजान और चित्रावली सम्बन्धी कथा भाग आधिकारिक है और शेष प्रासंगिक। प्रासंगिक कथा भागों में कौंलावती सुजान सम्बन्धी कथा भाग प्रमुख है। वास्तव में कथाकार का लक्ष्य सुजान और चित्रावली का विवाह ही है। परन्तु बीच में कौंलावती की घटना को लाकर लेखक ने नायक की प्रेमपंथ पर आरूढ़ता की परीक्षा ली है। इस विशेषता की विवेचना हम ऊपर कर चुके हैं।

§३३. सूरदास लखनवी कृत नलदमन काव्य में कथानक महाभारत से लिया गया है। एक सुप्रसिद्ध एवं महाकाव्यकार की लेखनी से निकला हुआ यह कथानक खूब कसा हुआ है। विकास के दृष्टिकोण से यह दो भागों में बँटता है :

१. देश निकाला से पहिले

२. उसके पश्चात्

वास्तव में दूसरा भाग ही अधिक मनोरंजक है। पहले भाग का कथानक तो बहुत कुछ पद्मावती से मिलता है। इसमें दमयन्ती के प्रेम की परीक्षा ली गई है, शक्ति की नहीं। दूसरे भाग में जो आपत्तियाँ इन प्रेमियों को सहनी पड़ी हैं वे प्रेम से सम्बन्धित नहीं हैं। पद्मावती में अलाउद्दीन पद्मावती को चाहता था इस कारण प्रेमियों को कष्ट पहुँचा। नल दमन में कलियुग दमयन्ती को प्रेम नहीं करता। दमयन्ती के पिता ने उसका अपमान किया है इस कारण वह असन्तुष्ट है और कष्ट देता है। कथानक की यह छोटी सी मौलिकता है।

§३४. पुहुपावती का कथानक अपेक्षाकृत अधिक जटिल है। इसका विकास चित्रावली के कथानक की भाँति हुआ है। नायक राजकुँवर नायिका पुहुपावती को प्राप्त करना चाहता है। वह उसे प्राप्त करनेवाला ही है कि एक कारण से दोनों का बिछोह हो जाता है। इस बीच में नायक के दो विवाह होते हैं और उसके

पश्चात् वह नायिका से मिलता है। इस प्रकार कथानक निम्नलिखित छः भागों में बँटता है :

१. बिछोह खंड तक
२. बिछोह खंड से दूती खंड तक
३. बैरागी खंड से दानौ खंड तक
४. सातौ द्वीप खंड से सुखकर बारहमासा खंड तक
५. रूपवंती विरह खंड से त्रिकाल मास खंड तक
६. कथासम्पूर्ण खंड तक

पहले भाग में नायक नायिका मिलकर बिछुड़ जाते हैं। दूसरे में नायक का विवाह एक स्त्री से हो जाता है और नायिका द्वारा भेजी हुई दूती नायक से मिलती है। तीसरे में नायक नायिका के देश के लिए चलता है परन्तु राह में उसे एक दानव उठा ले जाता है और उसका विवाह एक दूसरी स्त्री से करवा देता है। चौथे में फिर वह नायिका के देश के लिए चलता है और उससे उसका विवाह हो जाता है। पाँचवें में वह अपनी दोनों विवाहित स्त्रियों से मिलता है। छठवें में उसके सत् की परीक्षा ली जाती है और उसमें वह सफल है और कथानक समाप्त हो जाता है। द्रष्टव्य यह है कि इस कथानक में विवाह के पश्चात् राजकुँवर के प्रेम की परीक्षा नहीं की जाती वरन् सत् की की जाती है यद्यपि परीक्षा का ढंग पद्मावती से मिलता जुलता सा है। पद्मावती में अलाउद्दीन रत्नसेन से पद्मावती को माँगता है। पुहुपावती में ऋषि राजकुँवर से पुहुपावती को माँगता है। यहाँ तक दोनों में समानता है परन्तु इसके आगे परिस्थिति बदल जाती है। रत्नसेन उत्तर देता है :

का मोहि सिंह दिखावसि आई।
कहौं तौ सारदूल धरि खाई।

भलेहि साह पुहुपीपति भारी।
मांग न कोउ पुरुष की नारी।

*　　　*　　　*

जो पै घरनि जाय घर केरी।
का चितउर का राज चँदेरी।

*　　　*　　　*

दरब लेइ तौ मानौं सेव करौं गहि पाय।
चाहै जो सो पदमिनी सिंहल दीपहिं जाय।[1]

और राजकुँवर उत्तर देता है :

भलेहि गुसाईं किरपा कीन्हा।
मनसा दान माँगि कै लीन्हा।
पुहुपावति जो प्रान पियारी।
तुम कहँ आनि देहुँ सो नारी।

*　　　*　　　*

इह कहि पुहुपावति पै जाई।
हरषित होइ कै बात सुनाई।[2]

इस अन्तर का मूल कारण यह है कि एक में प्रेम की परीक्षा ली जा रही है और दूसरे में सत् की।

इस प्रकार पुहुपावती का कथानक सबसे अधिक उतार चढ़ाव वाला है और सत् की परीक्षा के कारण हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वैसे जो मध्ययुग की कहानी कला अपने समस्त दोषों के साथ इसमें प्रस्तुत है। परन्तु फिर भी कथानक का अंत एक नवीन घटना को हमारे सामने रखकर कथा

१. वही पृष्ठ २५०
२. पुहुपावती पृष्ठ ४५१

को अधिक मनोरंजक बना देता है। यह कथानक मौलिक प्रतीत होता है। कवि अंतर्साक्ष्य में देता है :

जागे कारन मैं चित जानी।
हिय उपजाई प्रेम कहानी।[१]

§३५. कवि नूर मुहम्मद कृत इंद्रावती की कथा भी मौलिक सी प्रतीत होती है :

मन दृग सो एक रात मंझारा
सूझ परा मोहि सब संसारा।
देखेउँ तहाँ नीक फुलवारी।
देखेउँ तहाँ पुरुष औ नारी।

*　　*　　*

तपी एक देखेउँ तहि ठाऊँ।
पूछेउँ तासों तिन्हकर नाउँ।
कहा अहै राजा औ रानी।
इंद्रावति औ कुंअर गियानी.
आगमपुर इंद्रावती कुंवर कलिंजर राय।
प्रेमहुँ ते दोऊँ कहं दीन्हा अलख मिलाय।
सरब कहानी दीन्ह सुनाई।
कह दया सेतीं हो भाई।

*　　*　　*

भोर होत लिखनी मैं लीन्हा।
कहै लिखे ऊपर चित दीन्हा।[२]

१. वही पृष्ठ १६
२. इंद्रावती (१६०६) पृष्ठ ३-४।

इंद्रावती का मूल कथानक बड़ा छोटा है। ऊपर यह बतलाया जा चुका है कि उसमें कई छोटे छोटे कथानक हैं।

सम्पूर्ण कथानक हम निम्नलिखित भागों में बाँट सकते हैं:

१. जन्म खंड से दर्शन खंड तक
२. सुवा खंड से युद्ध खंड तक
३. मधुकर खंड
४. मानिक खंड
५. विरह अवस्था खंड से ऋतु खंड तक
६. बारहमासा खंड से पपीहा खंड तक
७. हंसराज खंड से सुखदिवस खंड तक
८. मोहिनी खंड से राज खंड तक
९. वल्लभ की घटना से वल्लभ खंड तक
१०. कथा का अंत

पहले भाग में राजकुंवर इंद्रावती के प्रेम में आगमपुर जाता है। दूसरे में वह बंदी बनता और छूटता है। तीसरे में मधुकर की कथा है और चौथे में माणिक की। पाँचवें में उसका विवाह इंद्रावती से होता है। छठवे में सुंदरी का विरह है। सातवें में हंसराज की कथा है। आठवें में राजकुँवर कालिजर लौटकर आता है। नवें में वल्लभ की कथा है और दसवें में राजकुँवर इंद्रावती और सुंदरी की मृत्यु दी गई है।

इंद्रावती का कथानक तो अत्यन्त सरल है परंतु लेखक ने मानवी प्रवृत्तियों आदि का मूर्त रूप देकर पात्रों के रूप में खड़ा किया है। इस कारण पाठक उसमें कुछ उलझा सा रहता है और कथानक के गूढ़ अर्थ की खोज सी करता रहता है। यह समस्या पात्रों के नामों तक ही सीमित नहीं है वरन् भौगोलिक नामों के विषय में भी कहीं कहीं उठती है जिससे परिस्थिति और भी जटिल

हो उठती है। इससे कथा की लोकप्रियता में बाधा उत्पन्न होती है। साधारण पाठक का मन इस कथा में नहीं लग सकता। पाँच छः कथानकों का जमघट तो वैसे ही उसकी समझ में नहीं आएगा। दूसरे उनकी दुरूहता उसके गले उतरना सरल नहीं। अंत में वल्लभ की घटना तो कथानक से कोई भी कलात्मक संबंध नहीं रखती। इतने कच्चे धागे से प्रासंगिक कथावस्तु नहीं पिरोई जाती।

§३६. कासिम शाह दरियाबादी का कथानक चित्रावली की ही भाँति है। हंस वैसे ही जवाहिर से विलग हो गया है। परिस्थितिवश उसे एक दूसरी स्त्री से विवाह करना पड़ा है और अंत में उसे जवाहिर मिल गई है।

संक्षेप में सामूहिक रूप से हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य के कथानकों का यही विश्लेषण है।

---

चरित्र चित्रण:—

§१. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य के पात्र दो वर्गों में बँटते हैं:—

१. अलौकिक पात्र
२. लौकिक पात्र

§२. अलौकिक पात्र दो उपवर्गों में बंटते हैं:—

१. वे अलौकिक पात्र जो अलौकिकतामय चित्रित किए गए हैं।

२. वे अलौकिक पात्र जो लौकिक पात्रों के समान चित्रित किए गए हैं।

§३. पहले उपवर्ग में पद्मावती के शिव, पार्वती, चित्रावली के शिव, पार्वती, इंद्रावती के शिव, पार्वती, पुहुपावती के शिव, पार्वती, नारायण, हंस जवाहिर के ख्वाजा खिज्र, नल दमन के इंद्र, वरुण आदि आते हैं। इन पात्रों का प्रयोग लेखक तीन प्रयोजनों से करते हैं:—

१. वरदान देकर संतान देना
२. अन्य पात्रों की परीक्षा लेना
३. प्रेम पंथ के पथिकों की सहायता करना

§४. राजपुर नरेश निःसंतान थे, उन्होंने संतान की इच्छा से तपस्या करनी प्रारंभ की। परंतु उनकी इच्छा फिर भी पूर्ण न हुई। तब निराश होकर उन्होंने देवी को अपना सिर अर्पित कर दिया। इस हत्या का भार अपने ऊपर लेते हुए देवी को बड़ा भय लगा। वे घबराई हुई शिव के पास गईं। शिव ने अमृत दिया। उससे देवी ने राजा को पुनः जीवित कर दिया और पुत्र का वरदान दिया।

दस मास पश्चात् राजा के अत्यंत रूपवान पुत्र उत्पन्न हुआ। यह पुत्र ही पुहुपावती काव्य का कथानायक राजकुँवर है।[1]

शाह बलख बुरहन के कोई संतान न थी। वह पुत्र की कामना से योगी का वेश धारण कर राजमहल से निकल पड़ा। सागर के तीर पर ख्वाजा खिज्र खड़े थे। वह उनके पास गया और चरण टेककर उसने अपनी विनती सुनाई। ख्वाजा खिज्र ने उसे वरदान दिया। शाह के पुत्र उत्पन्न हुआ। हंस जवाहिर काव्य का नायक हंस यही है।[2]

आगमपुर नरेश जगपति की गोद सूनी थी। उसने शिव की आराधना की। शिव ने स्वप्न में उसे दर्शन दिए और पुत्री का वरदान दिया। नूरमुहम्मद के सुप्रसिद्ध आख्यान की नायिका यही इन्द्रावती है।[3]

इसी प्रकार चित्रावली का नायक सुजान भी उत्पन्न हुआ था। ये अलौकिक पात्र इन आख्यानों में इसी प्रकार संतानों का वरदान देते हैं। इनके वरदान से उत्पन्न हुई संतान कथा के प्रमुख पात्र के रूप में ही आती है। यह कहना भी गलत होगा कि ये पुत्र का ही वर देते हैं। ऊपर हम बता चुके हैं कि इन्द्रावती का जन्म शिव के वरदान से ही हुआ था।[4]

§५. ये अलौकिक चरित्र, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, पात्रों की परीक्षा भी लेते हैं। यह परीक्षा दो प्रकार की होती है—

१. पुहुपावती पृष्ठ १९
२. हंस जवाहिर (१८९८) पृष्ठ १२
३. इंद्रावती (१९०६) पृष्ठ १६-७
४. चित्रावली (१९१२) पृष्ठ १६-२०
५. इंद्रावती (१९०६) पृष्ठ १६-७

१. प्रेम पंथ के पथिकों की परीक्षा

२. पात्रों के सत् एवं धार्मिकता की परीक्षा

§६. पद्मावती में रत्नसेन जब सिंहल पहुँच गया तो भवानी ने उसके प्रेम की परीक्षा ली है। वे स्वयं एक सुन्दर अप्सरा का रूप धारण कर रत्नसेन के पास गईं और बोलीं:—

सुनहु कुंवर मोसों एक बाता।
जस मोहि रंग न औरहि राता।
औ विधि रूप दीन्ह है तोका।
उठा सो सबद जाइ सिव लोका।
तब हौं तौंपहँ इन्द्र पठाई।
गई पदमिनि तैं अपछरि पाई।[1]

परंतु रत्नसेन अपने प्रेम पंथ की दृढ़ता का परिचय देते हुए अपूर्व विश्वास एवं विनयशीलता से उत्तर देता है:—

भलेहि रंग अछरी तोर राता
मोहि दूसरे सों भाव न बाता[2]

इस प्रकार रत्नसेन अपनी परीक्षा में पूर्ण सफल होता है। पार्वती को हार मानकर लौट जाना पड़ा।

§७. दूसरे प्रकार की परीक्षा धरणीधर की शिव ने तथा पुहुपावती के नायक राजकुंवर की नारायण ने ली है।[3] धरणीधर नरेश के कोई संतान नहीं थी। उसने सन्तान प्राप्ति के लिए दान देना प्रारंभ किया। शिव पार्वती ने परीक्षा लेने की सोची। वे

१. जायसी ग्रन्थावली ( १९३५ ) पृष्ठ १०

२. वही पृष्ठ १०३

३. पुहुपावती पृष्ठ १९

तपस्वी का वेश धारण कर चले और उसके पास आए। उन्होंने धरणीधर से कहा कि हमसे शिव अप्रसन्न हो गए हैं और तुम्हारा सिर चढ़ाने पर प्रसन्न होने का वचन उन्होंने हमें दिया है। राजा धरणी धर इसे सुनते ही अपना सिर देने को तैयार हो गया। उसे तैयार देखकर शिव प्रसन्न हो गए और उन्होंने उसे पुत्र का वरदान दिया।[1]

राजकुँवर की और भी कठिन परीक्षा नारायण ने ली है। जब राजकुँवर पुहुपावती को लेकर और धर्मपूर्वक साधुओं का सम्मान करते हुए राज्य करने लगा, उसकी प्रशंसा शिवलोक में गई। वहाँ से नारायण उसकी परीक्षा लेने के लिए आए। उन्होंने साधु के वेश में आकर राजकुँवर से पुहुपावती को माँगा। राजकुँवर अपने सत् पर अटल रहता है और साधु वेशी नारायण को पुहुपावती दे देता है। नारायण प्रसन्न हो गए। परीक्षा पूर्ण हो गई। राजकुँवर पूर्णरूप से सफल प्रमाणित होता है।

§८. इन अलौकिक पात्रों का तीसरा कार्य प्रेम पंथ के पथिकों की सहायता करना है। पद्मावती में जब रत्नसेन सिंहलगढ़ के पास किंकर्त्तव्य विमूढ़ होकर जल मरने को तैयार हो जाता है, शिव ने आकर उसे सिद्धि गुटिका दी और सिंहलगढ़ में घुसने का मार्ग बतलाया।[2] जब रत्नसेन को गंधर्वसेन शूली देने को तैयार था तो शिव ने ही उसकी रक्षा की।[3] इसी प्रकार अन्य आख्यानों में भी इन अलौकिक पात्रों ने प्रेम पंथ के पथिकों की सहायता की है।

१. चित्रावली (१९१२) पृष्ठ ११
२. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ १०४-५
३. वही पृष्ठ १२९

§९. दूसरे उपवर्ग के पात्रों की संख्या अत्यंत सीमित है। पारलौकिक चरित्र लौकिक चरित्रों के रूप में बहुत कम आए है। पद्मावती में लक्ष्मी इस वर्ग की उदाहरण है। यद्यपि लेखक यह जानता है कि लक्ष्मी एक देवी है। वह इसकी अलौकिकता के विषय में कहता भी है :

लछमी नावँ समुद कै बेटी [1]

और इसे विष्णु जिसे लेखक ने भूल से शिव से मिला दिया है, की पत्नी भी मानता है :

जो भल होत लच्छिमी नारी
तजि महेस कित होत भिखारी [2]

परन्तु इसका चित्रण अत्यंत लौकिक पात्र के रूप में किया है। वह रत्नसेन को देखकर छलने का प्रयत्न करने लगती है :

लछमी चंचल नारि परेवा।
जेहि सत होइ छरै कै सेवा।
रतनसेन आवै जेहि घाटा।
अगमन होइ बैठी तेहि बाटा।
औ भइ पदुमावति के रूपा।
कीन्हेसि छाँह जरै जहँ धूपा।
देखि सो कँवल भँवर होइ धावा।
साँस लीन्ह, वह बास न पावा।
निरखत आइ लच्छमी दीठी।
रतनसेन तब दीन्ही पीठी। [3]

१. वही पृष्ठ २०१ २. वही पृष्ठ २०९
३. वही

तब भी

पुनि धनि फिरि आगे होइ रोई
पुरुष पीठि कस दीन्ह निछोई[1]

वह विश्वास भी दिलाती है :

हौं रानी पद्मावति रतनसेन तू पीउ
आनि समुद महँ छांड़िहु अब रोवौं देइ जीउ[2]

इस प्रकार लक्ष्मी एक लौकिक स्त्री की भाँति हमारे सामने आती है। अंतर्गत कथाओं के रूप में रामकृष्ण के अलौकिक व्यक्तित्वों को भी इन कवियों ने लौकिक रूप में चित्रित किया है।[3] इसके मूल में शायद उनका पौराणिक कथाओं संबंधी अज्ञान नहीं है।

§१०. संक्षेप में हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य के पारलौकिक चरित्रों की यही रूपरेखा है। यद्यपि वे जैसा कि ऊपर के विश्लेषण से स्पष्ट है कथानक में पर्याप्त योग देते हैं परन्तु हम यह अनुभव किसी प्रकार भी नहीं करते कि उनके आगमन से कथानक में कोई शुचिता अथवा प्रकाश का वातावरण आ गया है। कथानक उसी प्रकार रहता है और शिव पार्वती अर्द्धपारलौकिक व्यक्तित्व से प्रतीत होते हैं। इसका कारण यही है कि ये व्यक्तित्व ब्रह्म के मूर्तित स्वरूप इन कवियों के लिए नहीं है। यहाँ पर हमें यह कहते समय हिन्दुओं के आख्यानों को अलग कर देना पड़ेगा। मुसलमान आख्यानकारों के लिए ये व्यक्तित्व वैसे ही हैं जैसे शंकराचार्य के लिए ईश्वर। सामयिक विश्वासों के कारण ये कवि इन्हें कुछ अलौकिक मान

१. वही
२. वही
३. वही पृष्ठ २०८

लेते हैं अन्यथा सूफी ईश्वरावतार में विश्वास नहीं करते। वे कवि मूर्तिपूजन तक को व्यर्थ मानते थे[1] और ब्रह्म को सर्वव्यापक एवं निराकार मानते थे[2]। यहाँ पर यह स्पष्ट कह देना भी आवश्यक है कि ये कवि इन व्यक्तित्वों को कथा में अप्रमुख पात्रों के रूप में ही रखते थे।

§११. लौकिक पात्र दो वर्गों में बँटते हैं:

१. काल्पनिक
२. प्राकृतिक

§१२. काल्पनिक पात्र दो प्रकार के होते हैं:

१. राक्षस
२. परियाँ

§१३. राक्षसों ने कहीं कहीं पर तो हमारे कथा नायकों को कष्ट पहुँचाया है और कहीं पर उन्हें आराम दिया है। पद्मावती में अति विशालकाय होने के कारण समुद्र में स्वच्छन्द रूप से घूमने फिरने वाले एक राक्षस ने रत्नसेन को सिंहल से लौटते समय बड़े कष्ट दिये।[3] परन्तु चित्रावली में सुजान की रक्षा करने वाला राक्षस अत्यन्त सहृदय है। न तो वह सुजान को अरक्षित ही छोड़ सकता था और न खेल ही छोड़ सकता था। अतः वह सुजान को लेकर चित्रावली के नगर गया।[4] यदि राक्षस सुजान को वहाँ न ले जाता तो कथानक

१. वही पृष्ठ ६६, इंद्रावती २७१
२. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ३
३. वही पृष्ठ १९६-२००
४. चित्रावली (१९१२) पृष्ठ २६-२७

ही न होता। इस प्रकार उसका प्रभाव अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ये राक्षस न तो अलिफ लैला के राक्षसों की भाँति थे[3] और न नानी की कहानी के राक्षसों की भाँति। ये न तो राजकुमारियों को अपने भोग की वस्तु समझते थे और न मनुष्यों को एकमात्र अपने भोजन की वस्तु ही। इसके विरुद्ध इनमें कभी कभी तो अत्यन्त कोमल भावनाएँ विद्यमान रहती थीं। पुहुपावती का राक्षस इसका प्रमाण है। वह रंगीली के सौंदर्य से अभिभूत होकर उसे छोड़ देता है। जब रंगीली उससे कहती है कि वह यौवन को प्राप्त कर चुकी है और काम-संतप्त है तो दानव अपनी भूल स्वीकार करते हुए कहता है:

जब मैं देखा तोहि सआनी।
तब से वर खोजेउ तोहि कारन।
देस विदेस सिखर दधि आरन।
तोरे रूप रूप न पाएउ।
तोहि ते जोहि पायउ तेहि खाएउ।

अब जिय महं धीरज धरहु तजि सब विरह वियोग।
मैं ले आवो हरि के राजकुंअर तु जोग।[4]

वह प्रतिज्ञा करता है:

जौ लहि वर न मिलावौ आनी
तौ लहि खाउ पियौं नहिं पानी[5]

३. अलिफ लैला का सम्पूर्ण सुंदर अनुवाद अंगरेजी में बर्टन महोदय ने किया है जो बर्टन क्लब की ओर से (१८८५ ई०) प्रकाशित हुआ था। राक्षसों के चरित्र के उदाहरण के लिए इसका तीसरा भाग देखना चाहिए।

४. पुहुपावती पृष्ठ २२३ ५. वही

वह खोज कर राजकुंवर को वहां से लाता है और

तरु उपारि आंगन महं लावा।
खंग सहित जनु मांडौ धावा।
कलस धरेन्हि मैगल सिर काटी।
मांसु लीन्ह आपसु महं बांटी।

* * *

बाजत भूत बैताल बजावहि।
डाइनि पात पात पर गावहिं।
नर सिर धरा रुधिर भरि वारी।
पीठा राखेन्ह पीठि उतारी।
तेहि ऊपर दपंति बैठाएन्ही।
रकट अवटि सेंदुरु पहिराएन्ही।[१]

इस प्रकार दोनों का विवाह करवा दिया।

§१४. परियां स्वभावतः ही कोमल होती है। उनका चरित्र हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में ज्यों का त्यों आ गया है। हंस जवाहिर में जवाहिर और उसके वर की अनुपयुक्त जोड़ी को देखकर परियों ने ही हंस को उसके स्थान पर रखकर हंस जवाहिर की जोड़ी उपयुक्त कर दी थी और दोनों का वैध विवाह करवा दिया।[२] इस प्रकार वैध विवाह की मर्यादा की रक्षा इन परियों ने ही की। इसके पश्चात् हंस जवाहिर का फिर मेल एक परी ने ही करवाया था।

§१५. प्राकृतिक चरित्र दो प्रकार के होते हैं :

१. पशु पंछी

१. वही पृष्ठ २२५-६
२. हंस जवाहिर (१८९८) पृष्ठ १०५-६

२. मानव

§१६. प्रायः प्रत्येक हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में पशु पंछी विद्यमान हैं। ये दो रूपों में प्रयुक्त होते हैं :

१. दूत के रूप में

२. अन्य पात्रों के रूप में

§१७. पद्मावती का हीरामन इन्द्रावती का सुआ, नागमती का पंछी आदि दूत के रूप में है और नल दमन का सर्प, चित्रावली का पंछी आदि अन्य रूप में। दूत के रूप में पशु पंछी शरीर में एक भिन्न योनि वाले परन्तु मन बुद्धि तथा वाणी में मानव हैं। ये प्रेम पंथ के पथिकों की सहायता पूर्ण रूप से करते हैं। हीरामन रत्नसेन को सिंहल तक लाया था और बराबर एक सफल दूत का कार्य करता रहा। ये पंछी होने के कारण माता पिता एवं परजनों के अविश्वास के पात्र नहीं होते। और पंखों की सहायता से आकाश मार्ग पर चलते हैं, इन्हें नदी समुद्र आदि पार करने में कोई असुविधा नहीं होती। इन कारणों से इनका दूतत्व पर्याप्त सफल रहता है। इन दूतों का अन्य महत्व इन काव्यों में नहीं है। इसी कारण पद्मावती रत्नसेन मिलन के पश्चात हीरामन का क्या हुआ, यह हमें नहीं मालूम।

§१८. चित्रावली का पंछी हाथी को लेकर उड़ा था। हाथी सुजान को अपनी सूंड में पकड़े हुए था। अपने प्राण संकट में देख कर उसने सुजान को छोड़ दिया। सुजान समुद्र तट पर गिरा और घूमता फिरता सागर गढ़ पहुंचा। वहाँ से कौलावती उपाख्यान प्रारम्भ हुआ।[1] मधुमालती में तो स्वयं मधुमालती ही पंछी बन गई थी। इस प्रकार ये पंछी महत्वपूर्ण योग कथाओं में देते हैं।

१. चित्रावली (१९१२) पृ० ११६

३. प्रेम पन्थ में ये नायक चारण काव्य के नायकों से भिन्न मार्ग का अवलम्बन ग्रहण करते थे। चारण काव्य के नायक तो किसी स्त्री पर गुण श्रवण आदि से मोहित होकर सेना की सहायता से उस राजकुमारी को प्राप्त करते थे। परन्तु ये नायक अंहिसा का मार्ग लेते थे। ये प्रेम पन्थी अपने प्रेम पर ही विश्वास करते थे और प्रेम के ही अस्त्र से लड़ते थे।

४. ये नायक अत्यन्त सुन्दर युवा होते थे। किसी भी कथा का नायक असुन्दर नहीं है। हंस जवाहिर का नायक हंस भी सुन्दर है। जवाहिर का विवाह वास्तव में एक दूसरे व्यक्ति से हो रहा था परन्तु वह असुन्दर था, इसी कारण न हुआ। प्रेम कथाओं के नायकत्व के लिए सुन्दरता मध्ययुग में आवश्यक सी समझी जाती थी।

५. इन सुन्दर नायकों से प्रेम करनेवाली स्त्रियों की संख्या एक से अधिक होती थी। रत्नसेन की नागमती पद्मावती दो स्त्रियां हैं। सुजान की चित्रावली के अतिरिक्त कौलावती भी प्रेयसी थी। दुःखहरन के राजकुंवर की पुहुपावती के अतिरिक्त रूपवंती एवं रंगीली दो पतिपरायणा स्त्रियां और थीं। नल के तो दमयन्ती और सोलह सौ स्त्रियां थीं। हंस का विवाह जवाहिर के अतिरिक्त गढ़पती की कन्या से भी हुआ था। इन्द्रावती के नायक राजकुंवर का विवाह इन्द्रावती से पहिले एक राजकुमारी से हो चुका था।

६. ये सभी कुमारी राजकुमारियों से ही प्रेम करते थे। कोई किसी विवाहित स्त्री से प्रेम नहीं करता था।

७. ये सभी नायक आदर्शवादी होते थे। वास्तव में इसी आदर्शवाद के सहारे कवि अपने पाठकों को उपदेश दिया करता था। आदर्शवादी गुणों में निम्नलिखित प्रमुख हैं :

अ. स्पष्टवादिता

रत्नसेन से गंधर्वसेन के नौकर जब पूछते हैं कि वह क्यों गढ़ पर चढ़ रहा है तो वह स्पष्ट शब्दों में कहता है :

पद्मावति राजा की बारी
हौं जोगी तेहि लाग भिखारी [१]

उसे अपने प्राणों को खोने का भय नहीं।

आ. दृढ़ता

रत्नसेन को माँ समझाती है कि

बिलसहु नौ लख लच्छि पियारी [२]

*  *  *

राजपाट दर परिगह तुम्ह ही सौं उजियार
बैठि भोग रस मानहु कै न चलहु अंधियार [३]

रत्नसेन दृढ़ता से उत्तर देता है :

मोहि यह लोभ सुनाव न माया [४]

नागमती कहती है :

जहंवां राम तहां संग सीता [५]

रत्नसेन उत्तर देता है :

राघव जो सीता संग लाई
रावन हरी कौन सिधि पाई [६]

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ १०७
२. वही पृष्ठ ६१
३. वही
४. वही पृष्ठ ६२
५. वही
६. वही

अलाउद्दीन ने जब पद्मावती को माँगा तो :

सुनि अस लिखा उठा जरि राजा
जानौं देउ तड़पि घन गाजा
का मोहि सिंघ दिखावसि आई
कहौं तो सारदूल धरि खाई [1]

उसकी यह दृढ़ता प्रेम पंथ में भी सच्चाई के साथ आकर मिल गई है। ये सारे नायक सच्चे प्रेमी होते थे। रत्नसेन अपनी प्रेयसी को प्राप्त करने के लिए सिंहलद्वीप तक गया। सुजान उसके लिए पागलों के समान वन वन भटका और अंत में उसे प्राप्त करके ही रहा। पुहुपावती का राजकुंवर दो दो अति रूपवती स्त्रियों से उदास होकर अपनी लौ पुहुपावती से ही लगाए रहा और अन्त में उसे पाकर ही शांत हुआ। संक्षेप में प्रेमाख्यानक काव्य के नायक की ये ही सामान्य विशेषताएं हैं।

§२२. प्रतिनायक का होना प्रत्येक आख्यान में आवश्यक नहीं है। पद्मावती में अलाउद्दीन, नल दमन में कलियुग प्रतिनायकों के उदाहरण हैं। इनमें छल का गुण विशेष दिखाया जाता है। लेखक इनका चित्रण बड़ी सावधानी से करता है कि पाठक पढ़ते ही उनसे घृणा कर उठे। जिस रूप गुण श्रवण से रत्नसेन पद्मावती से प्रेम कर उठा था, उससे ही प्रेरित होकर अलाउद्दीन पद्मावती की ओर आकर्षित हुआ था, परन्तु रत्नसेन ने प्रेमपंथ में योगी का वेश धरकर चरण बढ़ाए और अलाउद्दीन ने मध्ययुग के यथार्थवादी राजाओं की भाँति सेना को साथ में लेकर। इसी कारण एक तो लेखक की सहानुभूति का पात्र बना और दूसरा घृणा का। नल

१. वही पृष्ठ २५०

दमन में कलियुग तो एक परम्परागत अधम पात्र है। वह छल से बार बार कभी पांसे बनकर और कभी पंछी बनकर राजा को कष्ट देता है।

§२३. अन्य पात्रों में नायक के साथी, नायिका के पिता आदि होते हैं। इनमें किसी विशेष टाइप के दर्शन दुर्लभ हैं। इनका चरित्र अत्यधिक साधारण दिखलाया जाता है।

§२४. स्त्री पात्र निम्नलिखित तीनों वर्गों में बँटते हैं :

१. नायिका
२. प्रतिनायिका
३. अन्य स्त्रियां

§२५. नायिका में निम्नलिखित सामान्य गुण प्रमुख हैं :

१. वह किसी सं न्त राजकुल की युवा स्त्री होती है। पद्मावती, चित्रावली इंद्रावती, पुहुपावती, दमयन्ती आदि राजकुल की युवा राजकन्याएँ हैं।

२. ये स्त्रियां सभी प्रारम्भ में अविवाहित होती हैं और इनका विवाह कथा नायक से होता है। ये पतित या दुराचारिणी नहीं होतीं। मंझन की मधुमालती तो विवाह के पहले मनोहर को कामासक्त देखकर उसे समझाती है :

एक निमिख सुख कारन आपहु सरबस कौन नसाउ
तिरिया थोरेहि अकरन जग अपकीरत पाउ[1]

* * *

सुनहु कुंअर एक बचन हमारा।
धर्म पंथ दुहुँ जग उजियारा।

१. मधुमालती

कुल औ धरम दोउ रखवारी।
मन ता पंथ दे जाय निकारी।
निमिखि लाग पापी का होई।
कै कै पाप धर्म का खोई।[1]

और इसी कारण :

ब्रज सत दृढ़ बाचा मोहि देहु तुम्ह लेहु
जन्म जन्म निरबाहि बिधि मोहि तोहि सनेहु[2]

३. ये अपने प्रणय में अत्यन्त दृढ़ होती थीं। पद्मावती ने रत्नसेन की सूली की आज्ञा सुनकर कितना दृढ़ संदेश उसके पास भेजा है :

काढ़ि प्रान बैठी लेइ हाथा
मरै तौ मरौं जिऔं एक साथा[3]

देवपाल की दूती से वह कहती है :

रंग ताकर हौ जारौं कांचा
आपन तज जो पराएहि रांचा

*             *             *

जोबन मोर रतन जहं पीऊ
बलि तेहि पिउ पर जोबन जीऊ[4]

अपना विवाह दूसरे राजकुमार के साथ निश्चित होते देखकर पुहुपावती कहती है :

१. वही
२. वही
३. जायसी ग्रंथावली ( १९३५ ) पृष्ठ १२८
४. वही पृष्ठ ३०९

अब तिन्ह कहँ बंदौ कर जोरी।
मेटहु राम विपति इह मोरी।
तुम दयाल रछपाल गुसाईं।
वेगि दै आनि मिलावहु साईं।
तुम्ह कमला कै आस मुराई।
दधि मथि तिन्है बिआयेहु जाई।
तुम्ह सीता कहं मनसा दीन्हा।
तोरि कै चाप व्याह पुनि कीन्हा।
तुम्ह रुकुमिनि कै पढ़ कै पाती।
हरि लेहु आइ जुड़ाएहुं छाती।[1]

इस प्रकार अन्य नायिकाएं भी अपने प्रेम में दृढ़ हैं।

४. ये सभी नायिकाएं अति सुंदरी होती हैं।

§२६. प्रतिनायिका कभी एक और कभी दो होती हैं। किसी किसी काव्य में ये होती ही नहीं। नल दमन में इनका सर्वथा अभाव है। पद्मावती, चित्रावली, हंस जवाहिर एवं इंद्रावती में एक ही प्रतिनायिका है। पुहुपावती में दो प्रतिनायिकाएं विद्यमान हैं।

ये सभी प्रतिनायिकाएं सुन्दर अवश्य होती हैं, भले ही गोरी न हों। चित्रावली की कौलावती कपूर की कली और कंचन की बेल है। किन्तु नागमती अति सुन्दरी होती हुई भी काली है।

ये प्रतिनायिकाएं नायक की नायिकानुराग से पूर्व अथवा पश्चात् की विवाहिता स्त्रियां होती हैं। अपने सपत्नी के प्रति व्यवहार के आधार पर ये दो वर्गों में बंटती हैं:—

१. पुहुपावती पृष्ठ २७१

१. वे जो अपनी सपत्नी से पूर्ण सद्व्यवहार रखती हैं

२. वे जो अपनी सपत्नी से प्रारंभ में लड़ती झगड़ती हैं

पहले वर्ग में रंगीली, रूपवंती, कौलावती आदि आती हैं और दूसरे में नागमती। रंगीली, रूपवंती आदि तो सपत्नी से प्रेम करती हैं परन्तु नागमती यद्यपि पंछी के हाथ संदेश तो भेजती है:—

पद्मावति सौं कहेहु बिंहगम।
कंत लोभाइ रही करि संगम।

* * *

अबहु मया करु करु जिउ फेरा।
मोहिं जियाउ कंत देइ मोरा।
मोहिं भोग सौं काज न बारी।
सौंह दीठि कै चाहनहारी।
सवति न होसि तू बैरिनि मोर कंत जेहि हाथ।
आनि मिलाव एक बेर तोर पांय मोर माथ।[1]

परन्तु पद्मावती के आते ही:

पद्मावती कर आव बेवानू।
नागमती जिउ महं भा आनू।
जनहुँ छांह महं धूप देखाई।
तैसइ झारि लागि जौ आई।
सही न जाइ सवति कै झारा।
दुसरे मंदिर दीन्ह उतारा।[2]

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ १८१-२

२. वही पृष्ठ २१५-१६

और एक दिनः

यह ओहि कहं,वह ओहि कहं गहा।
काह कहौं तस जाइ न कहा।
दुवौ नवल भरिजोबन गाजै।
अछरी जनहुँ अखारे बाजै।
भा बाहुँन बाहुँन सौं जोरा।
हिय सों हिय कोइ बाग न मोरा।

* * *

परन्तु एक ही प्रियतम से प्रेम करने के कारण दोनों शांत हो गईं और अन्त तक मेल एवं स्नेह के साथ रहीं।

§२७. अन्य स्त्री पात्रों में दूती, नायक की मां, नायिका की मां आदि होती हैं। दूती बड़ी चतुर होती है। इन काव्यों में नायक की दूतियां नहीं होती। पद्मावती में प्रतिनायक अलाउद्दीन एवं एक अन्य पात्र देवपाल की दूतियां अवश्य हैं। नायिका की दूतियां तो सत्भाव की होती हैं और प्रतिनायक अथवा अन्य पात्रों की असत् की। लेखक की सम्वेदना पहली के साथ पूर्ण होती है परन्तु दूसरी के साथ संवेदना तो दूर घृणा होती है। चरित्र चित्रण के दृष्टिकोण से इन दूतियों का कोई विशेष महत्व नहीं होता।

अन्य स्त्री पात्र भी चरित्र चित्रण के दृष्टिकोण से महत्वशील नहीं हैं।

§२८. संक्षेप में हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यों के चरित्र चित्रण की निम्न दो महत्ताएं हैं :

१. प्रायः सभी पात्र अपने जीवन के आदर्श निश्चित किए हुए हमारे सामने आते हैं। उनके सामने उनका पथ स्पष्ट रहता है। वे

१. वही पृष्ठ २२५

हां नाहीं की दुविधा के बीच फंसे नहीं रहते। इस कारण कहीं पर मनोवैज्ञानिक संघर्ष नहीं दिखलाई पड़ता। प्रत्येक पात्र एकरस ( flat ) है। रत्नसेन के सामने, सुजान के सामने, हंस के सामने, राजकुंवर के सामने उनके जीवन का पथ बिलकुल एक सा खुला हुआ है। पद्मावती, चित्रावली, इन्द्रावती सभी के सामने पथ स्पष्ट है। नागमती थोड़ी सी इस नियम की अपवाद है। इसी कारण वह प्रिय वियोग के बाद से लेकर पद्मावती वाद विवाद खण्ड तक कुछ प्रतिक्रियाओं एवं परिवर्तनों की लहरों में उलझी हैं और पाठक के सामने नारी मनोविज्ञान की सपत्नी के प्रति व्यवहार की एक उलझी हुई गुत्थी सुलझा कर रख रही है।

२. इन आख्यानों का प्रधान लक्ष्य कहानी के बहाने प्रेम पंथ के तथा अन्य उपदेश देना है परन्तु उसके पश्चात् इनका लक्ष्य नायक एवं नायिका का चरित्र चित्रण ही है। कहानी कला के दृष्टिकोण से ये कहानियां चरित्र प्रधान ही कही जाएँगी।

§२९. एक समस्या इन चरित्रों की सांकेतिकता की है। सांकेतिकता की सूची निम्न है :—

| | |
|---|---|
| नायिका | आराध्य ब्रह्म |
| नायक | आराधक भक्तात्मा |
| दूत | गुरु |

इसके अतिरिक्त कुछ पात्र माया के प्रतीक हैं जो कि भिन्न भिन्न काव्यों में भिन्न हैं।

नायिका की सामान्य विशेषताएं सुन्दरता, दृढ़ प्रेमिका होना, प्रारम्भ में अविवाहित होना तथा राजकुल की होना हैं। ये विशेषता प्रतीक को दृढ़तर करती हैं। परन्तु पद्मावती की नागमती से जो वाद विवाद एवं कलह हुआ है वह पद्मावती को प्रतीक के ऊँचे आसन से गिरा देता है। विवाह के पश्चात् जो एकाधिपत्य का

अनुभव नायक एवं नायिक करने लगते हैं वह भी इस प्रतीकवाद को गहरा धक्का देता है।

नायक के सामान्य गुण वीरता, दृढ़ प्रेमी होना, बहुपत्नीत्व, राजकुल का वंशज, सुन्दरता, आदर्शवादिता हैं। ये भी प्रतीक में सहायता देते हैं। परन्तु बहुपत्नीत्व प्रतीक को ऐसा धक्का देता है कि वह छिन्न भिन्न सा हो उठता है। नायक की पति भावना भी इस विषय में बहुपत्नीत्व की सहायता करती है।

दूत में कहीं पर भी वह गंभीरता नहीं मिलती जो उसे गुरु का प्रतीक बनवा दे। इस कारण यह प्रतीक भी नहीं बैठता।

अन्य पात्रों की परिस्थिति भी डांवाडोल है। नागमती जो कि दुनियां धंधा की प्रतीक थी पता नहीं कैसे पद्मावती के बराबर बन गई।

इस प्रकार इन चरित्रों में हमें किसी भी प्रतीक अथवा सांकेतिकता के दर्शन नहीं होते।

---

कथोपकथन:—

§१. मध्ययुग में कथोपकथन की कला का कथा साहित्य में सजग महत्व न था। कथोपकथन का उपयोग उसमें प्रायः तीन दृष्टिकोणों से होता था:—

१. चरित्र चित्रण के लिए
२. कथा को स्वाभाविक एवं सजीव बनाने के लिए
३. उपदेश देने की भावना से

राम चरित मानस में सीता राम कौशल्या संवाद चरित्र चित्रण के निमित्त हुआ था। कथा को स्वाभाविक एवं सजीव बनाने का सुन्दर उदाहरण रावण-अंगद संवाद है और उपदेश देने की भावना से उत्तरकांड के कथोपकथन दिए गए हैं।

हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में भी कथोपकथन का उपयोग इन्हीं तीन प्रकारों से हुआ है।

चरित्र चित्रण—

§२. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य के कथोपकथनों में चरित्र चित्रण दो प्रकार से होता है:—

अ. जब कि पात्र के वचनों से उसके ही चरित्र का अध्ययन पाठक को करना पड़ता है।

आ. जब कि एक पात्र के वचनों से किसी दूसरे पात्र के चरित्र का अध्ययन पाठक को करना पड़ता है।

§३. पहले प्रकार के कथोपकथन के सहारे चरित्र चित्रण दो भागों में बंटता है:—

क. जब कि किसी पात्र का समस्त चरित्र उसके कथोपकथनों में आ जाता हो।

ख. जब कि किसी पात्र का आंशिक चरित्र उसके कथोप-
कथनों में आता हो।

§४. पद्मावती में नागमती के चरित्र की समस्त विशेषताएं एक मात्र कथोपकथन के सहारे हमारे सामने आ जाता है। पहले नागमती और सुए के बीच जो संवाद होता है[१] उससे हमें पता चलता है कि नागमती कितनी रूपगर्विता और अपने पति के प्रेम के प्रति कितनी सजग एवं चौकन्ना थी। साधारण पाठक के हृदय में यहाँ पर नागमती के लिए श्रद्धा का कोई भाव नहीं उठता। नागमती और धाय संवाद[२] उसके चरित्र पर कुछ उज्ज्वल प्रकाश अवश्य डालता है। तीसरा कथोपकथन राजा रत्नसेन की बिदाई के समय का है।[३] एक पति परायणा स्त्री का चित्र वहाँ पर है किन्तु वह विशेष मार्मिक नहीं। चौथा कथोपकथन नागमती एवं उसकी सखी के बीच हुआ है जो कि विरहगाथा के रूप में हमारे सामने आया है।[३] इससे नागमती के चरित्र की भव्यता हमें स्पष्ट हो जाती है। उसके पश्चात् नागमती एवं पंछी के बीच जो संवाद हुआ है[४], वह सारे काव्य की काव्यात्मकता का चरम बिन्दु है। जब विरह संतप्ता नागमती अपनी सपत्नी पद्मावती के लिए पंछी को संदेश देती हुई कहती है:—

पद्मावति सों कहेउ विहंगम।
कंत लोभाइ रही करि संगम।

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ २९

२. वही पृष्ठ ४०

३. वही पृष्ठ ६२

४. वही पृष्ठ १७२-१८०

तू घर घरनि भई पिउ हरता।
मोहि तन दीन्हेसि जप और बरता।
रावट कनक सो तो कहं भयऊ।
रावट लंक मोहि कै गयऊ।
तोहि चैन सुख मिलै सरीरा।
मो कहं हिए दुंद दुख पूरा।
हमहुँ बियाही संग ओहि पीऊ।
आपुहि पाइ जानु पर जीऊ।
अबहुँ मया करु करु निज फेरा।
मोहि जियाउ कंत देइ मेरा।
मोहि भोग सों काज न बारी।
सोंह दीठि कै चाहन हारी।[1]

और

सवति न होसि बैरनि मोर कंत जेहि हाथ।
आनि मिलाव एक बेर तोर पांय मोर माथ।[2]

तो पाठक का हृदय भर सा उठता है। एक नारी अपनी सपत्नी के लिए ऐसा संदेश भेज रही है। कैसा धन्य है उस नारी का प्रेम और कैसा निठुर है उसका प्रियतम। इसके पश्चात् नागमती के चरित्र का जो विकास लेखक ने नागमती एवं रत्नसेन संवाद[3] तथा नागमती पद्मावती विवाद[4] में दिखाया है वह भी कथोपकथन में

१. वही पृष्ठ १८१-२
२. वही पृष्ठ १८२
३. वही पृष्ठ २१७
४. वही पृष्ठ २२०-२२४

ही आ जाता है। नागमती के सती होने के समय भी जो वचन मुख से निकलते हैं[1] वे भी उसके चरित्र में नवीन परिवर्तन दिखलाते हैं। इस प्रकार एक मात्र कथोपकथनों को पढ़ने से ही नागमती के चरित्र की सारी विशेषताएं पाठक को दिखलाई पड़ जाती हैं। जायसी की यह एक अपूर्व विशेषता है। समस्त हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में ऐसा कोई अन्य पात्र नहीं है जिसका सारा चरित्र उसके कथोपकथनों में ही सुस्पष्ट हो जाय।

§५. दूसरे भाग में रत्नसेन, पद्मावती, सुजान, चित्रावली, पुहुपावती, राजकुंवर आदि अनेक व्यक्ति आते हैं। इनके चरित्र इनके कथोपकथनों में पर्याप्त खुल जाते हैं। रत्नसेन अलाउद्दीन के दूत को उत्तर देता है :

का मोहिं सिंघ दिखावसि आई।
कहौं तो सारदूल धरि खाई।
भलेहि साह पुहुमीपति भारी।
मांग न कोउ पुरुष कै नारी।
जो पै घरनि जाय घर केरी।
का चितउर का राज चंदेरी।
हौं रन थंभउर नाह हमीरू।
कलपि माथ जेइ दीन्ह सरीरू।[2]

दूत कहता है :

बोलु न राजा आपु जनाई।
लीन्ह देवगिरि और छिताई।

१. वही पृष्ठ २४०
२. वही पृष्ठ २५०

सातों दीप राज सिर नावहिं।
औ संग चली पद्मिनी आवहिं।[१]

तो राजा कितनी दृढ़ता से उत्तर देता है:

तुरुक जाइ कहु मरै न धाई।
होइहि इसकंदर की नाई।
* * *
मढु समुझि अस अगमन, सज राखा गढ़ साजु।
कालि होइ जो अगमन सो चलि आवै आजु।[२]

इसी प्रकार अन्य कथोपकथनों में भी रत्नसेन की अन्य विशेषताएँ दिखलाई पड़ती हैं। पुहुपावती में राजकुंवर और योगी के बीच जो कथोपकथन हुआ है वह उसके चरित्र पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। जोगी कहता है:

पुहुपावति जो नारि तुम्हारी।
* * *
देहु सो आनि यही अग्या।[३]

अतिथि पालक एवं साधु सेवी राजा के सामने एक समस्या खड़ी हो गई। युगों की साधना के पश्चात् तो उसने पुहुपावती को पाया है और यह योगी उसे मांग रहा है। यदि सेना की शक्ति दिखाकर कोई उससे पुहुपावती मांगता जैसे रत्नसेन से अलाउद्दीन ने पद्मावती को मांगा था तो शायद वह रत्नसेन का सा उत्तर देता। परंतु यहां तो परिस्थिति दूसरी है। इस कारण वह उत्तर देता है:

१. वही पृष्ठ २५१
२. वही
३. पुहुपावती पृष्ठ ४११

····भवो अब काज हमारा।
जेहि कारन हुव काज संवारा।
भले गुसाईं किरपा कीन्हा।
मनसा दान मांगि कै लीन्हा।[१]

और

····इह कहि पुहुपावती पहं जाई।
····हर्षित होइ के बात सुनाई।[२]

और पुहुपावती से कहा:

तुमहि एक मांगै बैरागी।
बेगि जाहु अब तिन्ह संग लागी।
मो ते सत्त न टारा जाई।
बरु तुम्ह बिनु मरिबौं विष खाई।[३]

इस अवसर पर पुहुपावती कहती है:

···· ···· भला हो पीव।
जेहि भावे तेहि देहु अब इह तुम्हार है जीव।[४]

इस स्थल पर कथोपकथन कितना मार्मिक एवं चरित्रों को स्पष्ट करनेवाला है। किंतु इन पात्रों की सारी विशेषताएँ कथोपकथनों में ही नहीं खुल जातीं। रत्नसेन का सिंहलगढ़ पर चढ़ना, पद्मावती दर्शन से मूर्च्छित होना उसके चरित्र के अन्य पहलू हमारे सामने लाते हैं।

१. वही
२. वही
३. वही
४. वही पृष्ठ ४५२

§६. किन्हीं पात्रों के कथोपकथन में अन्य पात्रों का चरित्र चित्रण का उदाहरण पद्मावती में शिव-पार्वती का संवाद है। शिव से पार्वती कहती है:

निहचै एहि बिरहानल दहा।
निहचै एहि ओहि कारन तपा।
परिमल प्रेम न आछै छपा।
निहचै प्रेम पीर मह जागा।
कसे कसौटी कंचन लागा।
बदन पियर जल ढारहिं नैना।
परगट हुवौ प्रेम के बैना।
यह एहि जनम लाग ओहि सीझा।
चहै न औरहि ओही रीझा।[1]

इससे रत्नसेन का चरित्र स्पष्ट होता है कि वह पद्मावती से कितना गहरा अनुराग करता है:

## कथा के स्वाभाविकता एवं सजीवता:

§७. यदि कथोपकथनों को निकालकर एकमात्र तृतीय पुरुष की ऐतिहासिक शैली में कथा कही जाए तो वह नीरस होगी और वह प्रयास असफल होगा। कथा कथोपकथन विहीन होकर निर्जीव हो जाएगी। इसी कारण कथोपकथन का उपयोग प्रायः सभी कहानी लेखक करते हैं। हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में भी इसी दृष्टिकोण से कथोपकथन का उपयोग किया गया है। यदि पुहुपावती का अंतिम भाग जिसमें राजकुँवर की परीक्षा ली गई है कथोपकथन विहीन कर दिया जाएं तो वह निर्जीव सा हो जाएगा। मन के अन्दर

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृ० १०३

की झाँकी कथोपकथन में ही आती है, भले ही वह स्वगतोक्ति में आए। पद्मावती में से यदि नागमती की विरह गाथा को वर्णनात्मक बना दिया जाए तो वह शुष्क हो जावेगी। नागमती सुआ संवाद में संवाद का ही सौन्दर्य है।

इसके अतिरिक्त हमें यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि हम कहानी पढ़ने के बाद उसका कथानक भूल सकते हैं, पात्र भूल सकते हैं मुख्य संवेदना भूल सकते हैं परन्तु यदि उसमें कहीं अति हृदयस्पर्शी कथोपकथन है तो वह भूला नहीं जाता। नागमती ने जो संदेश पद्मावती के पास पंछी द्वारा भेजा था वह हमारे कानों में प्रतिध्वनि देता रहता है।[1] साथ ही साथ रत्नसेन के चित्तौर लौटने पर और रात में नागमती के पास आकर हँसते हुए बातें करने पर नागमती ने जब खरा व्यंग किया :

काह हँसौ तुम मोसों, किएउ और सों नेह।
तुम मुख चमकै बीजुरी हम मुख बरसै मेह।[2]

तो रत्नसेन इस विषम परिस्थिति को अपनी वाक् चातुरी के द्वारा ही संभालता है :

नागमती तू पहिल बिआही।
कठिन बिछोह दहै जनु दाही।
बहुतै दिन पै आव जो पीऊ।
धनि न मिलै धनि पाहन जीऊ।[3]

१. पद्मावती सो कहेहु विहंगम····
वही पृ० १८१
२. वही पृ० २१७
२. वही पृ० २१७

इस उत्तर को सुनते ही नागमती का सारा रोष गायब हो गया और

नागमती हँस पूछी बाता[१]

पद्मावती में भी नागमती एवं पद्मावती ने जो बातें आपसी कलह के समय कही हैं वे भी पाठक के हृदय पर एक मीठी लकीर के समान अंकित हो जाती हैं :[२]

कथोपकथन की कला के दृष्टिकोण से हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में संभवतः यह अंश सर्वोत्कृष्ट है।

नागमती की फुलवारी को फूला फला देकर दूतियों ने पद्मावती से कहा कि रत्नसेन नागमती के यहाँ प्रायः जाते हैं और नागमती अति प्रसन्न रहती है। पद्मावती को ईर्ष्या हुई। वह क्रोध से भर कर फुलवारी में आई और नागमती के पास बैठकर :

हिय विरोध, मुख बातें मीठी[3]

करने लगी। पद्मावती ने हँसकर बात चलाई :

बारी सुफल अहै तुम्ह रानी
है लाई पै लाइ न जानी[४]

वह गलतियाँ भी बतलाती है :

नागेसरि औ मालति जहाँ
संगतराव नहिं चाही तहाँ।[५]

१. वही पृ० २१७

२. वही, नागमती पद्मावती विवाद-खंड

३. वही पृ० २२०

४. वही

वही

नागमती उत्तर देती है :

अनु तुम कही नीक यह सोभा
पै फल सोइ भँवर जहँ लोभा[१]

पद्मावती इस उत्तर से असंतुष्ट हो उठती है। मुख पर जो मीठी बातें थीं वे लुप्त हो उठती हैं :

तुइं अंबराव लीन्ह का जूरी
काहे भई नीम विष मूरी
* * *
दारिउं दाख न तोहि फुलवारी
देखि मरहिं का सूआ सारी[२]

नागमती उत्तर देती है :

तोरे कहे होइ मोर काहा
करे बिरिछ कोइ ढेल न बाहा
नवै सदाफर सदा जो फरई
दारिउँ देखि फाट हिय मरई[३]

वह कटूक्ति भी कहती है :

लाजहिं बूड़ि मरसि नहिं ऊभि उठावसि बाँह
हौं रानी पिय राजा, तो कहँ जोगी नाँह[४]

इससे कथोपकथन का विषय ही बदल जाता है। दोनों की ईर्ष्या इस क्रोध की अग्नि में घी का काम करती है। पद्मावती के

१. वही पृष्ठ २२१।
२. वही।
३. वही पृष्ठ २२२।
४. वही

हृदय का विरोध अब पूर्ण रूप से मुख पर आ जाता है। वह कहती है :

हौं पद्मिनी मानसर केवा
भँवर मराल करहिं मोरि सेवा
* * *
जानै जगत कँवल कै करी
तोहि अस नहिं नागिनि विष भरी
* * *
तू भुजइल, हौं हंसनि भोरी
मोहि तोहि सोति पोत कै जोरी [१]

वह और विष उगलती है :

ठाढ़ि होसि जेहि ठाईं मसि लागै तेहि ठाँव।
तेहि डर राँध न बैठो मकु साँवरि होइ जाँव।[२]

नागमती भी ईंट का जवाब पत्थर से देती है :

कँवल सो कौन सोपारी रोठा
जाके हिए सहस दस कोठा
* * *
इहाँ भँवर मुख बातन्ह लावसि
उहाँ सुरुज कहँ हँस बहरावसि [३]

वह दूसरा आरोप करती है :

सब निसि तपि मरसि पियासी
भोर भए पावसि पिय बासी [४]

१. वही
२. वही
३. वही
४. वही

पहले आरोप का तो पद्मावती के पास कोई भी उत्तर नहीं है। दूसरे के लिए वह कहती है :

मैं हौं कंवल सुरुज के जोरी
जो पिय आपन तौ का चोरी

* * *

मोर विकास ओहिक परकासू
जू जरि मरसि निहारि अकासू

और वह फिर विष उगलती है :

धूप न देखहि विष भरी अमृत सो सर पाव।
जेहि नागिनि डस सो मरै लहरि सुरुज के आव।[२]

नागमती फिर वैसा ही उत्तर देती है :

फूल न कंवल भानु बिनु ऊए।
पानी मैल होइ जरि छूए।
फिरहि भंवर तोरे नयनाहां।
तीर बिसाइंध होइ तोहि पाहां।
मच्छ कच्छ दादुर कर बासा।
बग अस पांखि बसहिं तोर पासा।
जे जे पंखि पास तोहि गए।
पानी महं सो बिसाइंध भए।

* * *

सहस बार जो धोवै कोई।
तौहु बिसाइंध जाइ न धोई।

१. वही २. वही ३. वही

फिर व्यंग भरा पछतावा दिखलाती है :

काह कहौं ओहि पिय कहं, मोहि सिर धरेसि अंगारी
तेहि के खेल भरोसे तुइ जीती मैं हारी[1]

पद्मावती गर्व से उत्तर देती है :

तोर अकेल का जीतिउं हारु।
मैं जीतिउं जग कर सिंगारु।
बदन जितिउं सो ससि उजियारी।
बेनी जितिउं भुअंगिनि कारी।
नैनह जीतिउं मिरिग के नैना।
कंठ जितिउं कोकिल के बैना।[2]

इस प्रकार की गर्वोक्ति सुनकर नागमती सक्रोध होकर कहती है:

का तोहि गरब सिंगार पराए।
अबहीं लेहिं लूटि सब ठाए।
हरैं सांवरि सलौन मोरे नैना
सेत चीर मुख चातक बैना।
नासिक खरग फूल ध्रुव तारा।
भौंहैं धनुक गगन गा हारा।[3]

और :

पुहुप बास औ पवन अधारी कंवल मोर तरहेल
चहौं केस धरि नावौं, तोर मरन मोर खेल[4]

१. वही पृष्ठ २२४
२. वही
३. वही
४. वही

यहां पर पद्मावती की सहनशीलता समाप्त हो जाती है और :

पदमावती सुनि उतर न सही।
नागमती नागनि जिमि गही।
वह ओकहं वह ओ कहं गहा।[1]

दोनों आपस में लड़ने लगीं।

इस वाद विवाद में कथोपकथन की सच्ची कला का उत्कर्ष दिखलाई पड़ता है। उत्तर प्रत्युत्तर कितने स्वाभाविक हैं और दोनों जो प्रारम्भ में मुख पर मिठाई रखे थीं किस प्रकार सहसा अपने वास्तविक मनोवेगों को व्यक्त कर उठती हैं।

इसको पढ़नेवाले पाठक के हृदय पर यह कथोपकथन विद्युत की भांति कौंधता रहता है।

उपदेश :

§८. ये उपदेश दो वर्गों में बँट सकते हैं :

१. आध्यात्मिक तथा धार्मिक
२. लौकिक

§९. पहले का सुन्दर उदाहरण सूरदार लखनवी कृत काव्य में राजा एवं दमन ऋषीश्वर का संवाद है। वे बतलाते हैं :

माया निसि, सपना जगत नींद भरम अज्ञान
सोइ सांचा समझा सबन, जाकहं कछु न निदान[2]

और

प्रथम मांज मन दरपन काई।
तबहिं निरंजन देइ दिखाई॥

१. वही
२. नल दमन पृ० २९

सोहौं स्वासा सबद मसकला।
सहजह ज्ञान है न दिन चला।
तासों लगि सोई मन मांजै।
मांज ज्ञान अंजन दग साजै।
अखरह बैन ज्ञान हिय होई।
रहै न द्वैत रहस होइ सोई।
मुक्त होइ अलख जब सूझै।
सहजै सकल भरम तब बूझै।[१]

इन्द्रावती में एक सखी कहती है :

का पाहन के पूजे लहई।
पूजौ ताहि जो करता अहई।
पाहन सुनै न तेरी बातें।
सुमिरु जगत कर्त्ता दिन रातें।[२]

इसी प्रकार अन्य स्थल भी उद्धृत किए जा सकते हैं।

§१०. लौकिक अथवा सांसारिक उपदेशों का सुन्दर उदाहरण पद्मावती का मान सरोवर खंड का कथोपकथन है। नैहर एवं ससुराल का सुन्दर विश्लेषण वहाँ दिया गया है। एक सखी कहती है :

ए रानी मन देख विचारी।
एहि नैहर रहना दिन चारी।
जौ लगि अहै पिता कर राजू।
खेल लेहु जो खेलहु आजू।

१. वही पृ० २९

२. इंद्रावती पृ० २७१

पुनि सासुर हम गमनब काली।
कित हम कित यह सरवर पाली।

❀ ❀ ❀

सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेहीं।
दारुन ससुर न निसरे देहीं।
पिउ पियार सिर ऊपर पुनि सो करे दहुं काह।
दहुं सुख राखे की दुख दहुं कस जनम निबाह।

❀ ❀ ❀

झूलि लेहुं नैहर जब ताईं।
फिरि नहिं झूलन देइह साईं।

❀ ❀ ❀

कित यह धूप कहाँ यह छांहां।
रहब सखी बिनु मन्दिर मांहां।[1]

और इस निष्कर्ष पर पहुंचती है:

कित यह रहस जो आउब करना।
ससुर अन्त जनम दुख भरना।[2]

स्पष्ट है कि कवि ने यह सारा का सारा खण्ड एक मात्र ससुराल एवं नैहर का विश्लेषण करने के लिए लिखा है और वह कर्त्तव्या-कर्त्तव्य का उपदेश देता है। इसी प्रकार सांसारिक उपदेश देने के अन्य उदाहरण भी दिए जा सकते हैं।

§११. इस प्रकार हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में कथोपकथन का उपयोग इन्हीं तीन कारणों से हुआ है। परन्तु इन्द्रावती के लेखक

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृ० २७-२८
२. वही पृ० २८

ने एक चौथे कारण से भी कथोपकथन का उपयोग किया है। उसने मधुकर, मार्तण्ड एवं हंसराज की कथाएं कथोपकथन में ही कह दी हैं जो कि कथानक में किसी प्रकार नहीं समातीं। इन्द्रावती ने अपने विरह दुख की चर्चा अपनी सखी से की। उसने उसे आशा बंधवाने के लिए दो कथाएं मधुकर एवं मार्तण्ड की सुनाई। तीसरी कथा राजकुंवर की पत्नी को धैर्य बंधाने के लिए उसकी एक सखी राजकुंवर के आगमपुर चले जाने पर सुनाई है। यह कथोपकथन के अन्तर्गत नहीं आता परन्तु लेखक ने उसे कथोपकथन के अंतर्गत ही रखने का प्रयत्न किया है।

संक्षेप में हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य के कथोपकथन का यही विश्लेषण है ।

———

साहित्यपद्म

२

काव्य कला

महाकाव्य—

§१. साहित्य दर्पणकार ने महाकाव्य के निम्नलिखित लक्षण बतलाए हैं:—

सर्ग बन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः
सद्वंशं क्षत्रियो वा पि धीरोदात्त गुणान्वितः
एकवंश भवाभूपाः कुलजा बहवोपि वा
श्रृंगारवीरशान्तमेकों गी रसइष्यते
अंगानि सर्वपि रसाः सर्वेनाटक संधयः
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यवयहा सज्जनाश्रयम्
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत
आदौ नमस्क्रिया शीर्वा वस्तु निर्देश एव वा
क्वचिन्निन्दा खलीदीनां सतां च गुणवर्णनम्
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेन्यवृत्तकैः
नास्तिस्वल्पा नास्ति दीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत
संध्या सूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्तवासराः
प्रातर्मध्यान्ह मृगया शैलर्त्तु वनसागराः
संभोग विप्रलम्भौ च मुनिस्वर्ग पुराध्वराः
रणप्रयाणोपयम मंत्रपुत्रोदयादयः
वर्णनीया यथा योगः सांगोपंगा अमीदश
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा
नामास्य सर्गोपाथय कथया सर्गनाम तु[१]

साहित्य दर्पण श्लोक ६१३—६१२

इसमें महाकाव्य की निम्नलिखित विशेषताएं बतलाई गई हैं:—

अ. कथा १. ऐतिहासिक अथवा लोक में प्रसिद्ध सज्जन संबंधी
२. नाटक की संधियों से संयुक्त
३. न अति स्वल्प और न अति दीर्घ सर्गों में विभक्त
४. सर्गों की संख्या आठ से अधिक

आ. नायक: १. देवता अथवा
२. सद्वंश क्षत्रिय अथवा
३. एक वंश के कई भूप अथवा
४. एक कुल के कई भूप
५. धीरोदात्त

इ. रस: १. शृङ्गार अथवा
२. शांत अथवा
३. वीर अंगी
४. अन्य रस उपर्युक्त में से एक की क्रोड़ में

ई. लक्ष्य: १. धर्म अथवा
२. अर्थ अथवा
३. काम अथवा
४. मोक्ष की प्राप्ति

उ. अन्य विशेषताएं: १. प्रारंभ में आशीर्वाद, नमस्कार वा वर्ण्यवस्तु का निर्देश
२. कहीं खलों की निन्दा और सज्जनों का गुण वर्णन
३. एक ही छंद परंतु सर्ग का अंतिम छंद भिन्न

४. एक सर्ग विभिन्न छंद वाला भी
५. सर्ग के अंत में अगली कथा की सूचना
६. काव्य का नाम या तो कवि के नाम पर या नायक के नाम पर हो परंतु अन्य नाम भी संभव है
७. सर्ग की वर्णनीय कथा से सर्ग का नाम
८. संध्या, सूर्य, चंद्रमा, रात्रि, प्रदोष, अंधकार, दिन, प्रातः, मध्यान्ह, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, समुद्र, संभोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह, मंत्र, पुत्र और अभ्युदय का यथासंभव सांगोपांग वर्णन

§२. कुछ हिंदी प्रेमाख्यानकों में ये लगभग सारी विशेषताएं पाई जाती हैं:—

§ ३. कथा—पद्मावती की कथा लोक प्रसिद्ध सज्जन संबंधिनी है। सच तो यह है कि समस्त भारतीय साहित्य में हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य से पहले लोक प्रसिद्ध कथा को लेकर महाकाव्य लिखे गए थे। आश्चर्यजनक सत्य यह है कि सबसे पहले लोक प्रचलित आख्यान को लेकर भारत में महाकाव्यों की रचना हिन्दुओं के द्वारा न होकर मुसलमानों के द्वारा हुई।

§४. नायक—ये सभी नायक धीरोदात्त हैं। धीरोदात्त नायक की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए रायबहादुर डा० श्यामसुन्दरदासजी लिखते, 'धीरोदात्त नायक शोक क्रोध आदि मनोवेगों से

विचलित नहीं होता। इसीलिए उसे महासत्व कहा गया है। वह क्षमावान, अति गंभीर, स्थिर और दृढ़व्रत होता है। अपनी प्रशंसा वह अपने आप नहीं करता, वह गर्व करता है परन्तु उसका गर्व विनय से ढका होता है और जिस काम को उठाता है उसे निभाकर छोड़ता है। स्थिरता और दृढ़ता·······की पराकाष्ठा धीरोदात्त नायक में होती है।"[1] रत्नसेन को हम धीरप्रशान्त नहीं कह सकते क्योंकि वह द्विज न होकर क्षत्रिय है। उसमें राजस गुण पर्याप्त मात्रा में है जो कि धीरप्रशान्त नायक में नहीं होना चाहिए। वह धीर ललित नहीं है क्योंकि वह निश्चिन्त और कलासक्त नहीं। उसे हम धीरोद्धत भी नहीं मान सकते क्योंकि वह मायावी, छली, चपल नहीं। वह अति गंभीर तो नहीं पर्याप्त गंभीर है। पद्मावती की रूप चर्चा सुनकर वह उससे प्रेम करने लगता है। उसका प्रेम क्षणिक उन्माद नहीं वरन् एक स्थिर और दृढ़ वस्तु है। उसने दृढ़व्रत लिया है कि :

रंग नाथ हौं जाकर हाथ ओहि के नाथ
गहै नाथ सो खैंचै फेरे फिरै न माथ[2]

वह गंधर्वसेन के बसीठों को भी स्पष्ट उत्तर देता है :

अब घर इहां जीउ ओहि ठाऊँ
भसम होऊँ बरु तजौं न नाऊँ[3]

वह विनयशील भी है। सिंहल से लौटते समय उसने जो बातें गंधर्वसेन से कही हैं वे उसकी विनयशीलता का परिचायक हैं। रत्नसेन में धीरोदात्त नायकों जैसी क्षमाशीलता नहीं दिखलाई

१. श्यामसुन्दरदास रूपक रहस्य (१९८८ वि०) पृ० ९४–९५
२. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृ० ६८
३. वही पृ० १०८

पड़ती। सच तो यह है कि उसके प्रदर्शन का उपयुक्त अवसर ही कथा में नहीं आया। वैसे अक्षमाशीलता का कोई विशेष उदाहरण भी हमें नहीं मिलता। देवपाल को यदि रत्नसेन ने युद्ध में प्राणदण्ड दिया तो कोई अक्षमाशीलता नहीं। आदर्श धीरोदात्त नायक राम ने रावण को एक ऐसे ही अपराध के लिए प्राण दंड दिया था। अलाउद्दीन ने जब कि पहली बार आक्रमण चित्तौड़ पर किया और उसके पश्चात् संधि की बातचीत की तो राजा ने उसे क्षमा कर दिया और संधि कर अलाउद्दीन का सम्मान करने को राजी हो गया। यह उसकी क्षमाशीलता का एक सुन्दर उदाहरण दिया जा सकता है। परंतु सच तो यह है कि न तो रत्नसेन कोई अति सात्विक व्यक्ति है और न उसकी क्षमाशीलता ही एक आदर्श धीरोदात्त नायकों के अनुकूल है।

सुजान, राजकुँवर, हँस आदि में भी ये विशेषताएँ पाई जाती हैं जिनकी विवेचना हम पात्र निरूपण वाले परिच्छेद में कर चुके हैं। वे महाकाव्य के नायक बनने के लिए पूर्ण रूप से उपयुक्त हैं।

§५. रस—इन समस्त काव्यों में अंगीरस श्रृंगार है। अन्य रस भी इनमें उसी श्रृंगार रस की क्रोड़ में आए हैं। इसका विश्लेषण हम रस परिपाक वाले परिच्छेद में करेंगे।

§६. लक्ष्य—महाकाव्य के लक्षणों के अनुसार महाकाव्य का लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम अथवा मोक्ष होना चाहिए। इन मनोरम एवं रुचिर कथाओं का लक्ष्य धर्म एवं काम है। इसकी विवेचना की जा चुकी है।

§७. अन्य विशेषताएँ—प्रारम्भ में प्रत्येक आख्यान में स्तुति खंड होता है। इसमें प्रत्येक कवि ईश्वर पैगम्बर आदि की स्तुति करता है और अपनी कथा का निर्देश करता है। मलिक मुहम्मद जायसी कहते हैं :

सिंघल दीप पदुमिनी रानी।
रतनसेन चितउर गढ़ आनी।
अलाउद्दीन देहली सुलतानू।
राघो चेतन कीन्ह बखानू।
सुना साहि गढ़ छंका आहि।
हिन्दू तुरुकन्ह भई लराई।
आंहि अन्त जस गाथा अहै।
लिख भाषा चौपाई कहै।[1]

इसी प्रकार प्रत्येक कवि ने अपनी अपनी कथा का निर्देश प्रारंभ में ही कर दिया है।

इन आख्यानों में कहीं पर निश्चित रूप से न तो खलों की निन्दा ही की गई है और न कहीं पर सज्जनों की प्रशंसा। वैसे इन आख्यानों का स्वर अपने मूल में नैतिक है और ये विशेषताएँ अपने आप आ गई हैं। अलाउद्दीन के प्रति जायसी का रुख, वजीर के प्रति कासिमशाह का रुख हमारे इस कथन के प्रमाण हैं।

इन आख्यानों में एक ही छंद का प्रयोग बराबर होता है। दोहा चौपाई की शैली इन काव्यों में है। जिसका प्रयोग आगे चलकर तुलसीदास ने भी अपने महाकाव्य रामचरित मानस में किया। हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य के सभी रचयिताओं ने एक सर्ग विविध छंदों में नहीं लिखा। केवल दुखहरनदास ने ही अपने पहुवावती में दोहा चौपाई के अतिरिक्त एकाध स्थल पर अरिल्ल छंद में लिखा है। सर्गों के अन्त में अगली कथा की सूचना प्रायः नहीं दी गई है। इन काव्यों का नामकरण उनकी नायिकाओं के नामों पर ही

१. वही पृ० ११

रस :

§१०. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में प्रधान रस श्रृंगार है। श्रृंगार रस दो प्रकार का होता है :

१. संयोग

२. वियोग

§११. दोनों प्रकार के चित्र इन काव्यों में मिलते हैं। संयोग श्रृंगार का वर्णन दो प्रकार का है :

१. संयोगियों के मन की भावनाओं का चित्रण

२. संभोग की शारीरिक क्रियाओं का वर्णन

संयोगियों के मन की भावनाओं का चित्रण दो प्रकार से किया गया है :

१. जहाँ उसके साथ प्रकृति का वर्णन दिया गया है

२. जहाँ वह विशुद्ध है

§१२. पहले की विवेचना प्रकृति चित्रण के अंतर्गत विशेष रूप से की जाएगी। यहाँ पर इतना कहना पर्याप्त है कि समस्त हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में यह नहीं मिलता। चित्रावली में इसका अभाव है। अन्य काव्यों में इसका प्रयोग कवियों ने बड़े ही मार्मिक रूप से किया है।

§१३. संयोगियों के मन की विशुद्ध भावनाओं के चित्रण के लिए कवियों ने अवसर हमारे सामने रखे हैं। ये अवसर प्रायः विवाह के पश्चात् सुहागरात तथा दीर्घ विच्छेद के पश्चात् मिलन के रूप में आते हैं। सुहागरात में पहले जायसी में सखियाँ आती हैं। वे रत्नसेन के योगी वेष का मजाक बनाती हैं :

धातु कमाय सिखे तैं जोगी
अब कस भा निर धातु बियोगी [1]

रत्नसेन संकेत से कहता है कि उसकी गुरु तो पद्मावती है और

का पुछहु तुम धातु निछोही
जो गुरु कीन्ह अंतर पट ओही [2]

*　　*　　*

कहाँ छपाए चाँद हमारा
जेहि बिनु रैन जगत अंधियारा [3]

और वह अपनी उत्कंठा साफ दिखलाता है :

जो एहि घरी मिलावै मोहीं
सीस देउं बलिहारी ओही [4]

सखियाँ परिहास भरे स्वर से उत्तर देती हैं :

अब सो चाँद गगन महं छपा।
लालच कै कस पावसि तपा।
हमहुँ न जानहिं दहुँ सो कहाँ।
करब खोज औ बिनउब तहाँ।
औ अस कहब आहि परदेसी।
करहि मया हत्या जनि लेसी।[5]

वे उसके योगी होने पर फिर व्यंग करती हैं :

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृ० १४७
२. वही
३. वही
४. वही
५. वही पृ० १४८

तू जोगी फिरि तप करू जोगू
तो कहं कौन राज सुख भोगू [1]

और

वह रानी जहवां सुख राजू
बारह अभरन करै सो साजू [2]

वातावरण को और अधिक उद्दीपक बनाने के लिए सखियां कहती हैं :

जोगी दिढ़ आसन करे अहथिर धरि मन ठांव
जो न सुना तौ अब सुनहि बारह अभरन नांव [3]

और इसके पश्चात बारह आभरणों की सूची दी गई है। कवि जोग के अशृंगारिक वातावरण को बिलकुल दूर कर देना चाहता है। इस कारण पद्मावती भी योग का मजाक उड़ाती है :

जोगि तोर तपसी कै काया [4]
* * *
हौं रानी तू जोगि भिखारी
जोगिहि भोगिहि कौन चिन्हारी [5]

रत्नसेन को कोई उत्तर नहीं आता। परिहास का तत्व उसमें कम क्या नहीं के बराबर है। वह गर्व से कह उठता है :

सुनु, धनि तू निसिअर निसि माहां
हौं दिनिअर जेहि के तू छाहां [6]

१. वही
२. वही
३. वही
४. वही पृष्ठ १५२
५. वही पृष्ठ १५३
६. वही

इससे संयोग शृंगार का मधुर वातावरण कुछ टूटता सा है। लेखक ने चौसर का खेल खिलवाकर वातावरण बनाना चाहा है। उसके पश्चात रत्नसेन अपने प्रेम का वर्णन करता है जो कि वास्तव में वातावरण में गंभीरता बढ़ा देता है। फिर संभोग होता है।

संभोग के पश्चात पद्मावती के मन की दशा परिवर्तित हो जाती है। रत्नसेन का मजाक उड़ानेवाली पद्मावती ( भले ही वह परिहास हो ) अब एक गंभीर प्रेमिका के रूप में हमारे सामने आती है और कहती है :

विनय करै पद्मावति बाला

* * *

पिउ आपसु माथे पर लेऊं।
जो मांगे नइ नइ सिर देऊं।
पै, पिय, एक वचन सुन मोरा।
चाख पिया मधु थौरे थोरा।[१]

परन्तु एक स्त्री पति को अपनी सुहाग रात में शिक्षा दे यह तो अच्छा नहीं लगता इस कारण वह आगे फौरन कहती है :

जो तुम चाहौ सो करौ ना जानौं भल मंद
जो भावै सो होइ मोहिं, तुम्ह पिउ चहौं अनंद[२]

रत्नसेन को यह शिक्षा पसन्द नहीं इसी कारण :

सब निसि सेज मिला ससि सूरू[३]

संभोग एवं संयोग शृंगार के इस कामुक वातावरण को जायसी

१. वही पृष्ठ १६०

२. वही

३. वही पृष्ठ १६१

अधिक देर तक नहीं रखना चाहते। सबेरा होते ही सखियाँ पद्मावती से पूछती है :

रानी, तुम ऐसी सुकुमारा।
फूल बास तन जीउ तुम्हारा।
सहि नहिं सकहु हिए पर हारू।
कैसे सहिउ कंत कर मारू।[1]

पद्मावती गंभीर उत्तर देती है :

आजु मरम मैं जाना सोई
जस पियार पिउ और न कोई[2]

और वह अपने उत्तर के द्वारा वातावरण को और अधिक गंभीर बनाती है :

करि सिंगार ता पहं का जाऊं।
ओही देखहुँ ठांउहि ठाऊं।
जो जिउ महं तो उहै पियारा।
तन मन सों नहिं होइ निनारा।
नैन मांह है उहै समाना।
देखौं तहां नाहिं कोउ आना।[3]

यह चिर उत्कंठित नायक नायिका का संयोग वर्णन है। इसमें जायसी ने मधुरता रखने की अपेक्षा गंभीरता का वातावरण ही अधिक रखा है। संयोग माधुरी का वातावरण कवि ने बहुत ही कम रखा है।

१. वही पृष्ठ १६२
२. वही
३. वही पृष्ठ १६३

नलदमन में तो वह वातावरण और भी कम हो गया है। दमयन्ती की सखियाँ कहती हैं :

सुन दूलह दुलहिन हम पाहां।
आवन देहं न तिन तुम पाहां।
जब लगि हमहिं न खेल हरावहु।
तौ लगि ताह न देखन पावहु।
खेलहु जो तुम चतुर खिलैया।
दोहा बिरहा पढ़ौ सवैया।[१]

इस प्रकार कवि वातावरण बनाना चाहता है। परन्तु वह बना नहीं पाता। न तो नल कोई इसका उत्तर देते हैं और न इस खेल का वर्णन ही कवि करता है। जो हृदय में गुदगुदी उत्पन्न कर सके। लेखक केवल कहता है :

खेलहिं खेल खेलए ठानी
गहि बाहीं सेज्या धन आनी[२]

और फिर संभोग होता है। इसके पश्चात् नायक नायिका संलाप लेखक ने दिया है जिसमें नल अपने प्रेम एवं उसकी सफलपूर्ति के लिए सहे कष्टों का वर्णन करता है। संभोग के बाद ये बातें कुछ कम मार्मिक सी लगती हैं :

सबेरे सखियाँ दमयन्ती से प्रश्न करती है :

देख तुम्हार रूप विकरारा
धरक धरक जिउ करै हमारा[३]

१. नल दमन पृष्ठ ९४
२. वही
३. वही पृष्ठ ९८

दमयन्ती एक उत्तर देती है :

आली तुम तिन्ह सुख ना जानहु
तब जानहु तब सो रस मानहु
❀ ❀ ❀
आली जब यह सुख मन पावै
तन हित सहज बिसर तब जावै[१]

इस प्रकार नल दमन में संयोग शृंगार की मधुरता का अभाव है। कवि ने न तो मन को कचोटनेवाले परिहासों की सृष्टि की है और न मीठी मधुभरी रसीली बातों की। सारी सुहागरात एक भी मर्म स्पर्शी चित्र उपस्थित नहीं करती। नायक नायिका के मन से एक भी मीठी उक्ति नहीं निकलती। सारा वातावरण बड़ा ही रूखा सा रहता है।

पुहुपावती इस दृष्टिकोण से नलदमन से श्रेष्ठतर है। सखियाँ पुहुपावती को लाती हैं।

इसके पहले पुहुपावती को वे समझाती हैं :

आज्ञा भंग न पिय की कीजै
जौ जिव मांगै तौ जिव दीजै
❀ ❀ ❀
लाज संक सम देहु अडारी
❀ ❀ ❀
बहुत मान करवै नहिं जीऊ[२]

पुहुपावती जाते समय नवोढ़ा होने के कारण सकुचा रही है :

१. वही

२. पुहुपावती पृष्ठ २१६

सकुचत डरत चली गज गौनी
करत विचार मनई मन मौनी[1]

सखियाँ राजकुँवर से कहती हैं :

करब सोइ रस भंग न होई
तुम्ह अस रसिक और नहिं कोई[2]

एकान्त में पुहुपावती परिहास करती हुई विव्वोक हाव का प्रदर्शन करती हुई कहती है :

* * *
मति मोहि से तैं लागु भिखारी
* * *
पेट कपट मुख मीठे बैना
तासें कौन मिलावै नैना[3]

राजकुँवर अपनी सफाई देता है :

मैं वैरागी भा तोहि लागी
राज पाट कर साजत आगी[4]

और इसके पश्चात अपनी कठिनाइयों का वर्णन करता है। इसके पश्चात कवि ने पचीसा खेल खिलाया है। इस खेल के द्वारा कवि ने कुछ उपदेश दिए हैं :

सुनु धनि अब जस चौपरि खेला
ब्रह्म हरी हर पासहि मेला

१. वही पृष्ठ २९७
२. वही पृष्ठ २९९
३. वही पृष्ठ ३००
४. वही

❀ ❀ ❀

❀ ❀ ❀[१]

ये उपदेश श्रृंगार के वातावरण में रसाभास उपस्थित करते हैं।
इसके पश्चात कवि ने संभोग का वर्णन किया है। और

तीन पहर सुख कै दुख मेटा
चौथ पहर करवट कै लेटा[२]

तब

तब बोली पुहुपावती रानी।
मुसकिआइ अंम्रित मुखबानी।
ए पिव तुम्ह निपट निरदई।
अब काहै कीन्ही निठुरई।
ऐसन करा जो हाल हमारी।
जनु हम बैरिनि रही तुम्हारी।
सांसति कै सब साज नसावा।
जनु हम किछू तोहार चुरावा।
दुख देह बहुत सतावो जीऊ।
तुम अपने सुख कारन पीऊ।
ता ऊपर सोए देइ पीठी।
काहे करहु नसन मुखदीठी।
अब तौ एक घरीनि की मोहि बांधेहुं जंजाल।
अब फिरि सोए पीठी दै कौन चतुरई लाल।[३]

१. वही पृष्ठ ३०१
२. वही पृष्ठ ३०९
३. वही

पुहुपावती का यह कथन संयोग के वातावरण में अपूर्व मधुरता भर देता है। राजकुँवर का उत्तर तो और भी चरम बिन्दु की ओर हमें खींचता है :

फिरि कै कुँवर नारि उर लाई।
एकर उतर दीन्ह मुसुकाई।
जौ न रही तैं बैरिनि मोरी।
काहे लीन्हे मन चित चोरी।
❀ ❀ ❀
प्रेम फांस माला गर लाई।
❀ ❀ ❀[१]

परन्तु प्रेम की परिहास भरे कलह का यह चित्र लेखक ने बहुत ही छोटा दिया है। सुहागरात के बाद यह सारा मधुर वातावरण कवि ने नष्ट सा कर दिया है। राजकुँवर सखियों से पुहुपावती के अस्तव्यस्त वेष के लिए क्षमा सी माँग रहा है :

मैं पुहुपावति दुख नहिं दीन्हा
जो कछु कीन्ह काम सब कीन्हा[२]

और इस काम के लिए वह सफ़ाई सी देता है :

जेहि रे काम सौं कोउ न बाचा
सभ कहँ काम नचावै नाचा[३]

इस प्रकार संयोग की माधुरी यहाँ पर सारी की सारी सीठी सी हो जाती है।

१. वही
२. वही पृष्ठ ३१०
३. वही

मंझन ने संयोग का वर्णन करते हुए मधुमालती की प्रथम समागम वाली लज्जा का चित्र मात्र दिया है :

बाला मान न परिहरे बाला [१]

जब

कुंअर पकरि कर पलव चापी [२]

तब कवि यह नहीं कहता कि मधुमालती अपने हाथ को झटके से छुड़ाने का प्रयत्न करती है या काँप उठती है परन्तु इतना ही कहता है :

सघन स्याम जनु दामिनि कांपी [३]

और कोई संभोग श्रृंगार का सुन्दर चित्र मंझन में नहीं है।

समस्त हिन्दी प्रेमाख्यानक में संयोग श्रृंगार का हृदयस्पर्शी मानसिक चित्र का अभाव है। इसके मूल में हावों की योजना का अभाव है। एकाध हाव तो अनजाने अवश्य आ गया है परन्तु उनकी संश्लिष्ट पंक्ति नहीं मिलती।

§१४. संयोग के कायिक पक्ष का बड़ा ही विशद वर्णन देने का प्रयत्न ये कवि करते हैं। जायसी कहते हैं :

तस होइ मिले पुरुष औ गोरी।
जैसे बिछुरी सारस जोरी।
पिय धनि गही दीन्ह गलबाहीं।
धनि बिछुरी लागी गर माहीं।

१. मधुमालती
२. वही
३. वही

ते छकि नवरस केलि करेहीं
चौका लाइ अधर रस लेहीं

❀ ❀ ❀

चतुर नारि चित अधिक चिहूंटी
जहाँ प्रेम बाढ़ै किमि छूटी

❀ ❀ ❀

भयउ जूझ जस रावन रामा।
सेज बिधांसि बिरह संग्रामा।
लीन्ह लंक कंचन गढ़ टूटा।
कीन्ह सिंगार अहा सब लूटा।
औ जोबन मैमंत बिधांसा।[१]

❀ ❀ ❀

मंझन में इसका अभाव है। उसमान लिखते हैं :

लै सुजान तब अंक में लाई।
घूंघुट खोलि रूप अस देखा।
सो देखा जोहि सीस सुरेखा।
अधर घूंट सो अम्रित पीआ।
जेहि के पिअत अमर भा हीया।
राहु गरास कलानिधि कांपा।
लोयन पल आनन पट झांपा।
पुनि मनमथ रति फागु सवांरी।
खोलि अछूत कनक पिचकारी।
रंग गुलाल दोउ लै भरे।

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ १५९-६०

रोम रोम तन मोती झरे
सेद थंम रोमांच तन आसु पतन सुरभंग
प्रथम समागम जो कियो सीतल भा सब अंग[1]

सूरदास लखनवी लिखते हैं :

प्रथम अधर सों अधर मिलाई
मातौं अहै खेल पर आई
❀ ❀ ❀
प्रीतम केलि धमार लगाई
धन कुहुकी होई निरत मचाई[2]

दमयंती के माता पिता का संभोग वर्णन भी लेखक ने दिया है :

❀ ❀ ❀
विहंसत कंत सेज पर गयऊ।
भर अँकवन गहि कंठ लगाई।
रहस दसन धनि बीच दिखाई।
उपजैं काम कथा दुहुँ ओरा।
मिल गए एक एक उठै घनघोरा।
श्रम जल बूंद झमक जहँ परी।
पग बेनी चातुरू रति करी।
नेवर मोर ऊँच कुहुकाएँ।
छदर कंठ झींगुर झनकाएँ।
पौन हिलोर उठैं झकझोरा।
झूलै दोउन केलि हिंडोरा।

१. चित्रावली (१९१२) पृष्ठ १०४:१०
२. नलदमन पृष्ठ ९५

माझ प्रकट आयो चौमासा।
जँबत छुर भए आक जवासा।
तरनी जोबन समुद महँ नाभि सीय जहँ भाँत।
स्वाती बूँद आवा यहै हँस हिरदै मैं सांत।[1]

इस प्रकार सूरदास यह वर्णन संकेतों से करते हैं।

दुखहरनदास लिखते हैं :

घूँघट खोलि अधर रस चाखा।
मैंन वियापा रहै न राखा।
कँचुक खोलि के अँक मिलावौ।
काँपो अँग उमँग बढ़ावौ।
नौबत बाजै लागु नगारा।
बिछिया घुघुर झाँझ नकारा।
मैंन भंडारा जाय उघारा।
लेइ कुंजी जनु खोला तारा।[2]

एक दूसरा चित्र दुखहरनदास देते हैं :

अधर से अधर मधुर रस लीन्हा।
हिअ से हिआ लाइ सुख दीन्हा।
कर से कर भुज से भुज गहा।
नैन से नैन निरख छवि रहा।
पेट से पेट लंक से लंका।
होइ एक सुख प्रेम के अंका।
जाँघ से जाँघ पाउँ से पाऊँ।

१. वही पृष्ठ ३१

२. पुहुपावती पृष्ठ ३०८

सीस से सीस मिलावा राऊ।
एहिविधि छत्तिस आसन भोगी।
औ चौरासी आसन जोगी।
कोक कला कै काम नेवारा।
❀ ❀ ❀[1]

इस प्रकार संभोग के चित्रण में ये कवि मर्यादा को छोड़ देते हैं और स्वच्छन्द होकर वर्णन करने लगते हैं।

§१५. संक्षेप में हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में संयोग शृंगार का यही विश्लेषण है। कवियों ने इस क्षेत्र में माधुरी का अभाव सा रखा है। बिछुरी हुई सारस की जोड़ी जब मिलती है, युगों की प्रतीक्षा एवं प्रणय के पश्चात् जब प्रियतम और प्रेयसि मिलते हैं तो उनके हृदय की क्या दशा होती है, इसकी कल्पना इन कवियों के पास नहीं दिखलाई पड़ती। संयोग शृंगार को एकमात्र कायिक मान लेना नीचे साँस्कृतिक स्तर का परिचायक है। कायिक संभोग का वर्णन करते हुए भी ये कवि कलात्मकता से बहुत दूर हो जाते हैं। सूरदास लखनवी अवश्य संकेतों का सहारा लेते हैं परन्तु बहुत कम। संभोग को यदि ये कवि ध्वनित मात्र करते तो वर्णन वास्तव में सुन्दर होता। मानसिक पक्ष का यदि सुन्दर उद्घाटन हो तो भी मार्मिकता आती। परन्तु इसके अभाव में इनका संयोग वर्णन एकाध स्थल को छोड़कर मन पर अपनी गहरी छाप नहीं छोड़ता। इसके मूल में कवियों का रस शास्त्र के ज्ञान का अभाव है।

§१६. वियोग शृंगार का चित्रण इन कवियों ने दो प्रकार से किया है :

१. प्रकृति के सहारे

१. वही पृष्ठ ४३०

२. स्वतंत्र रूप से

§१७. प्रकृति के सहारे वर्णन दो प्रकार का हुआ है :

१. जहाँ पर प्रकृति उद्दीपन के रूप में है।

२. जहाँ पर प्रकृति स्वयं मानवी भावनाओं से संयुक्त होकर विरहणी या विरही के दुख में दुखी दिखलाई पड़ती है।

§१८. दूसरे प्रकार के वर्णन का विश्लेषण विशेष रूप से प्रकृति वर्णन के साथ आगे किया जाएगा। उद्दीपन के रूप में प्रकृति को रखकर इन कवियों ने अपने वर्णन को अत्यधिक मार्मिक बना दिया है। नागमती का बारहमासा इसी कारण अपने आप में एक अमर काव्य बन गया है।

§१९. वेदना का अत्यन्त निरीह, निरावरण, मार्मिक, गंभीर, निर्मल एवं पावन रूप इस बारहमासे में मिलता है। नागमती भले ही शरीर की काली हो उसका मन अत्यन्त उज्ज्वल है। उसकी दशा कितनी करुण है। आषाढ़ की नई घटा उठती है, बादल गरजते हैं, दादुर, मोर, कोकिल पपीहे बोलते हैं, बिजली तलवार के समान चमकती है, परन्तु वह अकेली है।

जिन्ह घर कंथा ते सुखी हम गारौ औ गर्ब
कंत पियारा बाहिरै हम सुख भूला सर्ब[1]

सावन में पानी की झड़ी लगी है। खेतों में भरनी लगी है और वह विरह में सूखती जा रही है। विरहनी जहां तक देखती है, सारा संसार जल में डूब गया है, परन्तु उसकी नाव में तो खेवक ही नहीं है और स्वयं नाव भी थक गई है। वह हृदय को मसोस देने वाली बात कहती है :

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ १७३

परबत समुद अगम बिच बीहड़ घन बन ढांख
किमि कै भैंटों कंत तुम्ह, ना मोहि पांव, न पांख [1]

वास्तव में रत्नसेन पैरों से सिंहल गया था और हीरामन पंखों से। नागमती तो स्त्री है। उसके न पांव हैं, न पंख। वह कितनी विवश है।

विरहिणी भरे भादों के महीने में सूखती जा रही थी। पलंग की एक पाटी पकड़े वह सारी रात काट देती है।

क्वार लग गया। प्रियतम, अब पानी कम हो गया है और नागमती का शरीर भी लट गया है, अब भी आ जाओ। सरोवरों में हंस लौट आए, सारस क्रीड़ाएं करने लगे और खंजन फिर दिखलाई पड़ने लगे हैं।

लो, पूस भी आ गया सेनापति ने कहा है :

आयौ सखी पूसौ भूलि कंत सौं न रूसौ [2]

परन्तु यहाँ तो कंत ही नहीं। कवि नागमती का वर्णन करता है :

रकत ढुरा आंसू गरा हाड़ भएउ सब संख
धनि सारस होइ ररि मुई पीउ समेटहि पंख [3]

नागमती स्वयं कहती है।

पिउ सों कहेउ संदेसड़ा, हे भौंरा, हे काग
सो धनि बिरहै ररि मुई तेहिक धुआं हम्ह लाग [4]

१. वही पृष्ठ १७४
२. उमाशंकर शुक्ल : कवित्त रत्नाकर (१९३६) पृष्ठ ८७
३. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ १७६
४. वही पृष्ठ १७५

अब माघ लग गया। पाला पड़ने लगा है। हे प्रियतम, तुम सूर्य होकर तपो, अन्यथा नागमती का जाड़ा नहीं छूट सकता। उसके नेत्र महावट के पानी की भांति चू रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो नागमती की आंखों से ओले गिर रहे हों।

फागुन आ गया। नागमती का शरीर पीले पत्ते के सदृश कांप रहा है। तरुवरों के पत्ते झर रहे हैं और नए पत्ते निकल रहे हैं। वनस्पति के हृदय में प्रसन्नता भरी है। नागमती के लिए हृदय में दूनी उदासी भर गई है। नागमती को ऐसा प्रतीत होता है कि किसी ने उसके शरीर में होली की आग लगा दी हो। वह तो बस यही चाहती है:

यह तन जारों छार कै कहौं कि पवन उड़ाव
मकु तेहि मारग उड़ि परै कंत धरै जहं पांव[1]

चैत आ गया। वसंत ऋतु है। चारों ओर संसार में प्रसन्नता है। परन्तु नागमती के लेखे में सारा संसार उजाड़ है। प्रिय अब भी आ जाओ। नागमती काम के हाथों में पड़ी है। इसी कारण

बिरिनि परेवा होई पिउ, आउ बेगि परु टूटि
नारि पराए हाथ है, तोहि बिनु पाव न छूटि[2]

अब तो बैसाख आ गया, चारों ओर संसार जलने लगा है। सूर्य स्वयं हिमाचल की ओर झुक रहा है। प्रियतम, आओ और इन जलते शोलों को फूल बना दो।

जेठ में लू झुलसा रही है। यमुना स्वयं जलकर काली पड़ गई है। परंतु प्रिय न आए।

१. वही पृष्ठ १७७
२. वही

इस प्रकार कवि ने बड़ी मार्मिकता के साथ प्रकृति के सहारे नागमती की वियोग गाथा का वर्णन किया है। इसमें कवि की कला प्रकृति को दो प्रकार चित्रित करने में है :

१. प्रकृति को नागमती की दशा के प्रतिकूल चित्रित करना।

२. प्रकृति को नागमती की दशा के अनुकूल चित्रित करना।

पहले के उदाहरण निम्न लिखित हैं :

सावन बरस मेह अति पानी
भरनि, परी, हौं बिरह झुरानी [1]

* * *

धनि सूखे भरे भादौं मांहा [2]

यहाँ पर कवि प्रकृति को प्रतिकूल रखकर नागमती के हृदय में वेदना उद्दीप्त करता है और पाठक के हृदय में करुणा। यह कवि की चातुरी है।

दूसरे के उदाहरण निम्न लिखित हैं :

बरसै मघा झकोरि झकोरी
मोर दुइ नैन चुवैं जस ओरी [3]

* * *

लागेउ माघ परै अब पाला
बिरहा काल भएउ जड़काला [4]

* * *

१. वही पृष्ठ १७३ २. वही पृष्ठ १७४
३. वही ४. वही पृष्ठ १७६

तन जस पियर पात भा मोरा
तेहि पर बिरह देइ झकझोरा [1]

यहाँ पर कवि प्रकृति को दशा के अनुकूल रखकर नागमती के हृदय में वेदना उद्दीप्त करता है और पाठक के हृदय में करुणा। इस परिपाक की कवि की यह बड़ी कला है।

इन्हीं दोनों प्रकार से कवि ने नागमती को विरह गाथा को करुणतम एवं सुन्दरतम बना दिया है। यहाँ पर तुलसी के विरह वर्णन की याद आ जाती है। तुलसी के राम विरह संतप्त होकर लक्ष्मण से बातें कर रहें हैं। वे प्रकृति की बात कहते हैं परन्तु एक विरही की भाँति नहीं वरन् एक ज्ञानी पुरुष की भाँति :

दामिनी दमक रही घन माहीं
खल की प्रीति यथा थिर नाहीं [2]

उपदेश देने एवं नीति शास्त्र की विवेचना करने लगते हैं। इसके पीछे तुलसी की आदर्शात्मकता एव राम का ब्रह्मत्व है। जायसी एक-मात्र मानवी कवि हैं। इस कारण वे आदर्शात्मकता के पीछे नहीं चलते।

जायसी की भाँति प्रकृति को उद्दीप्त के रूप में रखकर विरह का वर्णन हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में सर्वत्र मिलता है।

चित्रावली के दुख की भी करुण कहानी है। बसंत ऋतु आ गई है। वन फूल उठा है और नया बन गया है। जहाँ तहाँ भौंरे फूलों पर गूंज रहे हैं। बसंत की सार्थकता फूलों और फूलों की

१ वही पृष्ठ १७७

२. राम चरित मानस किष्किंधाकाण्ड दोहा १४

सार्थकता भौरों में है। परन्तु चित्रावली के जीवन रूपी उपवन में तो भौंरा ही नहीं है। उसके यौवन का वसंत सारा उजाड़ है। वह लाल रंग ही नहीं देख सकती। उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो सारे संसार में दावाग्नि लगी हो। मन्मथ ने पुष्पों के पंचबाण रखे हैं और उनसे विरहिणी को ताक ताककर मार रहा है।

ग्रीष्म की ऋतु आ गई है। सारा संसार धूप में झुलस रहा है। चित्रावली का हृदय किसी की परछाहीं खोज रहा है। सूर्य तो बाहर जला रहा है और विरह भीतर। अब विरहिणी क्या करे। रसना प्रियतम का नाम पुकारते पुकारते सूख गई है। अब चित्रावली क्या करे। वह पानी पीती है परन्तु व्यर्थ। उसे तो प्रेम की प्यास है। गर्मी के कारण पंथिओं ने भी आना जाना बन्द कर दिया है। वह संदेश भी भेजे तो किससे। वह एकटक बाट जोह रही है। बाट जोहते जोहते उसकी आँखें जलने लगी हैं, हाँ, धुवां अवश्य नहीं दिखलाई पड़ता।

लो, अब वर्षा आ गई :

दूभर रितु जब पावस लागी
घन बरसे विछ हम तन आगी [१]

इसी कारण

जिमि जिमि परै मेघ जल धारा
तिमि तिमि उर सों उठे लुआरा [२]

और कोकिल भी रात में बोल उठती है, दामिनी चमकती है, चारों ओर पानी भरा है, पंथी जहां तहाँ टिक गए हैं। प्रियतम को कौन ला सकता है।

१. चित्रावली ( १६१२ ) पृष्ठ ९४
२. वही

शरद् आ गई। रात बड़ी उज्ज्वल है। शशि रूपी पारधी ने चारों ओर से घेरा बाँधकर किरणों के बाण चलाने प्रारम्भ कर दिए दिए हैं। मन रूपी मृगी अब कहां जाए। नींद आँखों में आती अवश्य है परन्तु आंसुओं की धारा में शीघ्र ही बह जाती है। अब परिस्थिति बड़ी ही विषम है :

गुपत मदन दौ परचरै प्रगट दहै दुजराजु
सखी प्रान घट क्यों रहै कंत पियारे बाजु

हेमंत ऋतु में तो परिस्थिति और भी गिर गई है।

परै तुषार विषम निसि सारी
*        *        *
*        *        *
बरै लागि उर मदन अंगीठी
बिरह सराग करेज पिरोवा
चुई चुई परे नैन जो रोवा[२]

और

उरध उसास पौन परचारा
धुकि धुकि पंजर होय अंगारा[३]

शिशिर की भी बड़ी करुण कथा है। ठंडी हवा चल रही है। शीत से हृदय तक काँप रहा है और नेत्रों में पानी भर भर आता है। पंचमी आई है सखियों ने सिर पर गुलाल डाला है। विरह की

१. वही पृष्ठ ६५
२. वही
३. वही

आग की लपट अब प्रगट दिखलाई पड़ने लगी। अब तक तो यह शरीर के अन्दर थी और अब बाहर भी आ गई। चित्रावली की इच्छा यही है :

अब तन होरी लाइकै होइ चहौं जर छार
चहुँ दिसि मारुत संग होइ ढूंढौं प्रान अधार

चित्रावली के लेखक ने भी जायसीवाली कला का उपयोग किया है। प्रकृति को प्रतिकूल रखने का उदाहरण निम्न लिखित है :

ऋतु बसंत नूतन बन फूला।
जहं तहं भौंर कुसुम रंग झूला।
आहि कहां सो भौंर हमारा।
जेहि बिनु बसन बसंत उजारा।

अनुकूल रखने का उदाहरण निम्न लिखित है :

सिसिर समीर शरीर सतावे
जाड़ेहु नैन नीर भरि आवै[3]

जैसा कि इन उदाहरणों से ही स्पष्ट है उसमान प्रकृति को नायिका की दशा के प्रतिकूल या अनुकूल रखने में बड़े चतुर नहीं हैं। वे न तो दोनों की दशाओं में प्रतिकूलता की गहरी लकीर खींचने में ही सफल हैं और न समानता की। इसी कारण उस्मान का विरह वर्णन कुछ कमजोर हो गया है।

दुखहरनदास की रूपवंती की विरह-गाथा बड़ी करुण है।

१. वही पृष्ठ ६६
२. वही पृष्ठ ६४
३. वही पृष्ठ १६

ग्रीष्म ऋतु है। विरह सूर्य की भाँति तप रहा है। सूर्य तो रात में छिप जाता है, दिन में तपता है परन्तु विरह का सूर्य बराबर रात दिन तपा करता है। कभी कभी नैनों में प्रेम की घटा उमड़ती है और मदन का बवंडर उठता है। दुख संताप बक-पंक्ति के समान है और रुदन कोकिल की कुहुक के समान।

पावस ऋतु में सुख और चैन भूल गया है। दोनों नेत्र सावन और भादों हो रहे हैं। रात दिन उनसे पानी गिर रहा है फिर नींद कैसे आ सकती है। दादुर मोर बोलते हैं, बिजली चमकती है, बादल गरजते हैं और सेज अकेली है। घन बरस रहा है, मन तरस रहा है। स्त्रियाँ चारों ओर खुशियाँ मना रही हैं। किन्तु विरहणी नायिका रात दिन पीउ पीउ पुकारती पुकारती पपीहे के समान हुई जी रही है।

शरद् ऋतु आ गई। क्वार और कार्तिक दोनों दुखदाई हैं। चाँदनी सारे संसार को जलाए दे रही है। लोग दिवाली मना रहे हैं इस कारण विरह और भी तीव्र हो रहा है। चातक को स्वांति का पानी मिला परन्तु रूपवंती की चाह अभी तक पूरी नहीं हुई।

शिशिर ऋतु बड़ी दुखदायी है। दिन छोटा हो गया है और रात बड़ी हो गई। चकई चकवा की बोली गोली के समान लगती है। ऊपर से तो जाड़ा देह को सुखाता है और भीतर विरह प्राणों को जलाए देता है।

हेमन्त ऋतु आ गई। सारा संसार बड़ा प्रसन्न हो रहा है। तरुओं में पतझर हो गया। सारा संसार फाग खेल रहा है। उसे देखकर विरह और भी बढ़ता है। यदि प्रियतम घर होते तो रूपवंती भी फाग खेलती और गाती।

संक्षेप में दुखहरनदास कृत पुहुपावती में प्रकृति को उद्दीपन रूप

में रखकर कवि ने जो विरह वर्णन किया है उसकी यही रूपरेखा है। कवि ने प्रकृति को अनुकूल एवं प्रतिकूल रखने की कला का उपयोग इसमें किया है :

प्रतिकूल :

ऊपर जाड़ा देह सुखावै
भीतर विरहा प्रान जरावै[१]

अनुकूल :

पावस रितु···· ···· ····
भए सावन भादौं दोउ नैना[२]

परन्तु दुखहरनदास इस कला में और भी कमजोर हैं। प्रतिकूलता एवं अनुकूलता की रेखाएँ उनकी बड़ी ही हल्की हैं। उन्होंने एक दूसरी कला का भी सहारा इस वर्णन में लिया है। वे साङ्ग रूपक बाँधते हैं :

उमड़े नैन प्रेम घन घोरा
मदन बवंडर होइ झकझोरा[३]

परन्तु ये रूपक संख्या में अल्प एवं विस्तार में छोटे हैं। इस कारण उनका विरह वर्णन उतना मार्मिक नहीं हो पाता।

मंझन की मधुमालती की विरह व्यथा भी करुण है। कवि ने बारहमासा आषाढ़ से प्रारम्भ न कर श्रावण से प्रारंभ किया है।

सावन की घटा घहरा रही है। अपने प्रेमी का स्मरण आते ही मधुमालती की आँखों में पानी भर आता है। भादों की

१. पुहुपावती पृष्ठ ३२७

२. वही पृष्ठ ३२६

३. वही

रातें ही भयावही हैं। क्वार के मास की कथा भी बड़ी करुण है। कार्तिक में तो शरद् ऋतु ही आ गई हैं। उसकी रातें तो उसी को अच्छी लगती हैं जो प्रियतम के गले से लग कर सोती है। मधुमालती के लिए तो चाँद अंगारे के समान है। अगहन में मधुमालती का शरीर विरह के कारण दिन की भाँति घटता जाता है। पूस की दूभर रातें तो अबला मधुमालती से संभाली नहीं जातीं। माह के महीने में तो जिस स्त्री का प्रियतम बाहर चला जाए उस स्त्री के लिए जीवन से भला मरण है। फागुन में होली के समान ही मधुमालती का शरीर जल रहा है वह फुलवारी के समान खाँखड़ हो रही है। चैत्र में तरु फिर पल्लवित हो उठे हैं। परन्तु मधुमा लती की दशा बड़ी ही करुण है। प्रियतम एवं माता दोनों ने ही उसे छोड़ दिया है। वैशाख का दुख भी भारी है। वन हरा होता जा रहा है और विरहणी का शरीर जलता जा रहा है। जेठ में अन्दर विरह और बाहर सूर्य जला रहा है। आषाढ़ में मेघों रूपी हाथियों को दामिनी रूपी बर्छी से चलाया जा रहा है।। लोग अपने अपने घर जा रहे हैं परन्तु मधुमालती क्या करे।

मंझन की मधुमालती का बारहमासा सबसे कमजोर है।

संक्षेप में प्रकृति को उद्दीपन के रूप में रखकर जो विरह वर्णन हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में मिलता है उसका यही विश्लेषण है। स्मरणीय यह है कि पुरुष पात्र का विरह प्रकृति की पृष्ठ भूमि देकर नहीं के बराबर किया गया है।

§२०. मन की विशुद्ध भावनाओं का वर्णन करने में कवि प्राय: कथोपकथन का प्रयोग करते हैं। विरहिणी अपनी सखी या अन्य किसी से अपना दुख कहती है। नागमती ने अपनी विरहगाथा सखी तथा पंछी से, पद्मावती ने धाय से, रूपवंती ने मैना से,

चित्रावली ने अपनी सखी रंगमती से और कौंलावती ने हंस मित्र से अपनी विरहगाथा कही है। सरलता, शुचिता, अकृत्रिमता एवं मार्मिकता इन विरह गाथाओं की विशेषताएँ हैं। इन सारे वर्णनों में नागमती का विरह श्रेष्ठतम है।

नागमती एकटक चित्तौड़ का पथ देख रही है। प्रियतम गए तो लौटे नहीं। वे किसी स्त्री के प्रेम में पड़ गए हैं। सुआ काल होकर प्रिय को ले गया है। प्रिय न जाते चाहे प्राण भले ही चले जाते :

आहि जो मारै विरह कै आगि उठै तेहि लागि
हंस जो रहा सरीर महं पाँख जरा गा भागि[१]

नागमती पागलों की भाँति वन वन में भटक रही है और कोकिल के समान कुहुक कुहुक कर रो रही है। आधी रात में एक पंछी उसके रुदन से द्रवित होता और पूछता है :

तू फिरि फिरि दाहै सब पाँखी
केहि दुख रैन न लावसि आँखी[२]

वह उत्तर देती है :

चारिउ चक्र उजार भए कोई न संदेशा टेक
कहौं बिरह दुख आपन बैठि सुनहु दंड एक[३]

किन्तु विरह व्यथा कहना बड़ा कठिन है :

हाड़ भए सब किंगरी नसैं भईं सब तांति
रोवं रोवं तें धुनि उठै कहौं बिथा केहि भाँति[४]

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ १७२
२. वही पृष्ठ १८१
३. वही　　४. वही

वह अपनी विरह कथा नहीं कह सकती। केवल संदेश मात्र भेजती है। रत्नसेन के लिए उसके पास कोई संदेश नहीं है। पद्मावती के लिए ही वह संदेश भेजती है :

पद्मावती सौं कहेहु विहंगम।
कंत लुभाइ रही करि संगम।
तू घर घरनि भई पिउ हरता।
मोहि तन दीन्हेसि जप औ बरता।

❀ ❀ ❀

हमहुं बिआही संग ओहि पीऊ
आपुहि पाह जानु पर जीऊ[1]

और अन्त में विवशता से वह कहती है :

अबहुं मया करु करु जिउ फेरा।
मोहिं जियाउ कंत देइ मेरा।
मोहि भोग सो काज न बारी।
सौंह दीठ के चाहनहारी।[2]

और पत्थर को भी पिघलानेवाले वचन कहती है :

सवति न होसि तू बैरिनि मोर कंत जेहि हाथ।
आनि मिलाव एक बेर तोर पांय मोर माथ।[3]

नागमती के प्रेम की गहराई और सच्चाई का जो परिचय इन इन वचनों में मिलता है वह समस्त हिन्दी साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ

१. वही
२. वही पृष्ठ १८२
३. वही

है। प्रेम की यह गहराई और सच्चाई ही इस विरह वर्णन को इतना मार्मिक बना देता है। नागमती के विरह वर्णन में यों तो आह ऊह वाले स्थल भी हैं परन्तु अन्य मार्मिक स्थलों के कारण वे दब जाते हैं। नागमती एक हिन्दू सद्गृहस्थ की पत्नी है। उसके प्रणय में भव्यता है।

पद्मावती का विरह भी अत्यन्त मार्मिक है। रत्नसेन की शूली का समाचार सुनकर वह हीरामन से कहती है:

मरे तो मरों जियौं एक साथा[1]

और लक्ष्मी समुद्र खंड में वह कहती है:

को मोहिं आग देइ रचि होरी
जियत न बिछुरै सारस जोरी[2]

वह तो मरने के लिए विकल है:

अगिन मांग पै देइ न कोई
पाहुन पवन पानि सब कोई[3]

लक्ष्मी उसे समझाती है तो वह कुछ शांत होती है। पद्मावती का विरह नागमती की अपेक्षा अधिक तीव्र है परन्तु उससे उतनी गहराई एवं पावनता नहीं। परन्तु अपनी तीव्रता के कारण यह विरह मार्मिक अवश्य बन गया है।

विवाह के पहले पद्मावती का जो विरह वर्णन कवि ने दिया है उसमें कामासक्ति अधिक है।

१. वही पृ० १२८
२. वही पृ० २०२
३. वही पृ० २०३

पद्मावति तेहि जोग संजोगा।
परी पेम बस गहे वियोगा।
नींद न परै रैन जो आवा।
सेज के बीच जानु कोइ लावा।[1]

वह धाय से कहती भी है:

अब जोबन बारी को राखा
कुंजर विरह बिधंसे साखा[2]
* * *
जोबन सुनेउं कि नवल बसंतू
तेहि बन परेउ हस्ति मैमंतू[3]

पुहुपावती की भी कुछ ऐसी ही दशा है:

सोरह बरस की जब वह भई।
तन महं आइ चढ़ी तरुनई।
मनमथ मन महं आन समाना।
* * *
नाह बिना कछु लाग न नीका।
अमृत भोजन सो सम फीका।
चित महं विरह पेम अधिकाना।
चाहै आपन कन्त सुगाना।[4]

पद्मावती के पश्चात के हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में दुखी शरीर

१. वही पृ० ८२
२. वही पृ० ८३
३. वही
४. पुहुपावती पृ० ४१

का वर्णन अधिक मिलता है। उसमें विहरिणी के मन के भावों का विश्लेषण कम हो गया। चित्रावली में कवि लिखता है :

> खुभिया कान सेल की जोरी।
> विरहै आनि हनी दुहुं ओरी।
> हिएं डोल मुकुताहल हारू।
> बिरहा जनु उर हनै कटारू।
> कटि किंकिनि काटे तन दाधा।
> मानहुं कीन्ह चहै दुइ आधा।
> चूरा चूरे देह दुहेली।
> पायल मानहुं पावरि मेली।
> अनवट महं जनु विष ओरसा।
> बिछिया बीछु होइ पग डसा।
> दाहे सब सिंगार तन जेता।
> कुल की लाज सहै दुख एता।[1]

पुहुपावती में विरहिणी रंगीली के चित्र को कवि हमारे सामने खींचता है :

> डोले अंग न बोले बैना
> इह गति देख चकित भइ मैना
> जानेसि कोउ इहे मूरती[2]

पुरुषों के विरह श्रृंगार का वर्णन करते हुए ये कवि प्रायः सभी एकसे हैं। रत्नसेन की दशा जायसी वर्णित करते हैं :

१. चित्रावली (१९१२) पृ० ९३

२. पुहुपावती पृं० ४०२

सुनतहि राजा गा मुरझाई ।
जानों लहरि सुरुज की आई ।
* * *
खिनहीं उसास बूड़ जिउ जाई ।
खिनहिं उठे निसरे बौराई ।
खिनहिं पीत खिन होइ मुख सेता ।
खिनहिं चेत खिन होइ अचेता ।[1]

इसके पश्चात्

तजा राज राजा भा जोगी
ओ किंगरी कर गहे बियोगी[2]

और राजा पद्मावती के देश के लिए चल पड़ा ।

चित्रावली के सुजान की परिस्थिति भी बहुत कुछ ऐसी ही है :

षन एक कुंवर अचक मन रहा ।
कौतुक सपना जाइ न कहा ।
पुनि जो बिरह लहरि तन आई ।
थाभि न सकेउ गिरेउ मुरझाई ।
दोउ नैन जनु समुंद अपारा ।
उमंडि चले राखे को पारा ।
फारे झंगा ओ लोटे परा ।
बंधुन कोऊ हाथ को धरा ।
भरि गै खेह सीस औ देहा ।
सेवक नाहिं जो झारे खेहा ।

१. जायसी ग्रंथावली ( १९३५ ) पृ० ५६
२. वही पृ० ६०

संग न कोऊ हितू पियारा।
को उठाइ बैठाइ संभारा।
बिन चैते पिन होइ बेसंभारा।
घरी घरी सिर मुहं देहमारा।[1]

* * *

........कुंवर परा बिकरारा।
हाथ पांव सिर कछु न संभारा।
ऊभ उसास लेइ ओ रोवा।

* * *

पूछे बातन उतर न देई।
पिन पिन ऊभ सांस पे लेई।
अरुन बदन पियराई गा रुहिर सूखगा गात।
रहा झांपि लोयन दोऊन कहै न पूछे बात।[2]

सूरदास लखनवी के नल की भी ऐसी ही दशा है :

अति व्याकुल छिन चैन न पावै।
पल पल पीर प्रबल होई आवै।
मुख उसास निकसै इमि ताती।
सनमुख होई जरै तीन्ह छाती।
अंसुअन परे झार उर आवै।
मनौ चूनकर चून बिछावै।[3]

* * *

१. चित्रावली (१९१२) पृ० ३६
२. वही पृ० ३७
३. नल दमन पृ० ४७

कबहूँ कर अचेत होइ जाई मानो लहर सरप कै आई[1]
* * * पुनि कबहूँ जो चेत महं आवा[2]

* * *

थक अस रहै टकटका लाई जानहु मूरति चित्र बनाई[3]

इस प्रकार हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में पुरुषों के विरह वर्णन में मधुरता एवं तीव्रता का अभाव है। पुरुषों के मुख से एक भी प्रेमाग्नि से झुलसी उक्ति नहीं निकलती।

संक्षेप में हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में शृंगार रस का यही विश्लेषण है। संयोग और वियोग शृंगार में वियोग अधिक तीव्र एवं सफल है। प्रेम की पीर से भरे ये कवि प्रेम की तीव्रता ही चित्रित करने का प्रयत्न करते थे।

§२१. फारसी से प्रभावित होते हुए भी इन काव्यों में अतिशयोक्ति हास्य में परिणत नहीं हो पाई। सर्वत्र एक यह बात समान रूप से देखने में आती है कि कवि प्रायः उक्ति पर न जाकर व्यथा की भावुक व्यंजना पर गए हैं। इसी कारण इनके वर्णन में गंभीरता की छाप है। ये कवि प्रेम की गहराई एवं सच्चाई में विश्वास करते थे उसके वाह्यावरण में नहीं। इस कारण जहाँ पर वह चित्रित हो सकी है, काव्य बड़ा ऊंचा हो गया है।

§२२. शृंगार के अतिरिक्त हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में वीर शाँत, वात्सल्य, वीभत्स और करुण रस भी मिलते हैं।

१. वही
२. वही
३. वही

§२३. वीर रस का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण जायसी के पद्मावत में है। अलाउद्दीन ने पद्मावती माँगी है। रत्नसेन दूत से कहता है :

का मोहि सिंह दिखावसि आई, कहौं तो सारदूल धरि खाई
भलेहिं साह पुहुमीपति भारी माँग न कोउ पुरुष कै नारी[1]

* * *

जो पै घरनि जाय घर केरी, का चितउर का राज चंदेरी[2]

* * *

हौं रनथंभउर नाह हमीरू, कलपि माथ जेइ दीन्ह सरीरू।
हौं सो रतनसेन सकबंधी, राहु बेधि जीता सैरंध्री।
हनुवंत सरिस भार जेइ कांधा, राघव सरिस समुद जो बांधा।
विक्रम सरिस कीन्ह जेइ साका, सिंघलदीप लीन्ह जो ताका।
जौं अस लिखा भएउं नहिं ओछा, जियत सिंघ कै गह को मोछा।[3]

* * *

तुरुक जाइ कह मरै न धाई, होइहिं इसकंदर कै नाईं।
सुनि अमृत कदली बन धावा, हाथ न चढ़ा रहा पछतावा।
औ तेहि दीप पतंग होइ परा, अगिनि पहार पाँव देइ जरा।
धरती लोह सरग भा तांबा, जीउ दीन्ह पहुँचत कर लांबा।
यह चितउर गढ़ सोइ पहारू, सूर उठै तब होइ अंगारू।
जौं पै इसकंदर सरि कीन्हीं, समुद लेहु धँसि जसि वै लीन्हीं।

* * *

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ २५०
२. वही
३. वही पृष्ठ २५१

महूँ समुझि अस अगमन, सजि राखा गढ़ साजु।
काल्हि होइ जेहि आवन सो चलि आवै आजु।[1]

उत्साह स्थायी भाव की इन पंक्तियों से बड़ी सुन्दर उत्पत्ति होती है। युद्ध के वर्णन में वीर रस का सुन्दर उदाहरण निम्न उद्धरण प्रस्तुत करता है :

भइ बजमेल सेल घनघोरा, औ गजपेल अकेल सो गोरा।
सहस कुंवर सहसौ सत बाँधा, भार पहार जूझ कर काँधा।
लगे मरै गोरा के आगे, बाग न मोर घाव मुख लागे।[2]

गोरा के निम्नलिखित शब्द भी वीर रस से भरे हैं :

हौं कहिए धौलागिरि गोरा, टरौं न टारे अंग न मोरा।
सोहिल जैस गगन उपराहीं, मेघ घटा मोहिं देखि बिलाहीं।
सहसौ नैन इन्द्र सम देखौं, सहसौ सीस सेस सम लेखौं।
चारिउ भुजा चतुरभुज आजू, कंस न रहा और को साजू।
हौं होइ भीम आजु रन गाजा, पाके घालि डुंगवै राजा।
होइ हनुवंत जमकातर ढाहौं, आजु स्वामि सांकरे निबाहौं।[3]

अन्य काव्यों में भी वीर रस है परन्तु वह उतना सजीव नहीं।

§२४. शांत रस के उदाहरण प्रत्येक काव्य के प्रारम्भ में हैं:

सुमिरौं आदि एक करतारू। जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू।
कीन्हेसि प्रथम जोति परगासू। कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू।[4]

* * *

१. वही
२. वही पृष्ठ ३२९
३. वही पृष्ठ ३२८
४. वही पृ० १

को न रहा जग रही कहानी[१]

❀ ❀ ❀

बिरिध जो सीस डुलावे सीस धुने एहि रीस
बूढ़ी आऊ होहु तुम्ह केइ यह दीन्ह असीस[२]

कासिमशाह अपने हंस जवाहिर का अन्त करते हुए कहते हैं :

कासिम यौवन हाथ है चहै सो काज संवार
पुनि हस्ती बलि जायगो कौन उठावै भार[३]

नूर मुहम्मद अपनी इंद्रावती की समाप्ति करते हैं :

देखु स्याम मुख आएउं मैं तेरी दरगाह
कर मेरो मुख उज्ज्वल करता जगत पनाह[४]

§२५. वात्सल्य रस के सुन्दर चित्रों का सर्वथा अभाव सा है। जायसी के पद्मावत में एक चित्र अवश्य सुन्दर है। जब रत्नसेन सिंहल से नहीं लौटा तो नागमती संदेश भेज रही है:

रतनसेन की माइ सुरसती। गोपीचन्द जस मैनावती।
आंधरि बूढ़ि होइ दुख रोवा। जीवन रतन कहां दहुं खोवा।
जीवन अहा लीन्ह सो काढ़ी। भइ बिन टेक करे को ठाढ़ी।
बिनु जीवन भइ आस पराई। कहां सो पूत खंभ होइ आई।
नैन दीठ नहिं दिया बराहीं। घर अंधियार पूत जो नाहीं।

१. वही पृष्ठ ३४१
२. वही पृष्ठ ३४२
३. हंस जवाहिर (१८९८) पृ० ३२८
४. इन्द्रावती पृ० १०१

को रे चलै सरवन के ठाऊं। टेक देह औ टेकै पाऊं।
तुम सरवन होइ कांवरि सजा। डार लाइ अब काहे तजा।
सरवन, सरवन, ररि मुई माता कांवरि लागि।
तुम्ह बिनु पानि न पावै दसरथ लावै आगि।[1]

वीभत्स रस के भी एकाध ही चित्र मिलते हैं :

लोटहिं सीस कबंध निनारे। माठ मजीठ जनहुं रन टारे
खेलि फाग सेंदुर छिरकावा। चांचरि खेल आगि जनु लावा[2]

करुण रस श्रृंगार एवं वात्सल्य की क्रोड़ में ही आया है। इसकी कोई स्वतंत्र महत्वपूर्ण सत्ता नहीं है।

§२६. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में रस के परिपाक का विश्लेषण उपर्युक्त है। उपर्युक्त विश्लेषण से अत्यन्त स्पष्ट हैं कि ये कवि रस सिद्धांत से सर्वथा अपरिचित थे। इस कारण कहीं कहीं परिपाक शिथिल है। कहीं कहीं पर रसाभास भी आ जाता है। चित्रावली में एक चित्र है कि नायिका पान खाती है तो उसके लाल होंठ ऐसे प्रतीत होते हैं मानों ओठों में खून लगा दिया गया हो। श्रृंगार रस में ऐसी कल्पनाएं विरोध उपस्थित करती हैं। संतोष की बात यह है कि ऐसी उक्तियाँ संख्या में अत्यंत ही सीमित हैं।

परन्तु वियोग श्रृंगार का जैसा अपूर्व चित्रण इन काव्यों में मिलता है वह समस्त विश्व साहित्य के लिए गौरव की बात है। नागमती के आसूंओं ने सरस्वती के कंठ में धवल मोतियों की तरल आभामय माला पहिनाई है। जिससे सरस्वती अधिक सुंदर प्रतीत होने लगी है।

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृ० १८२
२. वही पृष्ठ ३१०

वस्तु वर्णन

§२७ हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में निम्न वर्णन प्रमुखतया मिलते हैं :

१. नखशिख वर्णन
२. प्रकृति वर्णन
३. नगर वर्णन
४. सामाजिक कृत्य वर्णन
५. युद्ध वर्णन
६. महल वर्णन
७, स्त्री-भेद वर्णन

§२८. नखशिख वर्णन जो हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में शिखनख वर्णन के रूप में दिया गया है उपमानों का आश्रय लेता सर्वत्र दिखलाई पड़ता है। इन उपमानों की एक सूची नीचे दी जाती है :

केश

नाग :

बिसहर लुरैं लेंहि अरघानी[1]
* * *
सकबकाहिं जनु नाग बिसारे[2]
* * *
गरल भरी विषधर हत्यारी[3]

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ४७
२. नल दमन पृष्ठ ३७
३. मधुमालती

भ्रमर :

कहूँ बदन बारिज पर भंवर जुरे बहु आइ[1]

* * *

भौंर केस वह मालति रानी[2]

* * *

अलिमाला अलकावलि रची[3]

कालिंदी :

अब बरनौ तिन्ह मांग निकाई, जमुना तीर कनक जनु आई।

दीपक रूपी मुख पर धूम्र शिखा :

दीपक बदन नार जनु धरा, समत अंधेरा पाछे परा[4]

कस्तूरी :

प्रथम सीस कस्तूरी केसा[6]

राहु :

चंदबदनि छबि चंद निवासा, चिहुर राहु जनु चहै गरासा[7]

१. नल दमन पृष्ठ ३७
२. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ४७
३. पुहुपावती पृष्ठ ६०
४. नल दमन पृष्ठ ३७
५. वही
६. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ४७—यहां पर कस्तूरी रंग के लिए नहीं वरन सुगंध के लिए है। यदि रंग के लिए होती तो केशों की उपमा भ्रमर एवं नाग से नहीं दी जा सकती थी।
७. पुहुपावती पृष्ठ ६०

अंधेरी रात :

धौं पूनौ देखत अंधियारी, ढके घटै ते करौ पसारी[१]

अमावस्या की घटा :

रैन अमावस पावस घटा[२]

मांग

बिजली :

पुतरी धार कौंध जनु कौंधा, तस तिह मांग लाग रहि चौंधा[३]

❀ ❀ ❀

जनु घन महं दामिनी परगसी[४]

यमुना में कनक की रेखा :

जमुना तीर कनक जनु आई[५]

राहु के दो भागों के बीच की रेखा :

कीन्हेस खरग राहु दो फारा[६]

रात के हृदय की दरक :

तब निस हियो दरक अस गयऊ[७]

खांग :

१. नल दमन पृष्ठ ३७
२. पुहुपावती पृष्ठ ६०
३. नल दमन पृष्ठ ३७
४. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ४७
५. नल दमन पृष्ठ ३७
६. वही
७. वही

खांड़े धार रुहिर जनु भरा[१]

❀ ❀ ❀

बरनौ मांग खरग अस नागी[२]

रात के हृदय में उजेरे का पंथ :

उजियर पंथु रैन महं किया[३]

रात का दीपक :

स्याम रैन महं दीपक बारी[४]

बीर बहूटी :

कै जनु फन पर बीर बहूटी[५]

नेत्र :

खंजन :

कै दोउ नैना खंजन जोरी[६]

❀ ❀ ❀

खंजन लरहिं.................... [७]

मृग :

............मिरिग जनु भूले[८]

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ४७
२. पुहुपावती पृष्ठ ६०
३. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृ० ४७
४. पुहुपावती पृष्ठ ६०
५. वही पृष्ठ ६१
६. वही पृष्ठ ६३
७. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ४९
८. वही

*    *    *

मद पीए मतवार कुरंगा[१]

भ्रमर :

पुतली जनु अलि स्याम....[२]

*    *    *

राते कवंल करहिं अलि भवां

कमल :

कै दोउ नैन कमल दल दीठा

दर्पण :

कै दोउ नैन सो दरपन देखा[४]

दीपक :

कै दोउ नैन सो दीपक बारा

तारा :

जगमगाहिं जस चमकै तारा[७]

सूर्य चन्द्र :

कै दहुँ सूरज चंद दोउ साजि धरो करतार
मूंदे जग अंधियार होइ खोलत जग उजियार[८]

१. पुहुपावती पृष्ठ ६३
२. वही
३. जायसी ग्रंथावली ( १९३५ ) पृष्ठ ४९
४. पुहुपावती पृष्ठ ६३
५. वही
६. वही
७. वही
८. वही

मीन :

बर कामिनि चष मीन सम निमिष हेर तन जाहि
बहुरि जनम भर मीन जिमि पलक न लागै ताहि[1]

सरोवर में तरंगों से भरे माणिक :

सुभर सरोवर नैन वै मानिक भरे तरंग
आवत तीर फिरावहीं काल भौंर तेहि संग[2]

रसना :

कमल पंखुरी :

तेहि भीतर रसना रस भरी. कौंल पांखुरी अमिरित भरी[3]

वेद अर्थ की कीली :

रसना वेद अरथ की कीली[4]

कपोल :

कमल :

कंवल कपोल गोल अति बने[5]

दर्पण :

दरसन ओप मांझ जनु धरे[6]

काम की चकई :

कै जस काम कै चकई वटा[7]

१. चित्रावली (१९१२) पृष्ठ ७१
२. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ४९
३. चित्रावली (१९१२) पृष्ठ ७२
४. नल दमन पृष्ठ ४०
५. वही
६. वही
७. पुहुपावती पृष्ठ ६६

नारंगी :

नारंग नारंगिनि कै जोगू [1]

❀ ❀ ❀

पुनि बरनौं का सुरंग कपोला, एक नारंग दुइ किए अमोला [2]

मिश्री के बताशे :

कै जस मिस्री केर बतासा

पारस के शालिग्राम :

जस पारस कर सालिगरामा [4]

श्रवण :

तारा :

जनु अकास लगि चमके तारा [5]

सिंधु सुता :

सिंधु सुता सम सवन अमोला [6]

दीपक :

ससि जनु दुई हाथ लै दिया, सिव कुच पूजन कहं मन किया [7]

चिबुक :

आम :

चिबुक बरन जनु अंब सुहाई [8]

१. वही पृ० ६५
२. जायसी ग्रंथावली ( १९३५ ) पृष्ठ ५१
३. पुहुपावती पृष्ठ ६६
४. वही
५. वही
६. चित्रावली ( १९१२ ) पृष्ठ ७४
७. नल दमन पृष्ठ ४१
८. पुहुपावती पृष्ठ ६७

ललाट:

दूज का चांद :

कहौं लिलार दुइज कै जोती [1]

भृकुटी :

नागिन का बच्चा :

उड़ नागिन सावक जिमि जाहीं, परबट बीज बसै तिन माहीं [2]

धनुष :

भौंहे स्याम धनुक जनु ताना, जासहुं हेर मार विष बाना [3]

*　　　　*　　　　*

भृकुटी धनुक स्याम विधि गढ़ा, संतत पनच रहै तेही चढ़ा [4]

❀　　　　❀　　　　❀

कुटिल भौंह जानौं धनु ताना, इंद्र धनुष तेहि देखि लजाना [5]

अलि :

कौंल नैन पर जनु अलि लोभा [6]

बरुनी :

बाण :

बरुनी का बरनौं इमि बनी, साधे बान जानु दुइ अनी [7]

१. जायसी ग्रंथावली ( १९३५ ) पृष्ठ ४८
२. नलदमन पृष्ठ ३८
३. जायसी ग्रंथावली ( १९३५ ) पृष्ठ ४८
४. पुहुपावती पृष्ठ ६१
५. चित्रावली ( १९१२ ) पृष्ठ ७१
६. पुहुपावती पृष्ठ ६२
७. जायसी ग्रंथावली ( १९३५ ) पृष्ठ ४६

❀ ❀ ❀

बरुनी बान तान कै राखा[1]

❀ ❀ ❀

साध बान ठाढ़े भए जोधा[2]

खोंचा :

काम बधिक जनु खंजन घेरे, खोंचा ठाढ़ कीन्ह चहुं फेरे[3]

नासिका :

खंग

नासिक खरग देउं कह जोगू, खरग खीन वह बदन संजोगू[4]

खंग की धार :

नासिक कहै खरग की धारा, मन तिन्ह परत होइ दो फारा[5]

शुक :

सुवा ठौर का बरनौं तासू, वह न बास यह पुहुप सबासू[6]

❀ ❀ ❀

खरग धार औ सुअटा ठोरा, दुनौं बहुत सो होहिं कठोरा[7]

❀ ❀ ❀

नासिक देख लजानेउ सूआ[8]

१. पुहुपावती पृष्ठ ६२

२. नलदमन पृष्ठ ३८

३. वही

४. जायसी ग्रंथावली ( १९३५ ) पृष्ठ ४६

५. नल दमन पृष्ठ ३६

६. वही

७. पुहुपावती पृष्ठ ६६

८. जायसी ग्रंथावली ( १९३५ ) पृष्ठ ४६

र अक्षर :

जस र अच्छर तस वह नासा[१]

तिल का फूल :

तिलक फूल कबितन्ह चित धरा, उहौ लजाइ पुहुमि खसि परा[२]

चंपा की कली :

ससि पर चंप कली जनु राखी[३]

अधर :

बिम्ब :

बिम्ब लजाइ जाइ बिनु पहिरे[४]

* * *

बिम्ब सुरंग लाजि बन फरे[५]

* * *

बिम्ब अरुन सो सर न तुलाना, अति लजान बन जाइ दुराना।[६]

विद्रुम :

विद्रुम अति कठोर औ फीके, सुरंग मृदुल दुखदायक जी के[७]

* * *

विद्रुम सकुच समुद महं दुरे[८]

१. पुहुपावती पृष्ठ ९४
२. चित्रावली ( १९१२ ) पृष्ठ ७२
३. नल दमन पृ० ३९
४. वही
५. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ५०
६. चित्रावली (१९१२) पृ० ७२
७. वही
८. नल दमन पृ० ३९

पान :

पातर निपट पान हित कीन्है[1]

बन्धूक :

बरनौ कहा अधर रतनारा, फूल बन्धुक जेहि पर तारा[2]

* * *

फूल दुपहरी जानौं राता, फूल झरहिं ज्यों ज्यों कहि बाता[3]

गुललाला :

कै जानहु फूला गुल लाला, ताहु तैं अधिक सुरंग रसाला[4]

कमल :

अधर मधुर रंग रस भरे, हँसत कमल विकसात[5]

कनक पत्र पर ईंगुर की रेखा :

कनक पतर पर ईंगुर रेखा[6]

पान के रस भरे हुए फूल :

फूल होंहि पानन रस भीने[7]

दांत :

हीरा :

हीरा छोल छोल जनु गढ़े[8]

* * *

१. वही २. पुहुपवती पृ० ६४

३. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृ० ५०

४. पुहुपावती पृष्ठ ६४

५. वही

६. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ३९

७. नल दमन पृष्ठ ३९

८. वही पृ० ४०

वह सुजाति हीरा उपराहीं, हीरा जोति सो तेहि परछाहीं[1]

विद्युत् :

जस भादों निसि दामिनि दीसी, चमकि उठै तस बनी बतीसी[2]

खंग की धार :

परगट जग हुई खरग की धारा[3]

कुन्द :

वेली कुन्द चमेली फूला[4]

चमेली :

वेली कुन्द चमेली फूला[5]

दाड़िम :

दारिउं सरि जो न कै सका फाटेउ हिया दरकि[6]

ग्रीवा :

सुराही :

जनौं पेम मद भरी सुराही, गह नवाह रस ले सो चाही[7]

मयूर :

गए मयूर तमचुर जो हारे, उहै पुकारहिं सांझ सकारे[8]

❀ ❀ ❀

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृ० ५०

२. वही

३. पुहुपावती पृ० ६५

४. वही पृष्ठ ९६

५. वही

६. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृ० ५०

७. नलदमन पृ० ४२

८. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ५२

नाचत मोर गींव सर जोवा, तबहिं सीस पाप धरि रोवा[१]

❀ ❀ ❀

देख मोर छवि वन वन रोवै[२]

तमचुर :

गए मयूर तमचुर जो हारे, उहै पुकारहिं सांझ सकारे[३]

शंख :

बरनौं गीउ कंबु की रीसी[४]

❀ ❀ ❀

संख न सम भा सांझ संकारा, तातें जहं तहं करै पुकारा[५]

❀ ❀ ❀

देखि जीव सो संख छपाने, बूड़े दधि अस मनहिं लजाने[६]

शिव :

गिव जस सिव पसली जलहरी, हीरा हार धार सुरसरी[७]

कबूतर :

जनु हिय काढ़ परेवा ठाढ़ा, तेहि तें अधिक भाव गिउ बाढ़ा[८]

❀ ❀ ❀

१. चित्रावली (१९१२) पृष्ठ ७४
२. पुहुपावती पृष्ठ ६७
३. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ५२
४. वही
५. चित्रावली (१९१२) पृष्ठ ७४
६. पुहुपावती पृष्ठ ६७
७. वही
८. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ५२

केलि समै कौलर की रीस, तन षिन चलो लाइ भुइं सीसा[1]

भुजा :

कंचन दंड :

कनक दंड दुइ भुजा कलाई, जानौं फेरि कुदेरै भाई[2]

कदली :

कदलि गाभ कै जानौ जोरी[3]

❀ ❀ ❀

चीकन इमि जस कदली गोभा[4]

पारस दंड :

पारस दंड ताहि पर वारौं[5]

कमल नाल :

भुज उपमा पौनार नहिं खीन भएउ एहि चित
ठांवहिं ठांव बेध भा ऊबि सांस लेइ नित[6]

अंगुली :

मूंगफली :

विद्रुम बेलि सो अंगुरी दीठी वह कठोर यह मूंगफली सी[7]

विद्रुम की बेल :

विद्रुम बेलि सो अंगुरी दीठी[8]

१. चित्रावली (१९१२) पृष्ठ ७४
२. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ५२
३. वही
४. नलदमन पृष्ठ ५२
५. पुहुपावती पृष्ठ ९९
६. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ५३
७. चित्रावली (१९१२) पृष्ठ ७५
८. वही

छीमी :

अंगुरी पातर छीमी ऐसनि[१]

उरोज :

बेल :

कुंदन बेल साजु जनु कूंदे[२]

कमल संपुट :

हिय सरवर कुच अंबुज करैं, संपुट बंधे करेरे खरैं[३]

कंचन कली :

उर सर परी कुच कंचन कली[४]

चंद्रमा :

निकसत किस बदन ससि दई, निपट कठोर सकुच होइ गई[५]

मदन खिलौना :

धरै मैन दोउ लूट खिलौना, ऊपर स्याम लगाइ दिठौना[६]

गेंद :

अलख प्रेम चौगान हियु चाव खेल मैदान
कुच मनोज साजैं तहां मनु रति गेंद निदान[७]

कंचन कलश :

कै दुइ कंचन कलस भरि राखा अंकित गोइ

१. पुहुपावती पृष्ठ ६८
२. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ५३
३. नल दमन पृष्ठ ४२
४. पुहुपावती पृष्ठ ६८
५. नल दमन पृष्ठ ४२
६. वही पृष्ठ ४३
७. वही

मान छाप सिर स्यामता छुवै न पावै कोइ[1]

कनक कटोरा :

कनक कचोर उठे जनु चारू[2]

सोने के लड्डू :

हिया थार कुच कंचन लारू[3]

जंभीर :

उतंग जंभीर होइ रखवारी, छुइ को सकै राजा की बारी[4]

नारंगी :

अस नारंग दहुं का कहं राखे[5]

लट्टू :

जानहुं दोउ लट्टू एक साथा[6]

डंका :

दुइ जनु डंका उलटि कै धरी[7]

शिव :

संकर पूजि उलटि जनु धरी[8]

१. पुहुपावती पृष्ठ ६९
२. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ५३
३. वही
४. वही
५. वही
६. वही पृष्ठ २४७
७. चित्रावली (१९१२) पृष्ठ ७५.
८. वही

पेट :

पान :

पेट पान पातर सुकुमारू [१]

समुद्र :

बरनौं वोदर गहिर समुंदू [२]

मैदा की लोई :

अस कोमल जस मैदा लोई, इंगुर रंग सान मनु पोई [३]

रोमावली :

सर्पिणी :

साम भुअंगिनि रोमावली, नाभी निकसि कंवल कहं चली [४]

* * *

रोमावलि नागिनि विषभरी [५]

भ्रमर पंक्ति :

मनहुं चढ़ी भौरन्ह की पांती, चंदन खांभ बास कै माती [६]

कालिंदी :

कै कालिंदी विरह सताई, चलि पयाग अरइल बिच आई [७]

१. नलदमन पृष्ठ ४३

२. पुहुपावती पृष्ठ १००

३. वही पृष्ठ ६६

४. जायसी ग्रंथावली ( १९३५ ) पृष्ठ ५३

५. मधुमालती

६. जायसी ग्रंथावली ( १९३५ ) पृष्ठ ५३

. वही

नाभी :

कमल कली :

कमल कली पै सुरज न देखा, मुख बांधे निकसी तिन्ह रेखा[१]

कुंड :

नाभि कुंड बरनै को पारा[२]

पीठ :

कंचन की शिला :

कंचन सिला पीठ तेहि नीकी[३]

इंद्रनील गिरि :

बरनत पाछ गई जो पीठी देखा इंद्रनील गिरि दीठी[४]

कटि :

सिंह की कटि :

लंक पुहुमि अस आहि न काहू, केहरि कहौं न ओहि सरि ताहू[५]

बर्र की कटि :

बसा लंक बरनै जग झीनी, तेहि ते अधिक लंक वह खीनी[६]

नाल खंड के तार :

मानहुं नाल खंड दुई भए, दुहूँ बिच लंक तार रहि गए[७]

१. नलदमन पृष्ठ ४४

२. पुहुपावती पृष्ठ ६६

३. वही पृष्ठ ७०

४. वही पृष्ठ १००

५. जायसी ग्रंथावली ( १९३५ ) पृष्ठ ५४

६. वही

७. वही

४ का अक्षर :

बरनौं लंक अंक जस चारी[1]

नितम्ब :

कामदेव के नगाड़े :

कामदेउ कै जानि नगारा[2]

कंचन के कुम्हड़े :

कै दुइ कोहड़ा कंचन केरा[3]

पर्वत :

बिबि नितंब छवि राजै कैसन, उदयाचल अस्ताचल जैसन[4]

जांघ :

कदली खंभ :

बरनौ जांघ सुभग जस जारी, कदलि खंभ ते अधिक संवारी[5]

कंचन खंभ :

कंचन खंभा होइ करेरा[6]

हाथी की सूंड :

केश खंभ कलम कर हेरी, जंघ निकट वे दोउ करेरी[7]

१. पुहुपावती पृष्ठ १०१
२. वही पृष्ठ ७१
३. वही
४. वही पृष्ठ १०१
५. हंस जवाहिर (१८९८) पृष्ठ ६८
६. पुहुपावती पृष्ठ ७१
७. चित्रावली (१९१२) पृष्ठ ७७

चाल :

हंस की चाल : पदमिनि गवन हंस गए दूरी।[1]
गज की चाल : कुंजरि लाज मेलि सिर धूरी।[2]

§२९. संक्षेप में नख-शिख वर्णन के उपमानों की यही रूप-रेखा है। नायिका के नख शिख के अतिरिक्त पुहुपावती में नायक के नख-शिख का भी वर्णन है। इसमें उपमानों के दृष्टिकोण से कोई मौलिक विशेषता नहीं हैं। पुरुष वर्णन में कुचों का वर्णन नहीं मिलता, मूछों का मिलता है :

अधर भवों जनु कमल को फूला, देखि कै अधर मधुगति भूला[3]

❀ ❀ ❀

तेहि पर स्याम मोछ कर रोमा। सोहै जस कलंक मघ सोमा।
कै जस गुंज पुंज कर भेसू, अरुन स्याम फूले जनु टेसू।

दीपक पर की स्यामता इहौ न पटतर लाउ।
अधर मोछ जो नीरखै अधर मोछ सो पाउ।[4]

इसके अतिरिक्त अन्य वर्णन समान हैं। इस नख-शिख वर्णन में एक प्रवृत्ति समान रूप से दिखलाई पड़ती है। ये कवि सौन्दर्य की चरम सीमा को दिखलाना चाहते हैं। उसके लिए सुन्दरतम उपमान लाना चाहते हैं। परम्परागत उपमानों का सुंदर प्रयोग मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी पद्मावती में किया है तथा कुछ मौलिक उपमान पुहुपावती और नल दमन में हमें मिलते हैं, यह

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ १५१
२. वही
३. पुहुपावती पृ० ९७
४. वही पृष्ठ ९५

ऊपर की तालिका से स्पष्ट ही हो जाता है। इन्द्रावती तथा हंस जवाहिर का इस क्षेत्र में कोई भी योग नहीं है।

इन समस्त मौलिक एवं परम्परागत उपमानों के प्रयोगों में कोई भी विशेष सजीवता नहीं है। कहीं कहीं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो घिसे पिटे उपमानों को जबर्दस्ती संवारने की कोशिश की जा रही है। 'छवि गृह दीप सिखा जनु बरई' जैसी उक्ति का सर्वथा अभाव है। ये सारे उपमान पार्थिव पदार्थों के हैं, भाववाची नहीं। कवि तस्वीर को इतना साफ कर देना चाहते हैं कि इस वर्णन से पाठक को अरुचि सी हो उठती है।

§३० प्रकृति वर्णन दो वर्गों में बँटता है :

१. आलंबन के रूप में किया गया प्रकृति वर्णन

२. उद्दीपन के रूप में किया गया प्रकृति वर्णन

§३१ आलंबन के रूप में किया गया प्रकृति वर्णन दो प्रकार का है :

१. जहाँ प्रकृति मानवी भावनाओं से संयुक्त नहीं है

२. जहाँ प्रकृति मानवी भावनाओं से संयुक्त है

§३२. पहले प्रकार का वर्णन दो उपवर्गों में बँटता है :

१. जहाँ पर प्रकृति वर्णन का लक्ष्य प्रकृति वर्णन ही है

२. जहाँ पर प्रकृति वर्णन का लक्ष्य कुछ दूसरा है

§३३. पहले प्रकार का प्रकृति वर्णन नगर वर्णन एवं सात समुद्र वर्णन में अधिकतर आता है। सिंहल का वर्णन करते हुए जायसी कहते हैं :

घन अमराउ लागि चहुं पासा, उठा भूमि हुत लागि अकासा।
तरिवर सबै मलय गिरि लाई, भइ जग छांह रैनि होइ आई।

मलय समीर सोहावनि छाहां, जेठ जाड़ लागै तेहि माहां।
ओही छांह रैनि होइ आवै। हरियार सबै अकास दिखावै।[1]

इसमें कवि अत्युक्ति का सहारा लेता हुआ दिखलाई पड़ता है और उक्ति चमत्कार के सहारे वर्णन को सजीव बना देता है। सूरदास लखनवी कुन्दनपुर का वर्णन करते हुए वहाँ की फुलवारी का वर्णन करते हैं परन्तु उसे आध्यात्मिक संकेत के बोझ से दबा सा देते हैं :

नगर निकट फूली फुलवारी, धन माली जिन सींच संवारी।
जिन सब पुहुप प्रेम अनुरागी, वैरागी उपदेस विरागी।
करना कहँ अंत जो मरना, बिनहरि भजन धंध सब करना।[2]

इस प्रकार के वर्णनों का विवेचन आगे किया जाएगा।

समुद्र का वर्णन करते हुए जायसी कहते हैं :

भा किलकिल अस उठै हिलोरा, जनु अकास टूटै चहुं ओरा।
उठै लहरि पर्वत की नाईं, फिरि आवै जोजन सौ ताईं।
धरती लेइ सरग लहि बाढ़ा, सकल समुद जानहुं भा ठाढ़ा।[3]

इस प्रकार के वर्णन में कवि कल्पना के नेत्रों से समुद्र का दृश्य स्वयं देखता है और फिर अति की सीमा की ओर खींचकर उपमानों के सहारे उसका वर्णन करता है।

§३४. दूसरे उपवर्ग के प्रकृति वर्णन के लक्ष्य दो हैं :

१. उपमानों के रूप में प्रयुक्त होकर वस्तु वर्णन को सजीव बनाना

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ १३
२. नल दमन पृष्ठ १९
३. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृ० ७४

२. उपदेश देना

§३५. नखशिख वर्णन में प्रयुक्त उपमानों का विश्लेषण हम ऊपर कर आए हैं। अन्य स्थलों पर भी प्रकृति का उपयोग ये कवि उपमानों के रूप में वर्णन को सजीव करने के लिए करते हैं। रत्नसेन के चित्तौड़ लौटने पर नागमती उसे प्रसन्न चित्त देखकर उलाहना देती है :

> काह हँसौ तुम मोसौं किएउ और सौं नेह
> तुम्ह मुख चमकै बीजुरी मोहिं मुख बरिसै मेह [1]

इस छंद की सारी मार्मिकता उपमानों में है। कवि ने रत्नसेन की मुस्कराहट का उपमान बिजली और नागमती के आंसुओं का मेह को रखे हैं। ये दोनों उपमान परस्पर विरोधी होते हुए भी एक साथ रहते हैं। इनका विरोधाभासपन ही यहाँ पर वर्णन को चमत्कृत कर देता है।

युद्ध वर्णन में जायसी कहते हैं :

> ओनई घटा चहूँ दिसि आई, छूटहि बान मेघ झरि लाई [2]

इसमें नवागत सेना को नई घटा कहकर बाणों को मेघ बूंद कहना वर्णन को सजीव बनाना है।

इसी प्रकार अन्य उद्धरण भी दिए जा सकते हैं।

§३६. प्रकृति के द्वारा उपदेश दो प्रकार से दिए गए हैं :

१. जहाँ पर प्रकृति स्वयं उपदेश दे रही है
२. जहाँ पर प्रकृति को दृष्टान्त के रूप में रखा गया है.

१. वही पृ० २१७
२. वही पृ० १२८

§३७. पहले प्रकार का सुन्दर उदाहरण सूरदास लखनवी कृत नल दमन में मिलता है :

जिन सब पुहुप पेम अनुरागी। बैरागी उपदेस बिरागी।
करना कहै अन्त जो मरना। बिन हरि भजन धंध सब करना।
कहै सिंगार हार तन छारा। का सिंगार भर आवसि हारा।
बेला कहै स ुझि हौ हेला। कहौ न अनबेले यह बेला।
लाला कहै लाल तन सूना। पेम दाह उरदाग विहूना।
सोसन कहै अजहुं घर लीये। समुझि सोसनी सोसन लहई।
कहै निबारी सो पिउ प्यारी। जनि सेवा लग नींद बिसारी।
सोई बात सुदरसन कहै। सेवा सजग दरसन लहै।
चम्प चमेली केवड़ा कहै दूर नहि पीउ।
ढूढ़ं लेउ हम बास ज्यों घट घट सोई जीउ।[1]

§३८. दूसरे प्रकार से प्रकृति द्वारा उपदेश देने के उदाहरण लगभग समस्त काव्यों में मिलते हैं। जायसी एक स्थल पर कहते हैं :

मुहमद बाजी पेम की ज्यों भावै त्यों खेल
तिल फूलहि के संग ज्यों होइ फुलाइल तेल[2]

यहाँ पर दृष्टान्त देकर कवि ने हमें एक उपदेश दिया है जो कि दृष्टान्त के कारण ही सजीव एवं प्रभावशील हो गया है।

§३९. मानवीय भावनाओं से संयुक्त प्रकृति दो प्रकार की चित्रित की गई है:

१. पंछी आदि जो पात्रों के रूप से कथानक में भाग लेते हैं
२. शेष प्रकृति

१. नलदमन पृ० १६
२. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृ० २९

§४०. हीरामन, मैना तथा अन्य संदेशवाहक पंछी पहले वर्ग के उदाहरण हैं। ये पंछी कथानक में महत्वपूर्ण योग दे रहे हैं। मध्ययुग की कहानी कला की यह अपनी विशेषता है कि पंछी आदि अमानवीय जीव भी मानवीय संवेदना एवं सहानुभूति से भरे हुए थे। राम कथा में तो बन्दर गिद्ध आदि सभी बराबर भाग ले रहे हैं।

§४१. शेष प्रकृति दो वर्गों में विभक्त की जा सकती है:

१. जहाँ पर प्रकृति मानवीय भावनाओं से संयुक्त होकर मनुष्य के सुख दुखों में सहानुभूति दिखला रही है

२. जहां पर प्रकृति वर्णन स्वतंत्र है

§४२. पहले वर्ग का उदाहरण जायसी की पद्मावती में सुन्दर मिलता है। रत्नसेन के लौटने पर:

पलुहीं नागमती कै बारी। सोने फूल फूलि फुलवारी।
जावत पंखि रहे सब दहे। सबै पंखि बोलत गहगहे।
सारिउं सुवा महरि कोकिला। रहसत आइ पपीहा मिला।
हारिल सबद महोख सोहावा। काग कुराहर करि सुख पावा।
भोग विलास कीन्ह कै फेरा। बिहंसहिं रहसहिं करहिं बसेरा।
नाचहिं पंडुक मोर परेवा। विफल न जाइ काहुकै सेवा।
होइ उजियार सूर जस तपै। खूसट मुख न देखावै छपै।[१]

यहाँ पर जायसी ने प्रकृति के प्रति नागमती का या पाठक का नया दृष्टिकोण नहीं रखा है वरन यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि नागमती की फुलवारी स्वयं ही रत्नसेन के आगमन से हर्षित हो रही है। मंझन की मधुमालती में भी प्रेमा के दुख का प्रभाव उसकी फुलवारी पर पड़ता है:

१. वही पृ० २१८

आम भयौ दुख बउरा महुआ भयो बिन पात।
ऊख भई दुख टक टक सुन पेमा उतपात।
दुख करील पात परिहारी।
मेंहदी रकत घोंट रति भीनी।
जूही भई दुःख तन छीनी।
टेसू आगि लागि सिर रहा।[1]

इस प्रकार के वर्णनों के द्वारा ये कवि वातावरण को सुरंजित करते हैं।

§४३. स्वतंत्र प्रकृति वर्णन का भी सुन्दर उदाहरण जायसी से ही दिया जा सकता है :

सरवर रूप विमोहा हिए हिलोरें लेइ
पांव छुवै मकु पावौं एहि मिस लहरैं देइ[2]

यहाँ पर मानसरोवर एक मनुष्य के रूप में चित्रित किया गया है जो कि पद्मावती के सौन्दर्य से अभिभूत हो गया है और उसके पैर छूने के लिये व्याकुल सा हो रहा है।

चकई बिछुरि पुकारै कहां मिलौं हो नाह
एक चांद निसि सरग महं दिन दूसर जल मांह[3]

यहाँ पर पद्मावती के सुन्दर मुख को चांद सा सुन्दर देखकर चकवी को भ्रम हो उठा है और चकवे को पुकार उठी है।

§४४. प्रकृति को उद्दीपन के रूप में ये कवि रखते हैं। इसका विश्लेषण रस के परिच्छेद में किया जा चुका है।

१. मधुमालती
२. वही पृष्ठ २८
३. वही पृ० २९

§४५. संक्षेप में हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में वर्णित प्रकृति की यही रूपरेखा है। षड्ऋतु वर्णन एवं बारहमासा हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य की अपनी वस्तुएं हैं। ऐसा बंधा हुआ सुश्रृंखलित वर्णन हिन्दी में अन्यत्र नहीं मिलता। तुलसी ने अपने मानस में षड्ऋतु वर्णन दिया है। परन्तु उपदेशों के भार से वह इतना बोझिल है कि अपना लगभग सारा आकर्षण खो बैठा है। हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य के सारे वर्णन अत्यन्त सरल हैं। हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य का सर्वश्रेष्ठ काव्यात्मक अंश नागमती की विरह गाथा स्वयं प्रकृति के सहारे वर्णित की गई है। सूरदास के प्रकृति वर्णन में भी वह मार्मिकता नहीं आ सकी जो इस बारहमासे में है। कबीर में तो प्रकृति का अभाव सा है।

§४६. नगर वर्णन में इन कवियों ने प्रायः निम्न लिखित वस्तुओं का वर्णन किया है:

१. प्रकृति-उपवन २. सरोवर ३ बाजार ४. निवासी

प्रकृति वर्णन की ओर पीछे संकेत किया जा चुका है। सरोवर वर्णन के साथ ही साथ वहां की पनिहारियों का वर्णन भी किया गया है।[1] मध्ययुग में आज की भांति पानी की कलें न थीं।

बाजारों के वर्णन में दूकानों एवं वेश्याओं का वर्णन किया गया है[2]। संभवतः मध्ययुग में वेश्याएं नगरों की एक प्रमुख अंग मानी जाती होंगी।

निवासियों के वर्णन में नागरिकों का वर्णन तो कम तपस्वी, संन्यासियों का वर्णन अधिक रहता है।[3] संभव है मध्ययुग में इन का प्राधान्य रहता हो।

१. वही पृष्ठ १५ २. वही पृष्ठ १७ ३. वही पृष्ठ १४

हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य के अन्य ग्रंथों को पढ़कर तो नहीं परन्तु जायसी एवं सूरदास लखनवी कृत पद्मावती एवं नल दमन को पढ़कर मुसलमानों के बहिश्त की याद आ जाती है। उनके बहिश्त में भी सुन्दर प्रकृति, सरोवर, सुंदरियाँ आदि रहती हैं और उन्हीं का बाहुल्य सिंहल एवं कुंदनपुर के वर्णन में भी मिलता है।[1]

§४७. सामाजिक कृत्यों में वसंत पूजा, विवाह, भोज आदि का वर्णन मिलता है। वसंत पूजन में तो कोई विशेषता नहीं परन्तु विवाह वर्णन पात्रों के धर्मों के अनुसार दो प्रकार का मिलता है:

१. हिन्दू रीति से

२. मुसलमान रीति से

पद्मावती, चित्रावली, पुहुपावती आदि में विवाह हिन्दू रीति से दिखाया गया है परन्तु हंस जवाहिर में मुसलमानी रीति ही चित्रित की गई है।

जायसी कहते हैं :

> माड़वै सोनक गगन संवारा, बंदनवार लाग सब बारा
> साजा पाट छत्र के छाहां, रतन चौक पूरा तेहि माहां
> कंचन कलस नीर भरि धरा, इन्द्र पास आनी अपछरा
> गांठ दुलह दुलहिन कै जोरी, दुऔ जगत सो जाइ न छोरी
> वेद पढ़ें पंडित तेहि ठाऊं, कन्या तुला रासि लेइ नाऊं
>
> ❀ ❀ ❀
>
> चाँद के हाथ दीन्ह जयमाला, चाँद आनि सूरज गिउ घाला
>
> ❀ ❀ ❀
>
> पुनि धनि भरि अंजुलि जल लीन्हा, जोबन जनमकं त कहं दीन्हा
> कंत लीन्ह दीन्ह धनि हाथा, जोरी गांटि दुऔ एक साथा

१. देखिए कुरान सुरा ५५–५७

चाँद सूरज सत भांवरि लेहीं, नखत मोति निवछावरि देहीं
फिरहिं दुऔ सत फेर घुटै कै, सातहु फेर गांठि सो एकै
भइ भांवरि नेवछावरि राज चार सब कीन्ह,
दायज कहौं कहां लगि लिखि न जाय जत दीन्ह[1]

हंस जवाहिर में कासिमशाह कहते हैं :

बैठे लोग सचित सब कोई, लाग्यो ब्याह चार पुनि होई
काजी महा जो पंडित ज्ञानी, बैठा निकट दुलह के आनी
अमृत थार धरा भरि थारा, पान और फूलन के हारा
यक बसीठ दुइ साखी आए, शशि के बचन शरह महं लाए
कीन्ह जोहार जो तोरे आई, प्रेम की बात सो बैठ सुनाई
गुप्त भेद सब कहा जो काना, करि परनाम रात भा आना
जोरी गांठ प्रेम की मन मानिक तेहि पाहिं
छोड़ी जाय न अब कह्यो दोउ जगत के माहिं
तब नरगिश सब भेद बतावा, भया ब्याह औ बाज बधावा

❀ ❀ ❀

नेगिन आन जो दीन्ह अशीशा, जिए शाह सुत लाख बरीसा[2]

भोज वर्णन में कवि सामाजिक प्रथा का पर्याप्त ध्यान रखते हैं, जायसी की पद्मावती में :

जेंवन आवा, बीन न बाजा, बिनु बाजन जेंवै नहिं राजा[3]

इस कारण

सब कुंवरन्ह पुनि खैंचा हाथू[4]

१. जायसी ग्रंथावली ( १९३५ ) पृष्ठ १४२-१४३
२. हंस जवाहिर ( १८९८ ) पृष्ठ १०५
३. जायसी ग्रंथावली ( १९३५ ) पृष्ठ १४१
४. वही

कन्या पक्ष के लोग पूछते हैं :

कौन काज केहि कारन बिकल भएउ जजमान[1]

वे उत्तर देते हैं :

तुम्ह पंडित जानहु सब भेदू, पहले नाद भएउ तब बेदू

❀ ❀ ❀

सो तुम बरज नीक का कीन्हा[2]

कहीं कहीं तो भोज में कवियों ने सामग्री की लम्बी लम्बी सूचियाँ तैयार की हैं, पद्मावत का भोज खंड इनका प्रमाण है।

§४८. युद्ध वर्णन इन कवियों के प्राय: समस्त काव्यों में है, इसका अभाव केवल नल दमन काव्य में मिलता है। पद्मावत का युद्ध वर्णन सर्वोत्कृष्ट है।

आनई घटा चहूँ दिसि आई, छूटहिं बान मेघ झरि लाई
डोले नाहिं देव अस आदी, पहुँचे आइ तुरुक सब बादी
हाथन्ह गहे खांड़ हरद्वानी, चमकहिं सेल बीजु कै बानी
सोझ बान जस आवहिं गाजा, बासुकि डरै सीस जनु बाजा
नेजा उठे डरै मन इंदू, आइ न बाज जानि कै हिंदू

रुंड, मुंड अब टूटहिं स्योबखतर औ कूंड
तुरय होहिं बिनु कांधे हस्ति होहिं बिनु सूंड[3]

और

भइ बगमेल सेल घन घोरा, औ गज पेल अकेल सो गोरा
सहस कुंवर सहसौ सत बांधा, भार पहार जूझ कर कांधा

१. वही

२. वही

३. वही पृष्ठ ३२८

लगे मरै गोरा के आगे, बाग न मोर घाव मुख लागे
जैस पतंग आगि धंस लेई, एक मुवै दूसर जिउ देई[1]
द्रष्टव्य यह है कि वीभत्स वर्णन कम देखने को मिलता है।

दूसरी विशेष बात यह है कि युद्ध को एक रूपक के रूप में रति के लिए भी लिया गया है। बादल की पत्नी कहती है :—

जो तुम चहहु जूझि, पिउ बाजा, कीन्ह सिंगार जूझ में साजा
जोबन आइ सौंह होइ टोपा, बिखरा विरह काम-दल कोपा
बहेउ बीर रस सेंदुर मांगा, राता रुहिर खड़ग जस नांगा
भौंहैं धनुक नैन सर साधे, काजर पनच बरुनि विष बांधे
जनु कटाछ सों सान संवारे, नख सिख बान सेल अनियारे
अलक फांस गिउ मेल असूझा, अधर अधर सों चाहहिं जूझा
कुंभस्थल कुच दोउ मैंमंता, पेलौं सौंह संभारहु कंता[2]

§४९. महल वर्णन में कोई विशेषता नहीं मिलती। साधारण वर्णन वैभव का किया जाता है। वैसे वर्णन के दृष्टिकोण से स्वाभाविकता है। सिंहलगढ़ का वर्णन करते हुए जायसी कहते हैं :

.... .... ....का बरनो जनु लाग अकास
.... .... .... .... .... ....

पराखोह चहुँ दिसि अस बांका, कांपै जांघ, जाइ नाहिं झांका[3]
जाँघ का कांपना कितना स्वाभाविक है।

§५०. इन आख्यानों में स्त्री-भेद वर्णन खंड तथा कामशास्त्र खंड बराबर मिलते हैं। पद्मावती में एकमात्र भेद वर्णन खंड है।

१. वही पृष्ठ ३२८
२. वही पृष्ठ ३२२
३. वही पृष्ठ १८

पुहुपावती में पुरुप भेद वर्णन खंड भी है। चित्रावली इस दिशा में सबसे आगे बढ़ी हुई है। वहाँ पर कवि कामशास्त्र क्या कोकशास्त्र का सविस्तार वर्णन कर रहा है। जनता के असंस्कृत भाव-जगत को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए इन कवियों ने इन खंडों की रचना की है। चित्रावली का कामशास्त्र खंड का सा विशद् वर्णन कोकशास्त्र की साधारण पुस्तकों में नहीं मिलता। पता नहीं क्यों कवि ने चौरासी आसनों को छोड़ दिया है। इन वर्णनों की कोई अपनी विशेषता नहीं है। संभव है ये वर्णन किसी चली आती हुई काव्य परंपरा के परिचायक हों।

संक्षेप में हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य के वर्णनों की ये ही विशेषताएँ हैं।

---

अलंकार:

§५१. इन काव्यों में अलंकारों का कोई सजग प्रयोग नहीं मिलता। भावों की सुव्यंजना के लिए कवियों ने अलंकारों का प्रयोग किया है। कहीं कहीं पर भावों की तीव्रता में भी अर्थालंकार आ गए हैं। काव्यों में अन्त्यनुप्रास सर्वत्र सुंदर रूप में मिलता है। इस अलंकार के दृष्टिकोण से समस्त काव्यों में कमजोर पंक्तियां कम ही हैं।

सबसे अधिक प्रयोग उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, दृष्टांत, आदि साम्यमूलक अलंकारों का हुआ है।

पेट की कोमलता का वर्णन करते हुए दुःखहरनदास कहते हैं:

अस कोमल जस मैदा लोई, ईंगुर रंग सानी जनु पोई[1]

कटि की क्षीणता का वर्णन करते हुए जायसी कहते हैं:

मानहुँ नाल खंड दुइ भए, दुहुँ बिच लंक तार रहि गए[2]

नागमती की अविरल अश्रुधारा का वर्णन जायसी करते हैं:

मोर दुइ नैन चुवैं जस ओरी[3]

§५२. साथ ही अतिशयोक्ति का प्रयोग भी होता है। नागमती के आँसू विचित्र वस्तु हैं:

रकत के आंसु परहिं भुइं टूटी, रेंगि चली जनु बीर बहूटी[4]

१. पुहुपावती पृ० ६६

२. जायसी ग्रंथावली ( १९३५ ) पृ० ५४

३. वही पृ० १७४

४. वही

नायिका के साधारण वर्णन में भी अतिशयोक्ति के दर्शन हो रहे हैं। जायसी गले के रंग का वर्णन करते हुए कहते हैः

घूंट जो पीक लीक सब देखा[1]

यह उक्ति जायसी तक ही सीमित नहीं है। सूरदास लखनवी कहते हैं:

घोंटत पीक परगट सब देखा[2]

दुःखहरनदास भी कहते हैः

पान खात रस तेहि मुंह जाई, विमल गोव सब देत दिखाई

नितंबों का वर्णन करते हुए उसमान कहते हैः

जनु संगम दुइ परबत अहहीं[4]

❀ ❀ ❀

दुइ गिरि सम दोउ मगु जहं नाहीं[5]

पता नहीं चित्रावली कैसे चलती फिरती होगी।

§५३. इस प्रकार सुंदर तथा अतिशयोक्ति से भरी उपमाओं का प्रचुर प्रयोग मिलता है। वस्तूत्प्रेक्षा के उदाहरण देखिएः—

कंचन रेख कसौटी कसी, जनु घन महं दामिनि परगसी[6]

यहां पर वस्तूत्प्रेक्षा के द्वारा मांग का कितना सजीव चित्र खींच दिया गया है।

१. वही पृ० ५२
२. नल दमन पृ० ४२
३. पुहुपावती पृ० ६७
४. चित्रावली (१९१२) पृ० ७७
५. वही
६. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृ० ४७

कै दोउ नैन समुद उलथाहीं, महि नभ जग डूबे तेहि माहीं
कै दोउ नैन कमल दल डीठा, पुतली जनु अलि स्याम....
कै दोउ नैन सो दरपन देखा, आयन दरस सभन महं देखा
कै दोउ नैन सो दीपक बारा, जगमगाहिं चमकै जस तारा
कै दहु चंद सुरुज दोउ साजि धरो करतार
मूंदे जग अंधियार होइ खोलत सभ उजियार[1]

§५८ व्यतिरेक :

का सरिवर वही देउं मयंकू, चाँद कलंकी वह निकलंकू[2]

❀ ❀ ❀

वह पदमिनि चितउर जो आनी, काया कुंदन द्वादस बानी
कुंदन कनक ताहि नहिं बासा, वह सुगंध जस कंवल बिगासा
कुंदन कनक कठोर सो अंगा, वह कोमल रंग पुहुप सुरंगा[3]

§५९. साङ्ग रूपक :

जोबन जल दिन दिन जस घटा, भंवर छपान हंस परगटा[4]
यौवन = जल, भ्रमर = केश, काले, हंस = केश श्वेत ।

§६०. यमक :

धरती बान बेधि सब राखी, साखी ठाढ़ देहिं सब साखी[5]

❀ ❀ ❀

तारे गिनत छिपहं सब तारे, छिन न छिपहं पुतरी के तारे[6]

१. पुहुपावती पृष्ठ ६९
२. जायसी ग्रंथ वली ( १९३५ ) पृष्ठ ४८
३. वही पृष्ठ २४०
४. वही पृष्ठ २०७
५ वही पृष्ठ ४९
६. नलदमन पृष्ठ ४६

§६१. तद्गुण :

नयन जो देखा कंवल भा निरमल नीर सरीर
हंसत जो देखा हंस भा दसन जोति नग हीर[१]

§६२. दृष्टान्त :

मुहमद बाजी प्रेम की ज्यों भावै त्यों खेल
तिल फूलहिं के संग ज्यों होइ फुलयाल तेल[२]

§६३. निदर्शना :

जेहि दिन दसन जोति निरमई, बहुतै जोति जोति ओहि भई
रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती, रतन पदारथ मानिक मोती
जहं जहं बिहंस सुभावहि हंसी, तहं तहं छिटकी जोति परगसी[३]

§६४. विनोक्ति :

जग जल बूड़ जहाँ लगि ताकी, मीर नांव खेवक बिनु थाकी[४]

§६५. प्रत्यनीक :

चाल मराल देख पर हसे, बसती छाड़ि सरोवर बसे[५]

§६६. भ्रम :

भूलि चकोर दीठि मुख लावा[६]

§६७. विभावना :

जीउ नाहिं पै जिए गुसाईं, कर नाहीं पै करै सबाई[७]

१. जायसी ग्रंथावली ( १९३५ ) पृष्ठ ३०
२. वही पृष्ठ २९
३. वही पृष्ठ ५०
४. वही पृ० १७४
५. नलदमन पृ० ४९५
६. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ २८
७. वही पृष्ठ ४

§६८. विषादन :

गहै बीन मकु रैन बिहाई, ससि बाहन तहं रहै ओनाई[1]

§६९. पर्य्यायोक्ति :

पुनि धनि सिंह उरेहै लागी, ऐसिहि बिथा रैनि सब जागी[2]

§७०. परिकरांकुर :

रतन चला भा घर अंधियारा[3]

§७१. अनुप्रास :

सिथिल न चंचल बड़ा न छोटा, तरुन न बूढ़ा लटा न मोटा
बहुर न थोरा सजा न फूटा, मिला न बिछुरा जुरा न टूटा[4]

§७२. इस प्रकार अलंकारों की एक एक बड़ी लम्बी सूची बन सकती है। हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य के अलंकारों की विशेषता उनकी स्वाभाविकता है। अंग्रेजी के शब्द फिगर्स आव स्पीच का जो अभिधात्मक अर्थ है वही हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य के अलंकारों पर लागू होता है। जहाँ वर्णनमात्र सुव्यंजना में असफल हो जाता है वहाँ पर उपमा और रूपकों आदि का आश्रय इस धारा में लिया जाता है। अलंकारों का रीतिकाव्य की भाँति जबर्दस्ती प्रयोग नहीं किया जाता।

इन कवियों के उपमान दो वर्गों में बांटे जा सकते हैं :

१. साहित्यिक परम्परा से लिए हुए
२. लोक जीवन से लिए हुए

आंखों के कमल, खंजन भ्रमर, मीन आदि उपमान तो पहली कोटि में रखे जाएंगे परन्तु पेट का मैदा की ईंगुर भरी लोई वाला उपमान दूसरे वर्ग में जाएगा।

१. वही पृष्ठ ८२
२. वही
३. वही पृष्ठ ९३
४. नल दमन पृष्ठ १

भाषा शैली :

§६३. भाषा विज्ञान के दृष्टिकोण से इन ग्रन्थों की परीक्षा डा० बाबूराम सक्सेना एम. ए., डी. लिट्. ने अपने दि इवोल्यूशन आव अवधी[1] में की है। प्रस्तुत लेखक एक मात्र साहित्यिक दृष्टिकोण से उस पर विचार करेगा।

§७४. इन प्रेमाख्यानकों की परंपरा संस्कृत से सीधी नहीं ली गई थी। विश्वास तो ऐसा है कि ये कवि संस्कृत जानते भी नहीं थे। यह बात चाहे औरों के बारे में सच भी हो परन्तु सूरदास लखनवी के विषय में सच नहीं है।[2] न इन कवियों ने सूरदास की भाँति यह कहा :

> व्यास कहे सुकदेव सों द्वादस स्कन्ध बनाइ
> सूरदास सोई कहै पद भावा करि गाइ[3]

और न तुलसी की भाँति समस्त हिन्दू शास्त्रों का मननकर[4] इन ग्रंथों की रचना ही की। तुलसी की भांति इन्हें हिन्दी में लिखने के

१. प्रकाशक इंडियन प्रेस प्रयाग

२. सूरदास ने तो कहा है :

> भारत पढ़त रह्यो चित लाइ

अर्थात वे भारत पढ़ रहे थे। उस समय तक महाभारत के किसी हिन्दी अनुवाद की सूचना हमारे पास नहीं है। इससे अनुमान होता है कि वे संस्कृत की महाभारत ही पढ़ते रहे होंगे।

३. सूर सुधा ( १९९५ वि० ) पृष्ठ १९

४. नानापुराण निगमागम सम्मत यद्। रामचरितमानस बाल वंदना

लिए पंडितवर्ग से क्षमा भी नहीं माँगनी पड़ी। उस युग में धर्म की भाषा हिन्दी नहीं थी। कबीर ने कहा :

संसकिरत है कूप जल भाषा बहता नीर[1]

और हिन्दी को अपनाया। परन्तु कबीर का मार्ग शास्त्र-विहित नहीं था। उसे पंडितों की परवाह भी नहीं थी। उसने निम्न स्तर की जनता के लिए अपना साहित्य रचा पंडितों के लिए नहीं।

तुलसी ने पंडित वर्ग के लिए अपना साहित्य रचा है। वे चाहते थे कि उनके मानस की महत्ता को पंडित भी मानें। इन दो कारणों से उनकी भाषा स्वाभाविक रूप में संस्कृत गर्भित साहित्यिक हो गई। सूर ने भी संस्कृत के ग्रंथों के आधार पर अपना सागर रचा। उनका लक्ष्य साधारण जनता के लिए पद रचना न था। इस कारण उनकी भाषा भी साहित्यिक हो गई है।

§७५. जायसी आदि की परिस्थिति कुछ दूसरी थी। इनके सामने न भागवत् जैसा कोई ग्रंथ था और न अध्यात्म एवं वाल्मीकि रामायण जैसा। लोक प्रचलित कहानियां इन्होंने लीं। इनका लक्ष्य जनता के हृदय को छूना था। उनके सामने न तो पंडितवर्ग था और न मुल्लावर्ग। वे अपने उपदेशों को साधारण जनता के बीच फैलाने की कोशिश कर रहे थे। इस कारण उनकी भाषा जन साधारण की परिष्कृत भाषा थी। इनका यही महत्व है।

§७६. यह भाषा भावों की व्यंजना में पूर्ण समर्थ थी। वास्तव में भावों की तीव्रता में भाषा के पंख टूट जाते हैं। नागमती की विरह गाथा को पढ़ कर हमारी आंखों में आंसू आ जाते हैं। रत्न-सेन के चित्तौर लौटने पर और नागमती से हंस कर बोलने पर नागमती ने जो उत्तर दिया वह अति साधारण भाषा में है :

१. संत बानी संग्रह भाग १ ( १९१५ ) पृष्ठ ६३

काह हंसौ तुम मोसों, किएउ और सों नेह।
तुम मुख चमकै बीजुरी हम मुख बरसै मेह।[1]

परंतु हृदय पर कितनी गहरी चोट करता है। रत्नसेन से बिछुड़कर पद्मावती लक्ष्मी से कितनी सरल भाषा में कहती है :

बाउरि होइ परी पुनि पाटा, देहु बहाइ कंत जेहि घाटा
को मोहिं आगि देहु रचि होरी, जियत न बिछुरै सारस जोरी[2]

यह पाठक के हृदय को जैसे मसोस सा देता है। नागमती एवं पद्मावती ने जो बातें सती होते समय कही हैं, वे कितनी सरल भाषा में हैं, और इसी कारण मार्मिक हैं। सूरदास लखनवी की यह उक्ति कितनी साधारण भाषा में हैं :

नींद निरासै आइ कै कौन ठौर ठहराय
नैन जो मन्दिर नींद के तहं ।पउ रहा समाय[3]

इन कवियों की भाषा मुहाविरेदार है। सूरदास कहते हैं :

कुछ तौ अहै दार महं कारा[4]

लोकोक्तियों का प्रयोग भी काफी मिलता है :

जाके गोड़ न फटी बेवाई, सो का जाने पीर पराई[5]

❀ ❀ ❀

रहै न एकौं अंत कहं नारंग दाड़िम दाख
देवस चार की चाँदनी फिर अंधियारी पाख[6]

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ २१७
२. वही पृष्ठ २०२
३. नल दमन पृष्ठ ५१
४. वही पृष्ठ ६३
५. इंद्रावती (१९०६) पृष्ठ ७९
६. वही पृष्ठ १८

इस प्रकार के अन्य उदाहरण भी ढूंढ़े जा सकते हैं :

शैली की विशेषताओं को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं :

१. आंतरिक व्यंजना कला

२. बाह्य छंद आदि

सुबोधिता, सरलता, रमणीयता, लालित्य एवं प्रवाह हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य की व्यंजना कला संबंधी सामान्य विशेषताएँ हैं। ये कवि एकाध स्थल को छोड़कर सर्वत्र अपने भावों को सीधा सीधा कह देते हैं :

रातीं पिउ के नेह गईं सरग भयउ रतनार
जो रे उवा से अथवा रहा न कोइ संसार[1]

कितने सीधे शब्दों में कवि ने अपनी बात कह दी है।

यह तन जारौं छार कै कहौं कि पवन उड़ाव
मकु तेहि मारग उड़ि परै कंत धरै जहं पांव[2]

यहाँ पर विरहिणी नायिका के मन की भावना का चित्रण अत्यंत सुबोध ढंग से किया गया है।

रकत ढुरा मांसू गरा हाड़ भएउ सब संख
धनि सारस होइ रार मुई पीउ समेटहि पंख[3]

यहाँ पर कितनी रमणीय व्यंजना है।

§७७. इन काव्यों में प्रवाह सर्वत्र मिलता है। न तो कहीं भाषा के कारण और न व्यंजना के कारण ही प्रवाह में कोई दोष आ सका है। एकाध स्थल पर अवश्य जहाँ पर कि कवि उपदेश

१. जायसी ग्रंथावली ( १९३५ ) पृष्ठ ३४०

२. वही पृष्ठ १७७

३. वही पृष्ठ १७६

देने की धुन में बहक उठते हैं प्रवाह में कुछ गतिरुद्धता सी आती है। परन्तु ऐसे स्थल विस्तार के दृष्टिकोण से छोटे रहते हैं इस कारण कोई विशेष दोष नहीं आ पाता।

कहीं कहीं पर ये कवि बात घुमाकर कहते हैं जो कि भाव एवं व्यंजना को आश्चर्यजनक मार्मिकता प्रदान करता है :

**जोबन जल दिन दिन जस घटा, भंवर छपान हंस परगटा**[१]

यहाँ पर भ्रमर के द्वारा काले केशों और हंस के द्वारा श्वेत केशों की व्यंजना की गई है।

ये सारे के सारे काव्य ऐतिहासिक एवं वर्णनात्मक शैली में लिखे गये हैं। न तो कोई कथा आत्मचरित के रूप में है और न संवाद के रूप में। कथाएँ सूरदास की सी गति शैली में भी नहीं लिखी गई हैं।

§७८. छंदों के दृष्टिकोण से सर्वत्र दोहा चौपाई का साधारणतया प्रयोग किया गया है। पुहुपावती में एकाध स्थल पर अरिल्ल आदि छंदों का भी प्रयोग मिलता है।

प्रौढ़ता के दृष्टिकोण से जायसी की कृति अत्यंत प्रौढ़ लेखनी से लिखी गई है और इन्द्रावती सबसे कमजोर है। पद्मावत के सभी वर्णन सजीव एवं विशद हैं। इन्द्रावती में तो जैसे परंपराओं का पालन मात्र सा किया है। वहाँ पर न तो वर्णन में विस्तार ही दिया गया है और न विशदता ही।

---

१. वही। पृष्ठ ३०७

उपसंहार :

§७९. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य की काव्य कला के विश्लेषण के पश्चात् हमारे सामने फिर वही प्रश्न आता है कि क्या इस धारा के काव्यों को महाकाव्य कहा जा सकता है।

जहाँ तक बाह्य लक्षणों का संबंध है ऊपर दिखलाया जा चुका है कि वे समस्त इन काव्यों में प्राप्त हैं।

रस विवेचन, वस्तु वर्णन, अलंकार एवं भाषा शैली में इनके काव्यत्व का विश्लेषण किया गया। उस विश्लेषण से स्पष्ट है कि क्या रस परिपाक, क्या वस्तु वर्णन, क्या अलंकार और क्या भाषा शैली सभी दृष्टिकोणों से पद्मावती अत्यंत श्रेष्ठ है। ये कवि रस परिपाक के शास्त्रीय सिद्धान्त से परिचित न थे परन्तु पद्मावती में शृंगार एवं वीर का बड़ा सुन्दर परिपाक है। नखशिख, प्रकृति आदि के वर्णन भी इसके बड़े ही विशद् हैं। अलंकार विधान से भी जायसी अपरिचित थे परन्तु अलंकार का कहीं कहीं तो सुंदरतम प्रयोग इस काव्य में मिलता है। भाषा एवं शैली में यह काव्य अद्वितीय है।

§८०. इन कारणों से हम कह सकते हैं कि पद्मावत एक महाकाव्य है।

———————

३

# प्रेम पंथ

§१. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में सर्वत्र एक प्रेम-पंथ की चर्चा है। कुछ विद्वानों का मत है कि वह प्रेम आध्यात्मिक है। प्रस्तुत निबंध लेखक ने अन्यत्र विनय-पूर्वक उनके कथन को अस्वीकार किया है। जब संपूर्ण हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य के प्रेम पर हम दृष्टि डालते हैं तो वह लौकिक प्रेम प्रतीत होता है। पद्मावत के एकाध संकेत समुद्र की एक छोटी सी लहर की भाँति अपने में ही खो जाते हैं। प्रस्तुत लेखक का यह दृढ़ विचार है कि हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में आया हुआ प्रेम भले ही भौतिक एवं लौकिक हो परन्तु अपने में महान है। उसकी उज्ज्वलता पर भले ही काम वासना अपनी छाया डाल रही हो, परन्तु उस छाया के तले बसकर भी वह उज्ज्वल ही है। एक विशुद्ध लौकिक दृष्टिकोण से उसका विश्लेषण होना चाहिए।

§२. प्रायः प्रत्येक काव्य में दो प्रकार का प्रेम है :

१. नायक एवं नायिका के बीच

२. नायिका एवं प्रतिनायिका के बीच

एकाध काव्य में एक तीसरे प्रकार का प्रेम भी है :

३. नायक एवं प्रतिनायिका के बीच

§३. पहला प्रेम चार प्रकार से उत्पन्न होता है :

१. गुण श्रवण द्वारा

२. चित्र दर्शन द्वारा

३. प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा

४. स्वप्न दर्शन द्वारा

पद्मावती रत्नसेन का प्रेम पहले, सुजान चित्रावली का दूसरे, मनोहर एवं मधुमालती का तीसरे और हंस और जवाहिर का चौथे

प्रकार से उत्पन्न होता है। इन कारणों का कोई भी प्रभाव प्रेम पर नहीं पड़ता। प्रेम सर्वत्र प्रेम ही है चाहे जिस कारण से उत्पन्न हुआ हो। एक बार प्रेम में पड़ जाने पर मनुष्य विवश हो जाता है।

कठिन मरन ते पेम बिवस्था, ना जिउ जिऐ न दसम अवस्था[1]

कबीर ने जिस प्रेम के लिए कहा था :

प्रेम छिपाया ना छिपै जा घट परगट होय
जो पै मख बोलै नहीं नैन देत हैं रोय[2]

वही प्रेम रत्नसेन, नल आदि का है। इसमें सन्देह नहीं कि यह काम जनित है परन्तु कामजनित होने पर भी प्रेम में इतनी तीव्रता असाधारण वस्तु है। एक स्त्री के लिए माँ की ममता के पाश को कच्चे धागे की तरह तोड़कर बन-बन भटकना, सात-सात समुद्र पार कर जाना, हिंसा, शस्त्र के बल पर नहीं, अहिंसा और प्रेम के अस्त्र के बल पर अनजान देश में जाकर स्पष्ट कहना

पद्मावति राजा की बारी, हौं जोगी तेहि लागि भिखारी

और वर्षा, शीत, घाम सहते हुए प्रेम में योगी बनकर सारे राज्य सुखों को ठुकरा देना अपने आप में एक महानता रखता है। धन्य है वह लौकिक प्रेमी जिसका प्रेम ऐसा है।

पद्मावती के लिए रत्नसेन ने कौन से कष्ट नहीं सहे, चित्रावली के लिए सुजान ने क्या नहीं किया। अपनी नवविवाहिता पत्नी से उसने स्पष्ट कह दिया कि प्रेम का सुख चित्रावली के पाने पर ही उसे मिलेगा[3] और वास्तव में वह काम-सुख से वर्षों तक दूर रहा।

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ ५१
२. हम तुम मानहिं सबै रस जहं लग पेम सुभाउ
३. एक प्रेम रस होइ तबै जब चित्रावली पाउ

राजकुँवर ने पुहुपावती के लिए अपनी दो-दो नव विवाहिता पत्नियों से कहा कि मैं तो पुहुपावती के प्रेम में लीन हूँ।[1] और वास्तव में वह उसी के लिए पागल बना रहा। वह प्रेम जो मनुष्य को इतना त्यागी, कष्ट-सहिष्णु, धैर्यवान् दृढ़ एवं सच्चा बना देता है, पूजनीय है, स्वयं अपनी पार्थिवता में ही दिव्य है।

इस प्रेम का लक्ष्य हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में दो जीवनों का एकीकरण है। यह एकीकरण विवाह की संस्था द्वारा किया जाता है। परन्तु विवाह का कोई भी प्रभाव इस प्रेम पर नहीं आता। पद्मावती विवाह के पहले रत्नसेन की शूली का समाचार सुनकर संदेश भेजती है कि अगर तुम जीवित रहोगे तो मैं भी रहूँगी और अगर तुम न रहे तो मैं भी न रहूँगी। मैं हथेली पर प्राण लिए बैठी हूँ—

काढ़ि प्रान बैठी लेइ हाथा, मरे तो मरौं जिऔं एक साथा[2]

और विवाह के पश्चात भी लक्ष्मी से कहती है कि मुझे उसी घाट की ओर बहा दो, जहाँ पर प्रिय हैं। मेरे लिए आग जला दो, मैं जलकर मर जाना चाहती हूँ सारस की जोड़ी बिछुड़कर जीवित नहीं रहती—

बाउरि होइ परी पुनि पाटा, देउ बहाइ कंत जेहि घाटा
को मोहिं आगि देइ रचि होरी, जियत न बिछुरै सारस जोरी[3]

रत्नसेन के बन्दी बन जाने पर वह गोरा बादल से कितने विनय के स्वर में कहती है कि दुख का वृत्त अब नहीं रखते बनता। उस

१. चित्रावली (१९१२) पृष्ठ ११५
२. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ १२८
३. वही पृष्ठ २०२

की जड़ें तो पाताल तक गहरी चली गई हैं और शाखा स्वर्ग तक उसकी छाया मेरे संसार को अंदर किए है—

दुख बरिखा अब रहै न राखा, मूल पतार सरग भइ साखा
छाया रही सकल महि पूरी, बिरह बेल भइ बाढ़ि खजूरी[1]

सूर्य को ग्रहण ने ग्रस लिया है, अब कमल क्या करे ? मैं भी वहाँ जाऊँगी जहाँ प्रिय गये हैं—

सूरज गहन गरासा, कंवल न बैठे पाट
महूं पंथ तेहि गवनब, कंत गए जेहि बाट[2]

और जिस प्रकार जलते हुए लाक्षागृह में साहस करके भीम गए थे और जाकर उन्होंने रक्षा की थी, तुम भी वैसे ही करो—

जैसे जरत लखाघर साहस कीना भीउं
जरत खंभ तस काढ़हु कै पुरुषारथ जीउं[3]

विवाह के पश्चात् रत्नसेन लक्ष्मी के छल पर कहता है कि मैं भौंरा हूँ, मालती के पुष्प को गंध से ही पहिचान लेता हूँ—

मैं हौं सोई भंवर औ भोजू, लेत फिरौं मालति कर खोजू[4]

तुम क्या रो रही हो। तुम में वह रूप तो है, गंध नहीं है—

का तुइं नारि बैठि अस रोई, फूल सोई पै बास न सोई

और मैं तो सुगंध पर मरनेवालों में हूँ। किसी दूसरे फूल की गंध नहीं लेता—

१. वही पृष्ठ ३१७
२. वही पृष्ठ
३. वही पृष्ठ ३१८
४. वही पृ० १०९
५. वही

हौं ओहि बास जीउ बलि देऊं, और फूल कै बास न लेऊं[1]

विवाह के पहले भी उसने पार्वती से कहा था कि अप्सरे ! भले ही तुम्हारा रंग सुन्दर है परन्तु मुझे तो पद्मावती ही चाहिए—

भलेहि रंग अछरी तोर राता, मोहिं दुसरे सौ भाव न बाता[2]

मैं स्वर्ग नहीं चाहता । मैं जिसके लिए मरता हूँ वही स्वर्ग है

हौं कविलास ब्याह कै करऊं, सोइ कबिलास लागि जेहि मरऊं[3]

स्पष्ट है कि प्रेम की तीव्रता पर कोई भी प्रभाव विवाह का नहीं पड़ा । उसकी शिखा पूर्ववत् ही जल रही है और प्रेमी तथा प्रेमिका एक अनन्य भाव से एक दूसरे से प्रेम कर रहे हैं ।

यह प्रेम बड़ा एकान्तिक है, उसका लक्ष्य प्रेम ही है, कुछ और नहीं । परन्तु मनुष्य इस पर चलकर और कुछ भी कर सकता है । पुहुपावती का राजकुंवर पुहुपावती को प्राप्त करने के पश्चात् भी त्यागी एवं परोपकारी बना रहा । अतिथियों एवं साधु सज्जनों का वह बड़ा सम्मान करता रहा । नारायण उसकी परीक्षा लेने के लिए आए । उन्होंने कठिनतम परीक्षा ली । प्रेम-पंथ पर चलने वाला राजकुंवर एक तपस्वी को वह उत्तर नहीं दे सकता था जो कि रत्नसेन ने तलवार को म्यान से बाहर निकालकर पद्मावती को मांगनेवाले अलाउद्दीन को दिया था :

दरब लेह तो मानों सेव करौं गहि पाउ
चाहै जो सो पदमिनी सिंवल दीपहि जाउ[4]

१. वही
२. वही पृष्ठ १०३
३. वही
४. वही पृष्ठ २५१

वह तो विनीत स्वर में कहता है :

भलेहि गुसाईं किरपा कीन्हा मनसा दान मांग कै लीन्हा[१]

इसका तात्पर्य यह भी नहीं है कि राजकुंवर का प्रेम पुहुपावती के प्रति कम हो गया था। वह पुहुपावती से कहता है कि उसके बिना वह आत्महत्या भले कर लेगा परन्तु 'सत्त, नहीं टाल सकता—

मो ते सत्त न टारा जाई बरु तुम्ह बिनु मरबो विष खाई[२]

पुहुपावती भी जाने को तैयार हो जाती है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि उसका प्रेम राजकुंवर के प्रति कम हो गया था। आत्मसमर्पण के स्वर में वह राजकुंवर से कहती है कि मेरे प्रान तो तुम्हारे हैं, तुम जिसे चाहो दे दो—

इह सुनि के पुहुपावती कहेसि भला हो पीव
जेहि भावे तेहि देहु अब इह तुम्हार है जीव[३]

§४. यहां पर एक बात और भी स्पष्ट कर देनी चाहिए। यह प्रेम सपत्नी के विषय में एकदम आदर्शात्मक है। इस विषय में जायसी ने परिस्थिति अत्यन्त स्पष्ट कर दी है। पद्मावती और नागमती में विवाद होता है और मारपीट हो जाती है परन्तु रत्नसेन दोनों को समझाता है कि मेरे लिए दिन और रात दोनों ही आवश्यक हैं, तुम आपस में लड़ती क्यों हो? पत्नी का धर्म पति सेवा ही है।[४]

और रूप गर्विता पद्मावती तथा नागमती दोनों शांत हो जाती हैं। प्रेम की अपार शक्ति के कारण ही तो पद्मावती के पास नाग-

१. पुहुपावती पृष्ठ ४५१

२. वहीं

३. वही पृष्ठ ४५२

४. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ २२५

मती ने संदेश भेजा था : कि हे सपत्नी ! जिसके हाथ में मेरा पति है वह तुम मेरी बैरिन नहीं हो सकतीं। एक बार मुझसे मेरे प्रिय को मिला दो, मैं तुम्हारे पैरों पर अपना माथा रखती हूं—

सवति, न होसि तू बैरिनि मोर कंत जेहि हाथ
आनि मिलाव एक बेर तोर पांय मोर माथ[१]

रंगीली से भी जब राजकुंवर कहता है कि अगर तुम्हें सपत्नी से ईर्ष्या न लगे तो तुम मेरे साथ चलो—

जौ न सवति कर मानहु माखा,
तौ तुम्ह हमरे संग चलहु कै बैरागिनि भेस,
मन सकुचि जनि आनहु जात बिराने देस[२]

तो रंगीली स्पष्ट उत्तर देती है कि प्रिय, जिस पर तुम अनुरक्त हो उस सपत्नी की मैं बलिहारी जाऊंगी —

औ तेहि सवति की मैं बलिहारी जेहि पर मीतम रीझि तुम्हारी[३]

साधु के साथ जाते समय पुहुपावती कहती है कि प्रिय मेरे मन में एक ही पछतावा बचा है। मैं दोनों सपत्नियों को नहीं देख सकी हूं—

पै अब एक अहै पछतावा, दुवौ सवति नहिं देखै पावा[४]

रूपमती एवं रंगीली दोनों आकर उससे मिलती हैं तो वह उनसे अपने स्नेहार्द्र शब्दों में कहता है कि हम सपत्नी भाव को

१. वही पृष्ठ १८१
२. पुहुपावती पृष्ठ २४१
३. वही पृष्ठ २४१
४. वही पृष्ठ ४५२

आज से छोड़ती हैं और दोनों एक मां से उत्पन्न हुई बहिनों की तरह रहेंगी—

आजु से मानों यहि निसि गाई, जनु तीनों की एकै माई[1]

और बतलाती है कि मुझे तो नाथ वैरागी को देने ले जा रहे हैं—

हमै देइ बैरागिहिं लेइ चले नरनाह[2]

तो दोनों ही राजकुंवर के पास जाकर कहने लगीं कि पुहुपावती के स्थान पर हमें वैरागी को दे दो—

राज कुंवर के आगे जाई, दूनौ ठाढ़ भई सिर नाई।
कहेन्ह पुहुप है सबकै जीऊ, सो कैसे तुम देवहु पीऊ।
हम दोउ माह बराइ कै लेहू, जाइ कै तेहि बैरागिहि देहू[3]।

यह प्रेम कितना दिव्य है। हृदय की पाशविक वृत्तियों के कारण उठे हुए समस्त कुभावों का विनाशकर सामंजस्यवादी भावों की यह वृद्धि करता है।

प्रेम-पंथ का योगी यह जानता है कि वह काम-वासना से पूर्ण है। सुहागरात के बाद राजकुंवर पुहुपावती की सखियों से कहता है कि यह मैं थोड़े ही था जिसने पुहुपावती को कष्ट दिया, यह तो काम था। वह काम बड़ा शक्तिशाली है, उससे कोई भी नहीं बचा है—

मैं पुहुपावति दुख नहिं दीन्हा, जो कछु कीन्ह काम सभ कीन्ह।
जेहि रे काम सो कोउ न बाचा, सभ कह काम नचावे नाचा

१. वही पृष्ठ ४५२
२. वही पृष्ठ ४५२
३. वही पृष्ठ ४५२

कामै सभ कहं काम करावे, काम से तब कोइ करे न पावे।
कामहि सिव कर आसन टारा, तबही ते उपजा जग पारा।
काम के करत परासह लोभा, मंछोद्री कर निरखत सोभा।
इन्द्रहु के पुनि काम सताएउ, भग तें खुनि सहस्र चख पाएउ।
कामहिं ते उपजा संसारा, काम लाग सभ खेल पसारा।[१]

और काम को ये कवि प्रेम से विलग मानते हैं, इसी कारण कवि दुःखहरनदास कहते हैं :

दुःख हरन यहि काम कह राखि सके जो कोइ
जगत माह सो सहज ही मुकती जीअत होइ[२]

इन कवियों का काम से तात्पर्य शारीरिक संयोग से है, प्रेम इन कवियों के दृष्टिकोण से मन की वह वृत्ति है जो पुरुष को नारी की ओर दृढ़ता के साथ खींचती है।

यहाँ पर एक बात और भी स्मरणीय है। यों तो यह प्रेम-पंथ इन कवियों ने समस्त मानव जाति के लिए माना है परंतु कहानियाँ एवं दृष्टांत एकमात्र उच्च वर्ग में से ही दिए हैं, उच्च वर्ग के सम्मुख रोटी का प्रश्न नहीं होता। नल दमन काव्य में इस क्षुधा के प्रश्न को लिया गया है और कवि स्वीकार करता है कि भूखे पेट प्रेम नहीं होता[३]। प्रश्न यह है कि क्या अन्य कवियों के सम्मुख यह प्रश्न नहीं था ? ऐसा प्रतीत होता है कि उन कवियों ने गंभीरतापूर्वक कभी यह सोचा ही नहीं।

§५. प्रतिनायिका और नायक के बीच का प्रेम भी आदर्शात्मक है।

१. वही पृष्ठ ३१०

२. वही पृष्ठ ३१

३. नल दमन पृ० ११०

नायक नायिका को पाकर प्रतिनायिका को भूल नहीं जाता। रत्नसेन ने ज्यों ही सुना कि नागमती विरह से जलकर काली हो गई है और खून के आँसू रो रही है—

जरी बिरह भइ कोइल बानी, .... .... ....
हिया फाट वह जब ही कूकी, परे आँसु सब होइ होइ लूकी
वह पत्ती से कहता है—

पाँखि, आँखि तेहि मारग लागी सदा रहाहिं
कोई न संदेसी आवहिं तोहिक संदेश कहाहिं[१]

और वह गंधर्वसेन से झूठ तक बोलता है—

आवा आजु हमार परेवा, पाती आनि दीन्ह मोंहि देवा
राज काज औ भुंइ उपराहीं, सत्रु भाइ सम कोई नाहीं
आपन आपन करहिं सो लीका, एकहि मारि एक चह टीका

* * *

उहां नियर दिल्ली सुलतानू, होइ जो भोर उठै जिमि मानू[२]

दोनों राजकुंवर भी अपनी पूर्व विवाहिता पत्नियों से प्रेम करते हैं[३]। प्रेम-पंथ में इस प्रेम में और नायिकारब्ध प्रेम में कोई अन्तर नहीं है। दोनों प्रेम समान स्तर पर रखे गए हैं। नागमती से रत्नसेन कहता है—

नागमती तू पहिल बिआही, कठिन बिछोह दहै जनु दाही[४]

१. वही पृष्ठ १८४

२. वही पृष्ठ १८

३. पुहुपावती में इसी कारण वह अपनी पूर्व पत्नियों का सन्देश सुनकर लौट आता है।

४. पुहुपावती पृष्ठ ४४६

पुहुपावती का राजकुँवर तो रंगीली के पैरों पर भी गिर पड़ता है।

इस प्रकार इन कवियों ने नायक एवं प्रतिनायिका के प्रेम को नीचा नहीं रखा, हाँ उसमें संघर्ष नहीं दिखलाया। इस कारण वह पाठक के मन पर अपनी वह उज्ज्वल आभा नहीं डालता जो कि नायिकारब्ध प्रेम डालता है।

प्रतिनायक की सत्ता केवल पद्मावती में है। प्रतिनायक और नायिका के बीच जिस प्रेम का विकास जायसी करते हैं वह दूसरे प्रकार का है। रत्नसेन तो योगी की भाँति सात समुद्र पार कर पद्मावती को प्राप्त करने के लिए गया था परन्तु अलाउद्दीन तलवार के जोर से पद्मावती को चाहता है। उसका दूत कहता है :

बोलु न राजा आपु जनाई, लीन्ह देवगिरि और छिताई[1]

इस पर रत्नसेन के क्रोध की सीमा नहीं रहती। परन्तु जब सुल्तान विनय के स्वर में संधि के लिए कहता है तो राजा इस दुर्वृत्त व्यक्ति को अपने महल में ठहरा लेता है और दर्पण में पद्मावती का प्रतिबिम्ब दिखलाने के लिए राजी हो जाता है। प्रतिनायिका के हृदय में नायिका के लिए वह प्रेम नहीं रहता जो परम त्याग एवं कष्ट सहिष्णुता से भरा हो। उसमें प्रेम तलवार द्वारा हृदय जीतने का यत्न करता है जो सफल नहीं हो सकता। यह प्रम पंथ नहीं है। सच्चे प्रेम-पंथ में तो अहिंसा, योग, विनयशीलता आदि का विशेष महत्व है जिसका स्पष्टीकरण प्रतिनायक और नायिका के प्रेम द्वारा कवि कर देता है।

६§. इस प्रेम-पंथ के बड़े गुण इन कवियों ने गाये हैं। जायसी

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ २५१

नेबुढ़ापे की बुराई की है क्योंकि बुढ़ापे में यौवन नहीं रहता और मनुष्य प्रेम नहीं कर सकता है। वे तो अत्यंत संतप्त स्वर में कहते हैं कि लम्बी आयु अभिशाप है—

विरिध जो सीस डुलावै सीस धुनै तेहि रीस,
बूढ़ी आऊ होहु तुम्ह किन्ह यह दीन्ह असीस[1]

यौवन प्रमत्त पद्मावती के सम्मुख समस्या दूसरी है। आयु का तकाजा प्रेम-पंथ का है और समाज प्रेम-पन्थ में पैर रखने से रोकता है। वह करे तो क्या करे—

जोबन चंचल ढीठ है करै निकाजै काज,
धनि कुलवंति जो कुल धरै कै जोबन मन लाज[2]

और अन्त में वह कुल को छोड़ने को तैयार सी है।[3] आयु उसे प्रेम-पंथ में खींच ले जाती है।

१. वही पृष्ठ ३४२

२. वही पृष्ठ ८५

३. एक स्थान पर मंझन अविवाहित प्रेम में रति के स्थान को सुस्पष्ट करते हुए उपदेश देते हैं :

एक निमिख सुख कारन आपहु सरबस कौन नसाउ
तिरिया थोरहि अकरम जग अपकीरत पाउ

मंझन का दृढ़ विश्वास कुल एवं धर्म की मर्यादा में है :

सुनहु कुँवर एक बचन हमारा।
धर्म पंथ दुहुँ जग उजियारा।

❀ ❀ ❀

कुल औ धरम दोउ रखवारी।
मन ता पंथ दे जाय निकारी।

सूरदास लखनवी तो साफ कहते हैं कि भव-रोग की औषधि प्रिय ही हैं। प्रिय प्रेम-पंथ में मिलता है। उसी से संसार में सुख मिल सकता है—

जगत रोग महं भोग पिउ[१]

और वे प्रेम क्या प्रेमी और प्रेमिकाओं को बड़ी श्रद्धा से देखते हैं :

जिनके पेम कथा मैं जारा, धन ते जिन्ह झेली सो झारा[२]

उसमान कहते हैं कि सृष्टि के खंभे रूप विरह प्रेम ही हैं—

रूप प्रेम बिरहा जगत मूल सृष्टि के थम्म[३]

और नूर मुहम्मद कहते हैं कि इस संसार की रचना ही प्रेम के कारण की गई है—

अलख प्रेम कारन जग कीन्हा, धनि सो सीस प्रेम महं दीन्हा[४]

जायसी भी कहते हैं :

सुमिरों आदि एक करतारू, जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू
कीहेसि प्रथम जोति परकासू कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू[५]

उसमान प्रेम की उत्पत्ति के विषय में कहते हैं कि उसे ईश्वर ने ही बनाया।

आदि प्रेम विधि ने उपराजा[६]

१. नलदमन पृ० ५५
२. वही पृ० ११
३. चित्रावली (१९१२) पृ० १४
४. इन्द्रावती (१९०६) पृ० ६
५. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृ० १
६. चित्रावली (१९१२) पृ० १३

और फिर प्रेम के ही कारण सारी सृष्टि बनाई—

प्रेमहि लागि जगत सब साजा

जायसी तो इस प्रेम को अखिल सृष्टि में व्याप्त मानते हैं :

रोवं रोवं ते बान जो फूटे, सूतहि सूत रुधिर मुख छूटे
नैनहिं चली रकत की धारा, कंथा भीनि भएउ रतनारा
सूरुज बूड़ि उठा होइ ताता, औ मजीठ टेसू बन राता
भा बसंत राती वनसपती, औ राते सब जोगी जती
भूमि जो भीनि भएउ सब गेरू, औ रातें तहं पंखि पखेरू
राती सती अगिन सब काया, गगन मेघ राते तेहि छाया[2]

एक दूसरे स्थल पर वे कहते हैं :

अस जर परा बिरह कर गठा, मेघ साम धूम जो उठा
दाधा राहु केतु गा दाधा, सूरज जरा चाँद जरि आधा
औ सब नखत तराई जरहीं, टूटहिं लूक, धरति महँ परहीं
जरै सो धरती ठावहिं ठाऊं, दहकि पलास जरै तेहि दाउं[3]

इस प्रेम में जब मनुष्य पड़ता है तो उसकी दशा बड़ी ही शोचनीय हो जाती है। उससे न तो जीते ही बनता है और न मरते—

कठिन मरन तें प्रेम बिबस्था, न जिउ जिए न दसम अवस्था[4]

प्रेम पंथ के पथिक के लिए तो कोई भी उपचार नहीं होता। वैद्यों ने जो उपचार राजा नल के किए वे सब व्यर्थ सिद्ध हुए। प्रेमियों की दशा का वर्णन करते हुए सूरदास लखनवी कहते हैं :

१. वही पृ० १३
२. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृ० ११-२
३. वही पृ० १८६
४. वही पृ० ५६

जिन्ह तन बासा प्रेम का तिन घट रकत न माँस
अगिन तेज दाऊ उवत चुह निकसत होइ साँस[1]

और सेज तथा भूमि सब बराबर हो जाते हैं—

मन राता जब मीत सों तब तन सों कछु नाहिं,
भावै लोटौ भूइं पर भावै सेज्या माँहि[2]

यही नहीं, घट बिलकुल सूना हो जाता है—

मन उरझा उत प्रेम फंद छुटै तो इस सुधि लेइ
तन सूना जिउ पिउ पहुँ कह को उत्तर देइ[3]

मंझन ने तो प्रेम के निवास स्थान के विषय में अपनी स्पष्ट सम्मति दी है :

सुनौ जाहि दिन सृष्टि उपाई, प्रीति परेवा देव उड़ाई
तीनों लोक ढूंढ कै आवा, आप जोग कहुँ बैरु न पावा
तब फिर हम जिउ पैसौ आई, रह्यौ लुभान न कियौ उड़ाई[4]

प्रेम पंछी स्वयं अपना परिचय भी देता है कि जहाँ दुख रहता है वहीं पर मेरा निवास स्थान है—

जहवाँ दुख तहं मोर निवासा[5]

प्रेम के महत्व विषय में कहते हैं कि जिसके हृदय में विरह ने घाव नहीं किया उसका जन्म लेना बेकार है—

१. नलदमन पृ० ४६
२. वही पृ० ४७
३. वही पृ० ४८
४. मधुमालती
५. वही

मंझन जो जग जनम ले बिरह न कीया घाव
सूने घर का पाहुना ज्यों आवा त्यों जाव[1]

जायसी की प्रेमानुभूति सबसे अधिक तीव्र है। उसकी पद्मावती कहती है कि मैं प्रिय के पास शृङ्गार करके क्या जाऊँ। मुझे तो प्रिय सर्वत्र व्याप्त दिखलाई पड़ता है—

करि सिंगार तापहं का जाऊं, ओही देखहुँ ठावहिं ठाऊं
नैन माँह है उहै समाना, देखो तहाँ नाहिं कोउ थाना[2]

उसका दृढ़ विश्वास है—

उन्ह बानन अस को जो न मारा, बेधि रहा सगरो संसारा[3]

जायसी का विरह भी अत्यंत तीव्र है। नागमती इतनी संतप्त है कि—

हाड़ भए सब किंगरी नसैं भईं सब ताँति
रोवं रोवं तें धुनि उठै कहौं कथा केहि भाँति[4]

किन्तु सूरदास के शब्दों में ये सारी बातें गोपनीय हैं। जो इन्हें जानता है उसे ही ये बतलानी चाहिये किसी दूसरे को नहीं—

प्रेमी प्रीतम को मरम कहे न काहू पाँह
जानै ताहि जनाइए लोगन सों कछु नाँह[5]

---

१. वही
२. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृष्ठ १६३
३. वही पृ० ४८
४. वही पृ० १८१
५. नलदमन पृ० ६२

४

# अन्य उपदेश

§१. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य का लक्ष्य जैसा कि हमने पीछे बतलाया है पाठकों को साधारण उपदेश देना है। ये उपदेश एक तो प्रेम पंथ पर आरूढ़ होने के संबंध के हैं जिनकी चर्चा हम पीछे कर आए हैं और दूसरे अन्य साधारण उपदेश हैं जिनका विश्लेषण इस परिच्छेद में किया जाएगा।

§२. इन कवियों का सबसे बड़ा उपदेश संसार की नश्वरता का है। नूर मुहम्मद का कथन है:

गए जगत कहं ताजि कै कैसे कैसे लोग[१]

जायसी कहते है:

कहां सो रतनसेन अब राजा, कहां सुआ अस बुधि उपराजा
कहां अलाउदीन सुलतानू, कहं राघव जेइ कीन्ह बखानू
कहं सुरूप पदमावति रानी, कोउ न रहा जग रही कहानी[२]

एक दूसरे स्थल पर भी वे कहते हैं:

तुम्ह तेहि चाक चढ़े हौ कांचे, आएहु रहै न थिर होइ बांचे[३]

यह संसार एक स्वप्न के समान है:

यह संसार सपन कर लेखा, बिछुर गए मानहु नहिं देखा[४]

❀ ❀ ❀

एहि जीवन की आस का जस सपना पल आधु[५]

❀ ❀ ❀

१ इंद्रावती उत्तरार्द्ध पृ० २९८

२. जायसी ग्रंथावली ( १९३५ ) पृ० ३४१

३. वही पृ० १०

४. वही पृ० ६२ ५. वही पृ० ७०

लीन्ह उठाई छार एक मूठी, दीन्ह उड़ाइ पिरथिमी झूठी[1]

❀ ❀ ❀

हौं रे पथिक पखेरू जेहि बन मोर निबाहु
खेलि चला तेहि बन कहं तुम अपने घर जाहु[2]

कासिम शाह कहते है;

जतन छेक धोखा सबै पल महं जाय बिलाय[3]

वे तो इस संसार को धोखा बतलाने पर बड़ा जोर देते हैं:

धोखा गगन फिरै दिन राती, धोखा देखि बलबला भांती
धोखा नगर कोट घरबारा, धोखा औ द्रव्य रूप संवारा
धोखा राज काज सुख भोगू, धोखा सब लक्षन कुल योगू
धोखा किया पुरुष जहं पाई, धोखा अहै सबै दुनियाई[4]

दुखहरन भी कहते हैं:

इह जग जस सपना कै लेखा, भोर भए फिरि किछु नहिं देखा[5]

संसार की नश्वरता—मृत्यु के विषय में नूर मुहम्मद कहते हैं:

मृत्यु बीच है ज्ञानी बहुत छपा है भेद
ज्ञानवंत जो मानुख करै न तापर खेद[6]

§३. किन्तु मलिक मुहम्मद जायसी संसार की क्षण भंगुरता पर जोर देते हुए हमें शिक्षा भी देते हैं:

१. वही पृ० ३४०
२. वही पृ० ६१
३. हंस जवाहिर ( १८०८ ) पृ० ३२०
४. वही पृ० ३२१:७
५. पुहुपावती पृ० ?४
६. इन्द्रावती ( १९०२ ) पृ० २२९

मुहमद जीवन जल भरन रहंट घरी कै रीति
घरी जों आई ज्यों भरी ढरी जनम गा बीति[1]

और इसी कारण

का निचिंत माटी कर भाड़ा[2]

क्योंकि

जौं लहि जोबन जीवन साथा, पुनि सो मीचु पराए हाथा[3]

कासिमशाह भी कहते हैं:

कासिम यौवन बैस जो जाई, तो कस मीत जो रहस भुलाई[4]

❀ ❀ ❀

कासिम यौबन हाथ है चहै सो काज संवार,
पुनि हस्ती बल जायगो कौन उठावै भार[5]

और इस समय

कासिम खोजी वाहि कौ[6]

§४. सूरदास लखनवी तो मार्ग भी बतलाते है:

प्रथम मांज मन दरपन काई, तब निरमल छवि देइ दिखाई
सो हों स्वास सबद मसकला, सहजह ज्ञान रैन दिन चला
तासों लग सोई मन मांजै, मांज ज्ञान अंजन द्दग आंजै
अखरंह बैन ज्ञान हिय होई, रहै न द्वैत रहस होई सोई

१. जायसी ग्रंथावली ( १९३५ ) पृ० १९
२. वही
३. वही पृ० ३४२
४. हंस जवाहिर ( १८९८ ) पृ० ३२८
५. वही
६. वही

मुक्त होइ अलख जब सूझै, सहजै सकल भरम तब बूझै[1]

§५. दुःखहरनदास तो नाम स्मरण मात्र पर जोर देते हैं :

राज जगत महं पाइ कै जो सुमिरै भगवान
ताको कहा बखानिए जो बड़ साधु सज्ञान[2]

* * *

गुप्त जपौ हरि कहं हिअ माहीं

* * *

तैसे मन तन मांही सुरति दसौ दिसि जाइ
पंछी जैस जहाज को बसै जहाजै आइ[3]

§६. जायसी ने इन्द्रिय दमन पर जोर दिया है :

तू राजा का पहिरिसि कंथा, तोरे घरहि मांझ दस पंथा
काम क्रोध तिस्ना मद माया, पांचौ चोर न छांड़हि काया
नवैं सैंध तिनके दिठियारा, घर मूसैं निसि की उजियारा[4]

नूर मुहम्मद भी कहते हैं :

काम क्रोध तिस्ना मया जो नहिं जात नेवारि
नरक होत बन सातों हम कहं पथ मंझार[5]

§७. इन कवियों ने संसार से वैराग्य की भावना पर जोर देते हुए कहा है कि संसार में अपना कुछ भी नहीं है।

१. नलदमन पृ० २९
२. पुहुपावती पृ० २३७
३. वही पृ० ४३३
४. जायसी ग्रंथावली (१९०६) पृ० ५८
५. इंद्रावती (१९०६) पृ० २८

का भूलौं एहि चंदन चोवा, बैरी जहां अङ्ग कर रोवां[1]

* * *

भरे जो जलै गंग गति लेई, तेहि दिन कहां घरी को देई[2]

§८. यहाँ पर तो दान का महत्व है :

धनि जीवन औ ताकर हीया, ऊँच जगत महं जाकर दीया[3]

दान जप तप सबसे ऊंचा है। उसके बराबर संसार में दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है :

दिया सो जप तप सब उपराहीं, दिया बराबर जग कछु नाहीं[4]

दिया शब्द पर श्लेष द्वारा खेलते हुए कवि कहता है :

दिया करै आगे उजियारा, जहाँ न दिया तहाँ अंधियारा

दिया मांही निसि करै अंजोरा, दिया नाहिं घर मूसहिं चोरा[5]

कवि उदाहरण भी देता है :

हातिम करन दिया जो सिखा, दिया रहा धर्मन्ह महं लिखा[6]

दान का महत्व अत्यधिक है :

दिया सो काज दुवौ जग आवा, इहां जो दिया उहां सब पावा

निरमल पंथ कीन्ह तेइ जेइ रे दिया किछु हाथ

किछु न कोइ लेइ जाइहि दिया जाइ पै साथ[7]

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृ० ६२

२. वही पृ० ६०

३. वही पृ० ६९

४. वही

५. वही

६. वही

७. वही

इसलिए आवश्यक है कि :

पुरुषहि चाहिय ऊंच हियाऊ, दिन दिन ऊंचै राखै पाऊ
सदा ऊंच पै सेइय बारा, ऊंचै सौं कीजिय बेवहारा
ऊंचै चढ़ै ऊंच खंड सूझा, ऊंचे पास ऊंच मति बूझा
ऊंचे संग संगति निति कीजै, ऊंचे काज जीउ पुनि दीजै
दिन दिन ऊंच होइ यो जेहि ऊंचे पर चाउ
ऊंचे चढ़त जो खसि परै ऊंच न छांडिउ काउ[1]

§९. किन्तु ऊंचे पुरुषों को पहिचानना चाहिए। केवल मीठे वचन बोलनेवाले व्यक्ति ही ऊंचे नहीं होते। यों तो माया भी मीठी होती है—

अमिय वचन जो माया को न मरै रस भीज[2]

परंतु

जो मुँह मीठ पेट विष होई[3]

§१०. इन कवियों ने सत् पर काफी जोर दिया है :

बांधी सिहिटि अहै सत केरी, लछमी अहै सत्य कै चेरी
सत्य जहां साहस विधि पावा, औ सतबादी पुरुष कहावा
सत कहं सती संवारै सरा, आगि लाइ चहुं दिसि सत जरा[4]

सत्य की महिमा दोनों जगत् में है :

दुहुं जग तरा सत्य जेइ राखा, और पियार दइहि सत भाखा[5]

*   *   *

१. वही पृ० ७८
२. वही
३. वही
४. वही पृ० ४४
५. वही

दान और सत्य दोनों में दृढ़ संबन्ध है :

दत्त सत्त हैं दूनौं भाई, दत्त न रहै सत्त पै जाई[1]

§१३. लोभ बुरा है क्योंकि :

जहां लोभ तहं पाप संघाती, संचि कै मरै आन कै थाती
सिद्ध जौ दरब आगि कै थांपा, कोई जार जारि कोइ तापा[2]

किन्तु संसार समझता है :

दरब तैं गरब करै जो चाहा, दरब तैं धरती सरग बसाहा
दरब तैं हाथ आइ कबिलासू, दरब तैं अछरी छांड़ न पासू
दरब तैं निरगुन होइ गुनवंता, दरब तैं कुबुज होइ रुपवंता
दरब रहै भुइं दिपै लिलारा[3]

किन्तु :

लोभ न कीजै दीजै दानू[4]

क्योंकि :

दान पुन्न ते होइ कल्यानू[5]

* * *

दरब दान देवै विधि कहा, दान मोख होइ दुःख न रहा
दान आहि सब दरब क जूरु, दान लाभ होइ बांचै मूरू
दान करै रच्छा मंझ नीरा दान खेह कै लावै तीरा[6]

१. वही
२. वही
३. वही पृ० १९६
४. वही
५. वही
६. वही

उदाहरण भी लीजिए ;

दान करन के दुइ जग तरा, रावन संचा अगिन महं जरा
दान मेरु बढ़ि लाग अकासा, सैंति कुबेर मुए तेहि पासा[१]

§१४. दान के साथ ही साथ इन कवियों ने मांस खाने तथा दूसरों को कष्ट देने की भी निंदा की है :

निठुर होइ जिउ बधसि परावा, हत्या करे न तेहि डर आवा
कहसि पंखि का दोस जनावा, निठुर तेइ जे पर मस खावा

* * *

औ जानहि तन होइहि नासू, पोखै मांसु पराए मांसू
औ न होहिं अस परमंस खाधू, कित पंखिन्ह कहं धरै बियाधू[२]

§१५. मूर्ति पूजा का भी ये कवि विरोध करते थे :

का पाथर के पूजे लहई, पूजौं ताहि जो करता अहई[३]

क्योंकि :

पाहन सुनै न तेरी बातें, सुमिरु जगत कर्ता दिन रातें[४]

जायसी भी कहते हैं :

पाहन चढि जो चहै भा पारा, सो ऐसे बूडे मझधारा
पाहन सेवा कहां पसीजा, जनम न ओह होइ जो भीजा[५]

इस कारण :

बाउर सोइ जो पाहन पूजा[६]

१. वही
२. वही पृ० ३६
३. इन्द्रावती ( १९०६ ) पृ० २७१
४. वही
५. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृ० ६६
६. वही

§१६. मनुष्य को चाहिए कि पहले से ही सावधान रहे :

चरस न खुटक कीन्ह जिउ तब रे चरा सुख सोइ
अब जो फांद परा गिउ तब रोए का होइ[1]

यह मार्ग गलत है कि :

सुखी निचिंत जोरि धन करना, यह न चिंत आगे है मरना[2]

क्योंकि :

जो भल होत राज औ भोगू, गोपी चंद नहिं साधत जोगू[3]

§१७. इस कारण हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य मनुष्य को तीन मार्गों की ओर संकेत करता है :

१. प्रेम पंथ
२. इस्लाम (केवल मुसलमान कवियों के द्वारा)
३. ईश्वर भक्ति

§१८. प्रेम पंथ के विषय में ये कवि कहते हैं :

जगत रोग महं भोग पिउ[4]

इसकी विवेचना पिछले परिच्छेद में की जा चुकी है :

§१९. इस्लाम के विषय में ये मुसलमान कवि कहते हैं :

निसि दिन सुमिरु मुहम्मद नाऊं, जासों मिले सरज महं ठाऊं[5]

क्योंकि :

अहै रसूल निबाहन हारा[6]

१. वही पृ० ३३
२. वही
३. वही पृ० ६२
४. नल दमन पृष्ठ ५५
५. इन्द्रावती (१९९६) पृ० ९१
६. वही पृष्ठ ९५

मुहम्मद ने ही

दीपक लेसि जगत कहं दीन्हा[१]

इससे

भा निरमल, जग मारग चीन्हा[२]

और

जौं न होत अस पुरुष उजारा, सूझि न परत पंथ अंधियारा[३]

मुहम्मद साहब के नाम स्मरण के बिना तो विधि जाप भी व्यर्थ है:

जो भर जनम करे विधि जापा, बिनु वोहि नाम होहि सब लापा[४]

और

एक बार जो मन बिच चहई, नाम महम्मद, विधि विधि लहई[५]

कुरान की महिमा भी अत्यधिक है:

जो पुरान विधि पठवा सोई पढ़त गरंथ,
और जो भूले आवत सो सुनि लोग पंथ[६]

§२०. ईश्वर भक्ति के विषय में थोड़े से ही संकेत यहां वहां दिए गए हैं। इसके लिए गुरु की आवश्यकता है:

बिना गुरू को निरगुन पावा[७]

* * *

१. वही पृ० ५ २. वही
३. वही
४. चित्रावली ( १९१२ ) पृ० ५
५. वही
६. जायसी ग्रंथावली ( १९३५ ) पृ० ६
७. वही पृ० ३४१

बिनु गरु पंथ न पाइय भूलै सो जो भेट
जोगी सिद्ध होइ तब जब गोरख सों भेट[1]

*　　*　　*

मुहमद सोइ निहचिंत पथ जैहि संग मुरसिद पीर,
जेहिक नाव और खेवक बेगि लाग सो तीर[2]

ब्रह्मांड को पिंड में ही देखना चाहिए:

चौदह भुवन जो तर उपराहीं, ते सब मानुस के घट माहीं[3]

❀　　❀　　❀

घट ही महं सो पंथ लखावा[4]

§२१. सामाजिक कृत्यों के अवसर पर भी मुसलमान कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने संगीत का बहिष्कार करते हुए कहा है:

नाद वेद मद पैं जो चारी, काया महं ते लेहु बिचारी
नाद हिए मद उपनै काया, जहं मद तहां पैठ नहिं छाया

❀　　❀　　❀

जोगी होइ नाद सो सुना, जैहि सुन काम जरै चौगुना[5]

यहां पर कवि की चतुराई दिखलाई पड़ती है। संगीत का बहिष्कार उसने कितनी अच्छी तरह से किया कि साधारण पाठक उसे पहिचान भी नहीं पाता।

१. वही पृ० १०४
२. वही पृ० ९
३. वही पृ० ३४१
४. पुहुपावती पृ० ६
५. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृ० १४२

हिन्दू कवि दुःखहरनदास तो अपना मार्ग स्पष्ट बतलाते हैः

निसु दिन बंदौ राम पद तुअ अनादि करतार[१]

किन्तु

एहि जग महं जो बड़ सुख पावा, सिरजनहारहि तेइ बिसरावा[२]

इस कारण

तेहि सुख महं भूलै का कोई[३]

§२२. संसार तो एक बिराना देस है। यहां की हर चीज यहीं रह जाती है:

गयउ न कोऊ संग पियारा[४]

और सब को यहां से जाना ही पड़ता है:

लाख बरस कोऊ जिये सोऊ मरै निदान[५]

इस कारण

यह थोरी जीवन उपर काहै नित अभिमान[६]

सत्य तो यह है किः

एहि जग महं लाहा तिन्ह पावो, जेइ हरि सुमिरन महँ मन लावो[७]

संसार की प्रत्येक वस्तु नाशवान् है। यहां तो केवल कहानी बच रहती है, केवल यश बच रहता है। इसीलिए जायसी कहते हैं:

१. पुहुपावती पृ० १

२. पुहुपावती पृ० २३५

३. वही पृ० २३६

४. इंद्रावती उत्तरार्द्ध पृ० ३०२

५. वही

६. वही

७. पुहुपावती पृ १४

औ मैं जानि गीत अस कीन्हा, मकु यह रहै जगत महं चीन्हा[1]

क्योंकि

केइ न जगत जस बेचा केइ न लीन्ह जस मोल[2]

कवि की इच्छा केवल इतनी ही है कि

जो यह पढ़े कहानी हम्ह संवरौ दुइ बोल[3]

§२३. यहां पर एक समस्या यह है कि क्या इन उपदेशों तथा प्रेम पंथ के बीच कोई संबंध है। सच तो यह है कि ये नैतिक तथा धार्मिक उपदेश प्रेम पंथ से अलग हैं। मध्ययुग का ज़माना, कुरान की शिक्षा तथा इन कवियों का संत स्वभाव इन अन्य उपदेशों के मूल में है। जैसा कि पीछे बतलाया गया है इन कवियों का प्रेम पंथ एक महत्वपूर्ण वस्तु थी। उसमें अनाचार की भावना न थी इसी कारण इन उपदेशों तथा प्रेम पंथ में किसी प्रकार का विरोध नहीं है।

---

१. जायसी ग्रंथावली (१९३५) पृ० ३४१

२. वही पृ० ३४२

३. वही

भाग ४

# उपसंहार

धारा का महत्व

§१. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य फारसी से बहुत थोड़ा प्रभाव लेकर भारतीय साहित्य की परंपरा में चला। इसके कथानक या तो लोक प्रचलित हैं या काल्पनिक हैं। ये दोनों प्रकार के ही कथानक अधिकतर भारतीय हैं। फारसी से कोई कथा नहीं ली गई। सूफी धर्म का थोड़ा प्रभाव इस पर इस्लाम की जनता के बीच लोक प्रिय बनाने में है। मसनवी शैली का प्रभाव भी थोड़ा सा इन काव्यों पर है।

§२ ये कवि इस्लाम का प्रचार इस धारा के माध्यम से कर रहे थे इतनी बड़ी बात तो नहीं कही जा सकती परंतु यह अवश्य है कि ये इस्लामी विश्वासों एवं विचारों को जनता के बीच फैला कर इस्लाम के प्रति जो कटुता हिन्दुओं में थी उसे कुछ दूर कर इस्लाम प्रचार के कार्य में हाथ बंटा सा रहे थे।

§३. इस धारा के काव्यों का लक्ष्य उपदेश देना था। ये उपदेश दो वर्गों में विभक्त हो सकते हैं:

१. प्रेम पंथ संबंधी

२. अन्य उपदेश

इनका विश्वास था कि लौकिक प्रेम भी पवित्र एवं दिव्य हो सकता है। प्रेमी को दयावान्, सत्य, प्रिय, निर्लोभी, दानी होना चाहिए। ऐसा प्रेमी इस नश्वर संसार में भी अमर हो जाता है।

§४. हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य का सबसे पहला प्राप्त ग्रंथ पद्मावत है। कलात्मक उत्कर्ष काल में हिन्दी को सबसे पहले लम्बे लम्बे आख्यान हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य ने ही दिए हैं। प्रारंभ काल में अवश्य कुछ आख्यान लिखे गए थे। परंतु उनके स्वरूप पर एक गहरा प्रश्नवाचक चिन्ह लगा हुआ है। प्रबंध सौष्ठव के दृष्टि-

कोण से भी वे ऐतिहासिक होने के कारण इतने सुंदर नहीं है, पोषित चारणों द्वारा लिखे जाने के कारण वे इतने मार्मिक नहीं हो सके। कहानी कला नामक वस्तु का उनमें सवथा अभाव है। चरित्र चित्रण में किसी प्रकार की स्वतंत्रता उन कवियों के पास न थी और उन काव्यों की मुख्य संवेदना अत्यंत अकलात्मक थी। उनकी रचना का लक्ष्य हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य की अपेक्षा बहुत नीचा था। उन्होंने भी प्रेम विरह की बातें लिखीं, संयोग वियोग के गीत गाए हिन्दी का पहला बारहा मासा भी उन्होंने ही लिखा[1], परंतु उनके प्रेम तथा हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य के प्रेम में पृथ्वी पाताल का अंतर है। वे नारी को वही स्थान देते थे जो बादल ने अपनी पत्नी को बतलाया है:

तिरिया भूमि खड्ग की चेरी[2]

कहां हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यों में प्रेम में पागल राजकुमारों का समस्त सांसारिक वैभवों का परित्याग कर योगी के वेश में निकल पड़ना और कहां चारण साहित्य में तलवार के बल से स्त्री को छीनना। प्रेमाख्यानक काव्य में नारीत्व की शोभा है, नारीत्व का माधुर्य है, नारीत्व के प्रति आदर है परंतु चारण साहित्य में नारीत्व का वह स्थान नहीं है, प्रेम के प्रति श्रद्धा का वह भाव नहीं है। प्रारंभ काल में विद्यापति ने भी प्रेम के गीत गाए परंतु उसके प्रेम में उस स्फूर्ति के दर्शन दुर्लभ हैं जो कि हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में है। प्रेम की वह उच्चता जिसकी अंतिम सीमा प्रेम पंथ है, विद्यापति में नहीं मिलती। विद्यापति के प्रेम में संघर्ष का अभाव

१. देखिये: नरपति नाल्ह: वीसलदेव रासो

२. जायसी ग्रंथावली ( १९३५ ) पृ० ३२२

है। न तो वहां कृष्ण ही प्राणों की बाजी लगाकर प्रेम करते हैं और न राधा ही। यहां तो रत्नसेन शूली पर चढ़ने को तैयार है और पद्मावती 'जिऐ तौ जिऔं, मरौं एक साथा' का प्रण कर बैठी है। विद्यापति का प्रेम समाज से डरता है। विद्यापति की राधा कितने विनीत स्वर में कहती है:

सुनु रसिया
अब न बजाउ विपिन बँसिया

बार बार चरणारविन्द गहि सदा रहब बनि दसिया
कि छलहुँ कि होएब से के जानए वृथा होएत कुल हसिया[1]

परंतु प्रेम पंथ में पड़े राजकुमारों ने समाज का परित्याग पहले कर दिया। विवाह के द्वारा वे अपने प्रेम को समाज को विशृंखल बनानेवाला नहीं वरन् समाज का निर्माण करनेवाला बना देते हैं। फारसी मसनवियों के विरुद्ध ये कवि पूर्ण सामाजिक मर्यादा में विश्वास रखते थे।

§५. कृष्ण भक्तों के विरुद्ध भी इनके प्रेम में सामाजिकता थी। न तो इनके नायक बचपन से चोली बंद तोड़ना सीखते थे और न राह चलती युवतियों को छेड़ते थे। ये नगर निवासी राजकुमार थे, गांवों में रहने वाले अहीर नहीं। ये नारी को अपने प्रेम से वशीभूत करते थे बांसुरी जैसी किसी बाह्य वस्तु से नहीं। गोपियों के प्रेम में वह स्फूर्ति नहीं, कार्यशीलता नहीं जो हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य के प्रेम में मिलती है। मथुरा और गोपियों के गाँव में थोड़ी सी ही दूरी है परंतु न तो गोपियां वहां तक जा सकीं और न कृष्ण ही वहां आ सके। कृष्ण ने अपना दूत भेजा।

१. जनार्दन मिश्रः विद्यापति (१९३८) पृ० २३७

परंतु रत्नसेन, राजकुंवर, सुजान आदि प्रेम के पीछे सात सात समुद्र पार जाते थे और वहां पर अपनी पूर्व प्रेयसी का समाचार पाते ही वहाँ से लौटते थे। कृष्ण तो मथुरा से एक दिन के लिए भी नहीं आए।

राधाकृष्ण प्रेम लरकाईं का प्रेम है इस कारण भूलना कठिन है परंतु हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में यौवन का प्रेम ही इतना दृढ़ है कि कभी भी नहीं भूला जा सकता और नायिकाएं कहती हैं :

यहि जग काहु जो अछहि न आथी
हम तुम नाथ दुहूँ जग साथी[1]

गोपियों का विरह अत्यंत तीव्र है परंतु उसमें वह कारुण्य नहीं जो नागमती के विरह में है। गोपियां जानती हैं कि कुब्जा सुन्दर नहीं है, कुबड़ी है और कृष्ण उन्हें कुब्जा के कारण नहीं त्याग गए, यह बात दूसरी है कि वहाँ जाकर उससे प्रेम करने लगे। नागमती की परिस्थिति ही दूसरी है। वह जानती है कि उसका प्रियतम एक दूसरी स्त्री के कारण ही उसे छोड़ गया है और वह स्त्री उसकी अपेक्षा कहीं अधिक सुन्दर है। इस कारण नागमती की परिस्थिति अधिक दयनीय हो जाती है। गोपियों ने कुब्जा के लिए जो संदेश भेजा है उसकी तुलना नागमती द्वारा पद्मावती के लिए भेजे गए संदेश से किसी प्रकार नहीं हो सकती। गोपियाँ कहती हैं कि कृष्ण की रसिक प्रवृत्ति के प्रति कुब्जा सजग रहे, कहीं कृष्ण किसी अन्य स्त्री से भी प्रेम न करने लगें। परन्तु नागमती ऐसी बात नहीं कहती। यों वह यह कह सकती थी, रत्नसेन ने एक सुन्दरतर स्त्री का रूप वर्णन सुनकर मुझे त्याग दिया

१. जायसी ग्रंथावली ( १९३५ ) पृ० ३४०

है। पद्मावती, सावधान रहना, कहीं तुम से सुन्दरतर स्त्री का रूप वर्णन सुनकर तुम्हें न त्याग दे। परन्तु नागमती स्त्री ही दूसरी है। उसका नारीत्व इतना नीचा नहीं है। कृष्ण गोपी प्रेम भक्तिमय प्रेम है, इसी कारण इस मानवी कसौटी पर खरा नहीं उतरता।

कृष्ण भक्तों ने दम्पति-प्रेम को आत्मा परमात्मा के बीच मानकर पवित्र माना परंतु हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य ने उसके निखरे धुले स्वरूप को ही पवित्र मान लिया। यों कृष्ण भक्तों एवं हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यकारों के प्रेम में विशेष अन्तर नहीं।

§६. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य ने राम चरित मानस की अपेक्षा कम से कम पचास वर्ष पहले अवधी भाषा में बड़े बड़े चरित काव्यों की रचना की। राम चरित मानस पुराणों की शैली पर है, प्रेमाख्यान एक ओर मसनवी शैली पर स्तुति खंड लिखते थे और दूसरी ओर किसी चलती हुई भारतीय शैली पर काव्य लिखते थे। मौलिक कहानियां भी हिंदी में पहली बार हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में ही मिलती हैं।

तुलसी में भी प्रेम का वर्णन है परंतु वह प्रेम सर्वथा दूसरा ही है। उसकी किसी प्रकार तुलना हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य से नहीं हो सकती। वह अति मर्यादित प्रेम है जिसमें हिन्दू संस्कृति अपने आदर्शात्मक स्वरूप की झाँकिया दिखा रही है। उनके राम की पलकों पर निमि बसते थे। हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य का प्रेम वैसा संस्कृत एवं अति मर्यादित नहीं है। जिस दोहा चौपाई वाली शैली में पद्मावती लिखी गई थी उसी में रामचरित मानस भी रचा गया था। जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है प्रबंध काव्यों की यही शैली उस युग में मान्य थी। यह नहीं कहा जा सकता कि तुलसी ने जायसी से यह शैली ली थी। कथा शैली भी दोनों की विभिन्न है। रामचरितमानस संवादों की शैली में लिखा गया है;

परन्तु पद्मावती आदि स्वतंत्र इतिहास के रूप में। राम चरित मानस संभवतः सोचकर महाकाव्य की शैली पर लिखा गया है पर पद्मावती अनजान में महाकाव्य बन गई है।

§७. संत साहित्य में जिस प्रेम के गीत गाए गए हैं वह आध्यात्मिक है। इस कारण उसमें वह तीव्रता नहीं आ सकी जिसके दर्शन नागमती में होते हैं। जहां तक दर्शन का संबंध है संत काव्य प्रमुखतया अद्वैतवादी है और प्रेमाख्यानक काव्य प्रमुखतया एकेश्वरवादी। जीव क्या है। इसकी व्याख्या संत साहित्य में की गई है परंतु प्रेमाख्यान इस पर मौन है। संत साहित्य पुस्तक ज्ञान को व्यर्थ मानता था और प्रेमाख्यानक काव्य में कुरान पर पूरी आस्था दिखलाई गई है। संत साहित्य पीरत्व एवं रसूलत्व आदि में विश्वास नहीं रखता है परंतु प्रेमाख्यानक साहित्य पूर्णरूप से रखता है। हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य हठयोग की बातें तो अवश्य कहता है परन्तु उसका उपदेश नहीं देता, कबीर खूब देते हैं। ये दोनों वर्ग ब्रह्मांड को घट में दिखलाते थे। मुसलमानों के द्वारा रचे गए हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में इस्लाम की भाँति ईश्वर तो अवतार नहीं ले सकता परन्तु अन्य ईश्वरीय शक्तियां शिव आदि ले सकते हैं। सन्त काव्य में ऐसा नहीं है। सन्त काव्य एक सामाजिक सुधार का काव्य है, परन्तु हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य सामाजिक सुधार के लिए नहीं है। सन्त साहित्य दोहा पदों की शैली को अपनाता है और कहीं कहीं पर दोहा और चौपाई का हल्का प्रयोग करता है परन्तु हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य ऐसा नहीं करता। उसमें सर्वत्र दोहा चौपाइयां ही हैं। इस प्रकार हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य एवं सन्त काव्य में बहुत कम समानताएं है।

§८. हिन्दी प्रेमाख्यानक ने हिन्दी साहित्य को सबसे पहले महाकाव्य दिए और उन महाकाव्यों का आधार लोक कथाएं थीं, पुराण

नहीं। दोहा चौपाइयों की शैली के सबसे पहले सफल काव्य इनमें ही लिखे गये। चलती हुई अवधी भाषा का परिष्कृत स्वरूप इन आख्यानों में मिलता है। कहा जाता है कि फारसी लिपि के कारण इन काव्यों में उस समय की भाषा सुरक्षित है। पता नहीं फारसी लिपि की अवैज्ञानिकता को ध्यान में रखकर परीक्षा करने पर यह बात कहां तक खरी उतरेगी। इन आख्यानों ने हिन्दी को अपने वर्णन दिए हैं जिनका सौन्दर्य कभी मलीन होने वाला नहीं है। नागमती की विरह गाथा संभवत: सदा विरह काव्य में अपना अत्यंत ऊंचा स्थान रखेगी।

भारतीय विचार धारा में मानवीय प्रेम को इतना ऊंचा स्थान प्राप्त नहीं था। वह स्थान इन कवियों ने ही दिया है। नारी के प्रेम को भारत सदा अविद्या कहकर ठुकराता रहा परन्तु कवियों ने उसकी उच्चता का पाठ हमें पढ़ाया।

संक्षेप में हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य की हिन्दी साहित्य तथा भारतीय विचार धारा को यही देन है।

---

# परिशिष्ट

पाठ्य सामग्री

# पुस्तकें

## अंगरेज़ी


अर्नल्ड : प्रीचिंग औफ़ इस्लाम

अलबरूनी : इन्डिया

अशरफ : लाइफ एण्ड कन्डीशन्स औफ़ पीपुल इन हिन्दुस्तान

इंडियन इयर बुक. १९१४, २२, ४३

इम्पीरियल गज़ेटियर औफ़ इंडिया

इलियट : हिस्ट्री औफ़ इंडिया एज़ टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियन्स

ईश्वरीप्रसाद : ए शार्ट हिस्ट्री अव मुस्लिम रूल इन इंडिया

ईश्वरीप्रसाद : मैडीवल इंडिया

ईश्वरीप्रसाद : हिस्ट्री औफ़ करुना टर्क्स

उपाध्ये : कथाकोष

एडगर पलहम : दि आर्ट औफ़ नावेल

ए डिस्क्रिप्टिव कैटलाग औफ़ हिस्टारिकल एण्ड बार्डिक मैन्युस्क्रिप्ट्स इन राजपूताना

एन्साइक्लोपीडिया औफ़ रिलीजन्स ईथिक्स

ऐबरक्रौमबाई : दि आइडिया औफ़ ग्रेट पोइट्री

कास्टल : रोज़ गार्डन इन पर्शिया

क्रुक : ट्राइब्ज़ एण्ड कास्ट्स इन नार्थ वेस्टर्न प्रोविंस भाग १—३

कृष्णानामाचार्य : हिस्ट्री औफ़ संस्कृत लिटरेचर

क्षितिमोहन सेन : मैडीवल मिस्टीसिज़्म

खाजा खान : स्टडीज़ इन तसव्वुफ़

खान : इनर लाइफ
खान : दि बाउल औफ़ साकी
खान : दि वे औफ़ इल्यूमिनेशन
खान : सूफी मैसेज औफ़ स्पिरियुअल लिबर्टी
खान : सोल व्हैन्स एण्ड व्हिदर
खुदाबख्श : दि ओरिएन्ट अन्डर दि केलिफस
ग़नी : हिस्ट्री औफ़ पर्शियन लैंग्वेज एण्ड लिटरेचर औफ़ मुगल कोर्ट
ग्रियर्सन : माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर औफ़ हिन्दुस्तान
गुलराज़ : सिन्ध एण्ड इट्स सूफीज़
जुहूद्दीन अहमद : मिस्टिक टेन्डेंसीज़ इन इस्लाम
टाइटस : इन्डियन इस्लाम
टाड : राजस्थान
डिस्ट्रिक्ट गज़टियर्स यू० पी०—मुल्तानपुर, रायबरेली
डिस्ट्रिक्ट गज़टियर्स बङ्गाल—मैमनसिंह
डिस्ट्रिक्ट गज़टियर्स—मद्रास, त्रिचनापल्ली
डेविस : जलालुद्दीन रूमी
डेविस : जामी
ताराचंद : दि इन्फ्लुएन्स औफ़ इस्लाम औन इंडियन कल्चर
निकल्सन : इस्लामिक मिस्टिसिज़्म
निकल्सन : दि आइडिया औफ़ पर्सनलिटी इन सूफीज़्म
निकल्सन : दि मिस्टिक्स औफ़ इस्लाम
निकल्सन : लिटरेरी हिस्ट्री औफ़ अरब
पामर : ओरिएण्टल मिस्टिसिज़्म
पीटरसन : रिपोर्ट औफ़ आपरेशन्स इन सर्च औफ़ संस्कृत

| | मैन्युस्क्रिप्ट्स |
| --- | --- |
| फास्टर : | एस्पेक्ट्स औफ़ नावेल |
| बड़थ्वाल : | दि निर्गुन स्कूल औफ़ हिन्दी पोइट्री |
| बाबूराम सक्सेना : | इवोल्यूशन औफ़ अवधी |
| ब्राउन : | लिटरेरी हिस्ट्री औफ़ परशिया भाग १—२ |
| ब्लोचमैन : | कन्ट्रीब्यूशन टु दी ज्योगरेफी एन्ड हिस्ट्री औफ़ बंगाल |
| ब्रिग्ज़ : | गोरखनाथ एन्ड दि कनफटा योगीज़ |
| बील : | ओरिएन्टल बायोग्रेफ़िकल डिक्शनरी |
| म्योर : | क्रेफ्ट औफ़ फिक्सन |
| म्योर : | एनाल्स औफ़ दि अर्ली कैलिफेट |
| मुंशी : | गुजरात एन्ड इट्स लिटरेचर |
| मैक्लेगन : | पंजाब सैन्सस रिपोर्ट १८९१ |
| मोहनसिंह : | गोरखनाथ एन्ड दि मैडीवल मिस्टिसिज़्म |
| मोहनसिंह : | हिस्ट्री औफ़पंजाबी लिटरेचर |
| र्‍यू : | ए कैटलाग औफ़ पर्शियन मैन्युस्क्रिप्ट्स इन ब्रिटिश म्यूज़ियम लाइब्रेरी भाग १—३ तथा सप्लीमेंट |
| रामबाबू सक्सेना : | हिस्ट्री औफ़ उर्दू लिटरेचर |
| राय चौधरी : | दीन इलाही |
| रोज़ : | ट्राइब्ज़ एन्ड कास्टस इन पंजाब भाग १—३ |
| लबक : | क्रेफट औफ़ फिक्शन |
| लाजवंती रामकृष्ण : | पंजाबी सूफी पोइट्स |
| वागन : | आवर्स विद दि मिस्टिक्स |
| वाहिद मिर्ज़ा | लाइफ एन्ड वर्क्स औफ़ अमीर खुसरो |
| वेलवंकर : | जिनरत्न कोष |

शिरेफ : पदुमावती
शुस्त्री : आउटलाइन्स औफ़ इस्लामिक कल्चर भाग१-२
स्मिथ : रबिया दि मिस्टिक
सेन दिनेशचन्द्र : हिस्ट्री औफ़ बंगाली लैंग्वेज एन्ड लिटरेचर
हकीम : मेटाफिज़िक्स औफ़ रूमी
हबीब : हज़रत अमीर खुसरो अव देहली
ह्यूज़ : डिक्शनरी औफ़ इस्लाम
हर्क्लोटेस : इस्लाम इन इंडिया
हिट्टी : हिस्ट्री औफ़ दि अरब्ज़

## उर्दू फारसी अरबी

अख़बार अल अख्यार
अत्तार : कश्फ़ अल महूजब
अत्तार : विस ओ रामी
अबुल फज़ल आइने अकबरी
अमीर खुसरो : देवल देवी ख़िज़्रखाँ
अमीर खुसरो : लैला मजनूं
अलिफ लैला हज़ारदास्ताँ
कल्बे मुस्तफा : मालिक मुहम्मद जायसी
कुरान
खय्याम : रूबाइयात
जामी : युसुफ जुलेखा
जामी : लवाहे
दारा शिकोह : सफ़ीन्तुल औलिया
दारा शिकोह : हक़नामा
निज़ामी: लैला मजनूं
निज़ामी: शीरीं खुसरो

निज़ामी हफ्त पैकर
फ़ानी : दबिस्तां मज़ाहिब
फ़िरदौसी : यूसुफ़ ज़ुलेख़ा
फ़िरदौसी : शाहनामा
फ़ैज़ी : नलदमन
बदाउनी : मुन्तखबु ए तवारीख़
रूमी : मसनवी
शेरुल अजम
सरवर : खजीनतुल असफिया
सरोज : किताब अल लुमा


## हिन्दी


ओझा : उदयपुर का इतिहास
उसमान : चित्रावली
कासिमशाह : हंस जवाहिर
खोज रिपोर्ट यू० पी० नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
खोज रिपोर्ट पंजाब
खोज रिपोर्ट राजस्थान
गणेशप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी के कवि और उनका काव्य भाग ३
गोरखनाथ : गोरखबानी
द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ
दुखहरनदास : पुहुपावती
नूर मुहम्मद : इन्द्रावती
नेवटिया : मुस्लिम संतों के चरित्र
भटनागर : ईरान के सूफी कवि
ब्रजरत्नदास : उर्दू साहित्य का इतिहास
ब्रजरत्नदास : खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास

| | |
|---|---|
| बालकराम : | संगीत गोपीचन्द्र भरथरी |
| मिश्रबन्धु : | मिश्रबन्धु विनोद |
| माता प्रसाद गुप्त : | जायसी ग्रन्थावली |
| रामकुमार वर्मा : | कबीर का रहस्यवाद |
| रामकुमार वर्मा : | हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास |
| रामचन्द्र शुक्ल : | हिन्दी साहित्य का इतिहास |
| रामचन्द्र शुक्ल : | जायसी ग्रंथावली |
| राहुल : | कुरानसार |
| राहुल : | दर्शन दिग्दर्शन |
| वेणीप्रसाद : | हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता |
| श्यामसुन्दरदास : | रूपक रहस्य |
| श्यामसुन्दरदास : | साहित्यालोचन |
| श्यामसुन्दरदास : | हिन्दी साहित्य |
| सूरदास : | नल दमन |
| हजारी प्रसाद द्विवेदी : | कबीर |
| हजारी प्रसाद द्विवेदी : | हिन्दी साहित्य की भूमिका |
| हरिऔध : | हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास |

## संस्कृत

| | |
|---|---|
| नारद भक्ति सूत्र | |
| महाभारत वन पर्व | |
| विश्वनाथ : | साहित्य दर्पण |
| षोडशग्रंथ | |

## अन्य भाषाएं

| | |
|---|---|
| ग्यूरिनोट : | एसाइ दे बिब्लिओग्रेफ़ी जैन |
| तासी : | इस्त्वार द ल लितरेत्यूर ऐंदुई ऐ ऐंदुस्तानी |

# पत्र पत्रिकाएँ

इंडियन कल्चर

इस्लामिक कल्चर

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज़

जर्नल एशियाटिक

जर्नल औफ़ दि भंडारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट

जर्नल औफ़ दि रायल एशियाटिक सुसाइटी औफ़ बंगाल

जर्नल औफ़ दि रायल एशियाटिक सुसाइटी औफ़ बंगाल

नागरी प्रचारिणी सभा पत्रिका

माधुरी

विश्ववाणी

विशाल भारत

सरस्वती

हिन्दुस्तानी ( उर्दू )

हिन्दुस्तानी ( हिन्दी )

---